Dr. C.V. Raman University
Kargi Road, Kota, BILASPUR, (C. G.),
Ph. : +07753-253801, +07753-253872
E-mail : info@cvru.ac.in | Website : www.cvru.ac.in

आधुनिक हिन्दी गद्य और उसका इतिहास -II

Institute of Open and Distance Education

Faculty of Arts

आधुनिक हिन्दी गद्य और उसका इतिहास -II

2MAHIN2

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY
Chhattisgarh, Bilaspur
A STATUTORY UNIVERSITY UNDER SECTION 2(F) OF THE UGC ACT

2MAHIN2

आधुनिक हिन्दी गद्य और उसका इतिहास

2MAHIN2, आधुनिक हिन्दी गद्य और उसका इतिहास – II

Edition: March 2024

Compiled, reviewed and edited by Subject Expert team of University

1. Dr. Radha Sharma

(Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University)

2. Dr. Pooja Yadav

(Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University)

3. Murli Singh Thakur

(Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University)

Warning:

All rights reserved, No part of this publication may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the publisher.

Published by:

Dr. C.V. Raman University

Kargi Road, Kota, Bilaspur, (C. G.),

Ph. +07753-253801, 07753-253872

E-mail: info@cvru.ac.in

Website: www.cvru.ac.in

बाणभट्ट की आत्मकथा

(1) **"अहा, दृष्टि से इतनी पूतकारिता भी होती है ! मानों वह दृष्टि पुण्य रश्मियों से द्रष्टव्य को उद्भासित कर रही थी, तीर्थ-वारि-धारा से प्लावित कर रही थी, तपस्या से पवित्र बना रही सत्य के अंतर्निहित ताप के हृदय पाप-भावों को भस्म कर रही थी। मुझे ऐसा लगा कि वेदों की पवित्र-वाणी विग्रहवती होकर मुझे आज ब्रह्मणत्व के वरण योग्य बना रही है।"**

प्रसंग- बाण 'सुदक्षिमा' के वेश में निपुणिका के साथ 'भट्टिनी' छोटे अंत:पुर की कैद से मुक्त कराने जाता है। वहाँ जब वह भट्टिनी के प्रथम दर्शन करता है तो उसका हृदय भावों से उद्वेलित हो उठता है। वह सोचने लगता है-

व्याख्या- मैंने पहली बार अनुभव किया कि नजरों में इतनी ज्यादा पावनता भी होती है, दृष्टि में राग, विह्वलता और न जाने कितने भाव देखे हैं पर इतनी निर्मलता के तो आज प्रथम बार ही दर्शन हुए हैं। ऐसा लग रहा था मानो जीवन के संचित पुण्य दृष्टि की अमल किरणों में फूट पड़े हों तथा कुछ भी दृश्यमान है उसे प्रकाशित कर रहे हों। जिस तरह किसी तीर्थ-स्थल का पानी अंत:करण को शुचिता से भर देता है वैसे ही भट्टनी के नयनों से फूट-पड़ती ज्योति मनोभूति को पावनता में डुबो रही थी। जिस तरह तपस्या या साधना से मन के विकारों को तिरोहित करके उसे तप पूत कर देती है वैसे ही वह दृष्टि भी मानों मन को विशुद्ध बना रही थी। सत्य के सामने जिस तरह समस्त असत्य-कल्मष-कर्दम जल कर खाक हो जाता है। हृदय (तृप्त कंचन सा) निखर आता है वैसे ही मानो भट्टिनी की अंत: दृष्टि का तेज नयनों से फूट कर समस्त मनोविकारों का प्रक्षालन कर रहा था। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे वेदों की पवित्र वाणी में आकार ग्रहण करके मुझे ब्राह्मणोचित कम करने को प्रतित किया हो, शायद मुझे पवित्रता की इस देवी को उपासना करके इसके तेज से समाज की मलिनता दूर करनी थी, पाप-मोचन करना था, जन मन के इस निर्मलता को फैलाना था।

(2) **"लौकिक मानदंड से आनंद नामक वस्तु को नहीं मापा जा सकता। दु:ख तो केवल मन का विकल्प ही है, मनुष्य तो ऊपर से नीचे तक केवल परमानंद स्वरूप है। अपने को विशेष भाव से दे देने से ही दु:ख जाता रहता है, परमानंद प्राप्त होता है।"**

संदर्भ- आत्मकथा के उन्नीसवें परिच्छेद के अंतिम भाग में जब निपुणिका 'वाभ्रव्य' के साथ वार्ता के दौरान दु:ख और सार्थकता की बात करती है तो वाभ्रव्य उसे वस्तु स्थिति समझाते हुए कहते हैं-

व्याख्या- तुम लोक संपत्ति, समृद्धि और किसी तरह का भौतिक अभाव न होने को आनंद मानते हो, अन्यथा स्थिति को दु:ख कहते हो। यही बात गलत है। भौतिक प्रतिमानों से आनंद का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता, सुख या आनंद मन की संपत्ति है, मन ही का अनुभव है। अत: उसे भौतिकता के सापेक्ष करना गलत है। वास्तव में तो सब कुछ आनंदमय ही है अत: उसका माप करने का प्रश्न ही नहीं उठता। एक बात को यहाँ मैं स्पष्ट कर दूं कि जिस दुख और कष्ट की बात तुम करती हो उसका अस्तित्व ही नहीं है, वह मन का विकार मात्र है, मन की दुर्बलता है, कष्ट सहन

कर सकने की कमजोरी का ही परिणाम मात्र है। आनंद रूप नारायण का आश्रय होने के नाते हमारा जीवन भी आनंदमय ही है ! संघर्ष, उत्थान-पतन आदि तो लीला है ! व्यक्ति को इसमें भी आनंद लेना चाहिए। दरअसल हम दूसरों के लिए कष्ट सहना नहीं चाहते ! चाहते हैं कि अन्य लोग हमारे लिए कुछ करें और इसलिए हम क्लांत रहते हैं। हम जानते हैं कि घृणा देने से घृणा और प्रेम देने से प्रेम मिलता है इसी भांति यदि हम अपना संपूर्ण अस्तित्व ही लोक-मंगल के सुपुर्द कर दें, तो अपने आपको जन-सेवा में लगा दें तो फिर हमारे लिए सर्वत्र आनंद ही यही शाश्वत उपस्थित रहेगी। ऐसी स्थिति में दु:ख महसूस करने की फुरसत ही न रहेगी। कर्मण्य व्यक्ति के लिए तो आत्म-दान भी आनंद से पूर्ण होता है। वैयक्तिकता के दायरे से निकल कर जन-मन में मिल जाना ही परमानंद की प्राप्ति है, यही सार्थकता है, यही मुक्ति है जो यहाँ दु:ख और क्लाति की छाया भी नहीं पड़ती।

विशेष- डॉ. भगवानदीन की पंक्तियां यहाँ मुझे याद आ रही हैं जिनका भाव यह है कि दु:ख दिखलाई देगा। लेखक ने भी दु:ख-सुख को मन का विकल्प बतलाया है। 'वंदना इन स्वरों में एक स्वर मेरा मिला लो' ऐसा हौसला आदमी में हो तो उसके लिए दुनियां आनंद-सागर है।

(3) **"वे फेन बुद्-बुद् की भांति अनित्य हैं। वे सैकत-सेतु की भांति अस्थिर हैं एवं जल-रेखा की भांति नश्वर हैं। उनमें अपने आप को दूसरों के लिए मिटा देने की भावना जब तक नहीं आती, तब वे ऐसे ही रहेंगे। उन्हें जब तक पूजाहीन दिवस और सेवाहीन रात्रियां अनुतृप्त नहीं करती और जब तक निष्फल अर्ध्यद उन्हें कुरेद नहीं देता तब तक उनमें निषेधा-रूपा नारी का अभाव रहेगा.... ।"**

व्याख्या- पुरुष विधि रूप है, उसमें अपने को दूसरों के लिए मिटा देने की तत्परता नहीं है। इसलिए उसके कार्यों, निर्माणों, संगठनों और संस्थाओं का अस्तित्व नश्वर ही हैं पानी में उठकर विलीन हो जाने वाले बुलबुले की भांति नष्ट हो जाने वाले हैं। जिस तरह रेत का पुल अधिक समय तक नहीं टिकता तथा जल-रेखा थोड़े से समयोपरांत ही सूख कर मिट जाती है उसी भांति पुरुष के ये विविध रूप गतिविधियां भी शीघ्र ही नष्ट हो जाती है, इनमें तनिक भी स्थिरता नहीं होती। वह इस जटिल दुरावस्था से तब तक छुटकारा नहीं पा सकता जब तक उसमें भी निषेधात्मक तत्व नहीं आ जाते, यानी जब उसकी आधारशिला में लोक-मंगल, त्याग आत्मदान आदि का समाहार नहीं होगा तब तक दयनीय स्थिति कायम रहेगी। उसमें निषेधारूपा नारी-तत्व का त्याग, उत्सर्ग प्रेम आदि का अभाव है तथा यह अभाव तब ही पूर्ण होगा जब 9 (नौ) दिनों तक कोई उसका सम्मान नहीं करेगा, उसकी विकृतियों की हर उपेक्षा करेगा, दिवस पर्यन्त श्रम करने के उपरांत जब रात्रि काल में भी उसे शांति नहीं मिलेगी, किसी की सेवा तथा तरलता का श्रम, शासक स्पर्श नहीं होगा और जब निरंतर की असफलता उसे कचोटने लगेगी। इस तरह हर ओर से विफल होकर, परितप्त होकर, अशांत होकर तथा असफल होकर अंत में वह अपनी भूल का ज्ञान करेगा और फिर इस 'निषेध-रूप' के समक्ष सिर झुकाएगा।

विशेष- लेखक ने 'पूर्णता' की ओर संकेत करते हुए स्पष्ट किया है कि नारी के बिना उसे पूर्णता प्राप्त नहीं हो सकती और न ही समाज में स्थायित्व आ सकता है।

(4) **"बंधन ही चारुता है, संयम है सुरुचि है। निपुणिका व्यर्थ परेशान हो रही है। इस बाधा के कगारों से बधी हुई-जीवन-सरिता ही, गतिशील होती है, सरस होती है मधुर होती है।"**

प्रसंग- श्री हर्ष के स्वागत में निपुणिका उन्हीं के द्वारा लिखी गई नाटिका 'रत्नावली' का अभिनय करने के लिए बाणभट्ट को कहती है। यही प्रसंग वश जब वह जीवन को भी-पगपग पर बंधन और दमन के कारण-अभिनय करती है तो भट्ट उसे समझाते हुए कहता है-

व्याख्या- बंधन से विचलित होने की कोई जरूरत नहीं है। अनियंत्रित जीवन में भी भला कभी सुख और शांति मिल सकती है ! आचरों, नियमों और पाबंदियों से सीमित जीवन में ही संतुलन में ही सौंदर्य है, फिसलकर न गिरने वाला संयम है, मन को तृप्त करने वाला माधुर्य है। व्यक्ति की यदि हर इच्छा फलीभूत हो जाय, तो वह उच्छृंखल हो जाएगा जो कि उसके और समाज के दोनों के लिए कष्टकर होगा। संयम भी तो अपने आप में एक सौंदर्य, आनंद और संतोष है। अब नदी को ही देखो ना ! किनारों में बंधकर प्रवाहित होने में ही उसके अस्तित्व की सार्थकता है नहीं तो इधर-उधर बह कर उसका सब कुछ नष्ट हो जाएगा। उसी तरह व्यक्ति का जीवन भी अनियमित और असीमित होने पर इतस्तत: बिखर कर नष्ट हो जाएगा। जिस तरह बंधे किनारों में प्रवाहित नदी सदैव प्रवाहदान रहती है, औरों के लिए सुखकर और संतोषप्रद होती है वैसी ही संयमित, संतुलित और कहिए कि नियमों में बंधा हुआ जीवन मधुर, प्रीतिकर, सुखकर स्पृहणीय होता है।

(5) **"तुम्हारी उदासी मेरे लिए बड़ी विधि रही है। मैं जब तुमको उदास देखती थी तो यही समझती थी कि मेरा जन्म सार्थक है, तुमने इस गंधहीन पुण्य को चरणों तक पहुँचने देने के अयोग्य नहीं समझा।"**

प्रसंग- निपुणिका पर हम सम्तोहन प्रभाव को कम करने हेतु जन-श्रुति से प्रेरित होकर भट्ट उसे सौरभ मद ले जाता है। वहाँ निपुणिका भावोद्वेलित हो जाती है। भट्ट के प्रति अपनी अनुरक्ति का संकेत करते हुए वह कहती है-

व्याख्या- मैंने तुम्हें अपने राग में डुबो कर देखा है। मेरे लिए यही बहुत है कि कभी तुमने मेरे विषय में कुछ सोचा तो ! मैंने तुम्हारी उदासी को सदैव स्वयं से संबद्ध जाना, यह सोचा कि शायद तुम्हें मेरा विचार कुरेद रहा तथा यह बस इतना ही मेरे लिए अथाह संपदा के समान था, यही मेरा धन था। मैंने तुम्हारी उदासी में ही अपने जीवन की सफलता देखी है। हम प्रेम करनी स्त्रियों के लिए तो इतना ही बहुत होता है कि हमारा प्रिय कभी हमारे संबंध में सोचता तो है, नितांत असंपृक्त नहीं है। मैं जानती हूं कि मेरा जीवन निर्गन्ध फूल के समान रहा है मुझ में श्रेय तथा प्रेम जैसा कुछ भी नहीं फिर भी तुमने मुझे प्रत्यक्षत: ठुकराया नहीं, मेरी उपेक्षा नहीं की, मेरे शुभचिंतक के साथ ही मेरे सुखसाधन के अनेकानेक प्रयत्न करते रहे। बस, मुझे इसी में संतोष है।

विशेष- लेखक ने बतलाया है कि स्त्री में कितना निगूढ़ समर्पण भाव होता है। वह अपने प्रेम का प्रतिदान नहीं चाहती। उसकी निष्ठा बस इतने में ही संतुष्ट है कि उसका प्रिय उससे नितांत अस्पृक्त नहीं है।

(6) **"क्रमश: पश्चिम दिग्वध के कानों को सुशोभित करने वाले रक्तोत्पल के समान सूर्य-मंडल अस्त हो गया, आकाश रूप सरोवर में संध्या रूपी पदमनी प्रकाशित हो उठी, कृष्णा गुरु के पंक से निर्मित पत्र-लेखा की भांति तिमिर लेखा दिंगमुखों में परिव्याप्त उठी और उससे संध्या की लालिमा इस प्रकार आच्छादित हो गई मानों भ्रमर-भूषित नीलोत्पलो ने रक्त पदम के आच्छादित कर लिया है।"**

प्रसंग- गंगा-तट पर वभतीर्थ में कापालिकों के चक्कर में फंसा बाण भैरवी महायात्रा द्वारा बचा लिया जाता है। महामाया इन्हें लोरिक देव के संरक्षण में भद्रेश्वर दुर्ग में आश्रय दिलाती है। एक दिन दुर्ग की पश्चिमी प्राचीर पर खड़ा बाण साध्य सौंदर्य को देख रहा होता है। उसी का वर्णन हुआ है।

व्याख्या- पश्चिमाकाश में अरुण प्रभा के घेरे में अस्तंगत सूर्य दिशा रूपी दुल्हन के कानों को शोभित करने वाले कमल जैसा लग रहा था शनैःशनैः वह भी डूब गया। विस्तृत आकाश में सांध्य लालिमा ऐसी लग रही थी मानों गगन रूपी सरोवर में संध्या-रूपी कमलिनी खिल गई हो।

दिशाओं में भरा हुआ अंधेरा काले चंदन से बनी हुई पत्र लेखा जैसा लग रहा था। धीरे-धीरे संध्या अंधकार में डूबने लगी। चारों ओर क्षणदा का अंधकार फैल गया।

इस कालिमा ने संध्या की अरुणाई ढांप ली। ऐसा लग रहा था जैसे सरोवर में लिखे हुए लाल कमलों पर अलि-अवली से पूर्ण नीले कमल छा गए हों।

विशेष- रूपक और उपमालंकारों के माध्यम से लेखिका ने सांध्य शोभा का चित्रोपम वर्णन किया है। वर्ण साम्य का निर्वहन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। नीले आकाश में सांध्य अरुणाई पर शनैःशनैः छा रही कालिमा का शब्द चित्र उतारने में लेखक की प्रतिभा का प्रत्यक्ष हो जाता है।

(7) **'मेरा चित्त कहता है कि कहीं न कहीं मनुष्य-समाज ने अवश्य गलती की है। वह उन्मत्त उत्सव, ये रासक गान ये श्रृंगक चीतकार, ये अबीर-गुलाल ये चर्चरी और पटह मनुष्य की किसी मानसिक दुर्बलता को छिपाने के लिए है, ये दुःख भुलाने वाली मदिरा है, ये हमारी मानसिक दुर्बलता के पर्दे हैं। इनका अस्तित्व सिद्ध करता है कि मनुष्य का मन रोगी है, उसकी चिंताधारा आविल है, उसका पारस्परिक संबंध दुःखपूर्ण है।'**

संदर्भ- फाल्गुनी पर्णिमा का मध्यन्ह होली की अबीर-गुलाल में रंगा हुआ या भट्ट कुमार कृष्णवर्धन से मिलने जा रहा था। नगर मार्गों पर कुचले हुए फूल, बिखरा हुआ गुलाल देखकर भट्ट इन सब में मनुष्य की दुर्बलता देखते हुए सोचता है-

व्याख्या- ये राग-रंग और उन्माद, जिसमें अनुराग तथा उत्सुकता तनिक भी नहीं, देखकर मैं यह विचारने को विवश हो जाता हूं कि उनके मूल में मनुष्यों की कमजोरी और गलतियां हैं। लोगों ने कहीं न कहीं भयंकर भूलें की हैं जिनको छिपाने के लिए ये बदहवास कर देने वाले उत्सव, अबीर गुलाल तथा रसोद्रेक करने वाले गीत आयोजित किए जा रहे हैं। नारी संगठन व्यवस्था आदि के संबंध में व्यक्ति की मानसिक दुर्बलता को छिपाने के लिए ये रंगीन आवरण है तथा तज्जनित दुःखों को भुलाने के लिए मदहोश कर देने वाली सुरा है। ये वे तिरस्कारणियां हैं जिनके पीछे मनुष्य की कमजोरियां निश्चित होकर गतिशील रहती हैं तथा बाहर जिनकी (इन आयोजनों की) चकाचौंध से जन-मन विस्मय-विमूढ़ रहता है। इन सबकी उपस्थिति इस सत्य का उद्घाटन करती है कि मनुष्य के विचार, धारणाएं तथा मान्यताएं साफ नहीं हैं, अकलुष नहीं है, स्वस्थ नहीं है, अपने इन विकारों पर पर्दा डालने के लिए ही उसे इतने प्रपंच करने पड़ते हैं उसके सोचने समझने का दृष्टिकोण दोषपूर्ण है, निश्छल नहीं है अतः वह भटकता हुआ इनमें सुख खोजता है। अपने पारस्परिक दुःखपूर्ण संबंधों की कटुता विस्मृत करने के लिए ही अहिर्निश उसे इस तरह के आयोजन करने पड़ते हैं।

काव्य में लोक-मंगल की साधनावस्था

(8) **'आत्मबोध और जगद्बोध के बीच ज्ञानियों ने गहरी खाई रखी, पर हृदय ने कभी उसकी परवाह न की, भावना दोनों को एक ही मानकर चलती रही। इस दृश्य जगत् के बीच जिस आनन्द-मंगल की विभूति का साक्षात्कार होता रहा, उसी के स्वरूप की नित्य और चरम भावना द्वारा भक्तों के हृदय में भगवान् के स्वरूप की प्रतिष्ठा हुई। लोक में इसी स्वरूप के प्रकाश को किसी ने 'रामराज्य' कहा, किसी ने 'आसमान की बादशाहत'। यद्यपि मूसाइयों और उनके अनुगामी ईसाइयों की धर्म-पुस्तक में आदम को खुदा की प्रतिमूर्ति बताया गया, पर लोक के बीच नर में नारायण की दिव्य-कला का सम्यक दर्शन और उसके प्रति हृदय का पूर्ण निवेदन भारतीय भक्ति-मार्ग में ही दिखाई पड़ा।'**

सन्दर्भ- 'काव्य में लोक-मंगल की साधनावस्था' शीर्षक निबन्ध के प्रस्तुत गद्यांश में शुक्लजी स्पष्ट करते हैं कि भारतीय साधना-पद्धतियों-ज्ञान-मार्ग और भक्ति-मार्ग में भक्ति-मार्ग ही उत्कृष्ट है।

व्याख्या- आत्मबोध अर्थात् ज्ञान-मार्ग के अनुयायी दार्शनिकों और वेदान्तियों ने जगत् के साक्षात्कार और आत्म-साक्षात्कार को भिन्न-भिन्न दृष्टि से देखा है। आत्म-ज्ञानियों की यह भावना रही है कि वे जगत् में रहकर सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकते। यही कारण है कि आत्मज्ञान के समर्थक भक्ति-मार्ग का खण्डन करते हुए ज्ञान-मार्ग का प्रतिपादन करते हैं। परन्तु भक्ति-मार्ग की श्रेष्ठता यह है कि उसमें ज्ञान और भक्ति, आत्म-दर्शन और जगत् -दर्शन, बुद्धि और हृदय दोनों का समन्वय है। भक्ति-मार्ग के साधक संसार में रहकर आत्म-कल्याण में जगत् जहाँ बाधक है, वहाँ भक्ति-मार्ग में साधक है। भक्त दृश्य-संसार में ही निमग्न रहते हैं और परातत्त्व एवं परमानन्द की अनुभूति करते हैं। वे अवतारों के रूप में परमपिता को अपने बीच में पाते हैं। उसके उत्कृष्ट कार्यों को देखकर अपने हृदय में उसके स्वरूप की प्रतिष्ठा करते हैं। इसी व्यक्त स्वरूप में प्रकाशित प्रकाश को संसार में यदि कोई 'रामराज्य' कहता है, तो कोई इसे 'आसमान की बादशाहत' के रूप में देखता है। पैगम्बर मूसा के अनुयायियों ने अपनी धर्म-पुस्तक में आदम को ईश्वर की प्रतिमूर्ति और प्रतिनिधि माना है, परन्तु भारतीय भक्ति-मार्ग में राम-कृष्ण को ईश्वर का अवतार कहा गया है। अर्थात् यहाँ यह भावना रही है कि ईश्वर नर के रूप में अवतरित होकर अपने अलौकिक तेज, शाश्वत भक्ति से समस्त संसार का कल्याण करता है। भक्ति-मार्ग की ही यह विशेषता है कि इसमें नर में नारायण के दर्शन होते हैं और उनकी लीलाओं को किसी एकान्त में न देखकर दृश्य-जगत् के मध्य में देखा जाता है।

(9) **'अभिव्यक्ति के क्षेत्र में ब्रह्म के 'आनन्द' स्वरूप का सतत् आभास नहीं रहता, उसका आविर्भाव और तिरोभाव होता रहता है। इस जगत् में न तो सदा और सर्वत्र लहलहाता वसंत-विकास रहता है, न सुख-समृद्धिपूर्ण ह्रास-विलास। शिशिर के आतंक से सिमटी और झोंके झेलती वनस्थली की खिन्नता और हीनता के बीच से ही क्रमशः आनन्द की अरुण आभा धुँधली फूटती हुई अन्त में बसन्त की पूर्ण प्रफुल्लता और प्रचुरता के रूप में फैल जाती है, इसी प्रकार लोक की पीड़ा, बाधा, अन्याय, अत्याचार के बीच दबी कोई आनन्द-ज्योति भीषण शक्ति में परिणत होकर अपना मार्ग निकालती है और फिर लोक-मंगल और लोक-रंजन के रूप में अपना प्रकाश करती है।'**

सन्दर्भ- 'काव्य में लोक-मंगल की साधनावस्था' शीर्षक निबन्ध के प्रस्तुत गद्यांश में शुक्लजी स्पष्ट करते हैं कि नर में नारायण की दिव्य-कला की अभिव्यक्ति भारतीय भक्ति-मार्ग की प्रमुख विशेषता है।

व्याख्या- ब्रह्म के सत् , चित् और आनन्द तीन रूप हैं। इनमें से काव्य और भक्ति-मार्ग आनन्द को लेकर चलता है। लोक में आनन्द की अभिव्यक्ति की दो अवस्थाएं हैं-एक साधनावस्था और दूसरी सिद्धावस्था। साधनावस्था अथवा प्रयत्न-पक्ष के काव्य में पीड़ा, अन्याय और अत्याचार आदि के दमन में तत्पर और उसी में रमणीयता के दर्शन करने वाले कवि उसके अन्धकार और प्रकाश दोनों पक्षों का महत्त्व स्वीकार करते हैं। इस प्रकार के कवि सृष्टि में व्याप्त अन्तःसौन्दर्य का साक्षात्कार करते हैं। सिद्धावस्था अथवा उपभोग-पक्ष को प्रधानता देने वाले कवि सुख, सौन्दर्य और प्रेम-व्यापार आदि की ही ओर आकृष्ट रहते हैं और उसी के वर्णन में तन्मय रहते हैं।

लोक में ब्रह्म का आनन्द स्वरूप कभी आविर्भूत होता है और कभी तिरोभूत। प्रकृति में भी सदैव एक-सी स्थिति नहीं रहती। न तो सदैव बसन्त की हरियाली ही रहती है और न शिशिर का पतझड़ ही। शिशिर के भीतर थपेड़ों में से मार्ग बनाती हुई बसन्त की सुषमा विकसित हो जाती है। इसी प्रकार मानवी सृष्टि में सुख और दुःख का चक्र चलता रहता है। पीड़ा, बाधा, अन्याय और उत्पीड़न में आनन्द ज्योति तिरोहित हो जाती है। इस स्थिति में ब्रह्म की कला अवतरित होकर अपने प्रयत्न से पीड़ा, बाधा और अत्याचार के आचरण को हटा देती है, जिससे इस आवरण के नीचे दबी

हुई आनन्द-कला आविर्भूत हो जाती है। इस प्रकार ब्रह्म की पूर्ण कला का आनन्द सृष्टि में आविर्भाव और तिरोभाव के द्वारा गतिशील बना रहता है।

विशेष- (1) काव्य और भक्ति-मार्ग सत्, चित्, आनंन्द में से आनन्द स्वरूप ही को लेकर चला है। (2) आनन्द की अभिव्यक्ति साधनावस्था और सिद्धावस्था अथवा प्रयत्न-पक्ष और उपभोग-पक्ष दोनों में होती है। (3) ब्रह्म का आनन्द तत्त्व ही लोक-मंगल और लोक-रंजन करता है।

(10) **'लोक में फैली दुःख की छाया को हटाने में ब्रह्म की आनन्द-कला शक्तिमय रूप धारण करती है।, उसकी भीषणता में भी अद्‌भुत मनोहरता, कटुता में भी अपूर्व मधुरता, प्रचण्डता में भी गहरी आर्दता साथ लगी रहती है। विरुद्धों का यही सामंजस्य कर्म क्षेत्र का सौन्दर्य है, जिसकी ओर आकर्षित हुए बिना मनुष्य का हृदय नहीं रह सकता। इस सामंजस्य का और कई रूपों में दर्शन होता है।'**

सन्दर्भ- 'काव्य में लोक-मंगल की साधनावस्था' शीर्षक निबन्ध के प्रस्तुत गद्यांश में शुक्लजी स्पष्ट करते हैं कि संसार में दुःख और अत्याचार की छाया हटाने के लिए ब्रह्म की जो आनन्द कला शक्तिमय रूप धारण करती है उसकी भीषणता में भी अद्‌भुत मनोहरता, कटुता में भी मधुरता और प्रचण्डता में भी आर्दता रहती है। इस विरोध का सामंजस्य ही कर्मक्षेत्र का सौन्दर्य है।

व्याख्या- संसार में फैली हुई दुःख और अत्याचार की छाया हटाने के लिए ब्रह्म की आनन्द कला अवतार लेती है। इस शक्ति की आनन्द कला के प्रकाश में भीषणता में भी अद्‌भुत मनोहरता होती है। उसकी कटुता में माधुर्य और प्रचण्डता में गहरी आर्द्रता होती है। ब्रह्म को आनन्द-कला संसार की स्थिति, रक्षा, उत्पत्ति और पालन का विधान करती है। आनन्द-कला के प्रकाश में कोमल एवं कठोर, भीषण और मनोरम का समन्वय हुआ है। यह समन्वय लोक-रक्षा और लोक-रंजन दोनों ही में समर्थ है।

विशेष- (1) शुक्लजी ने यहाँ अवतार के स्वरूप और प्रयोजन का सुन्दर निरूपण किया है। (2) विरोधी भावों का समन्वय कर्म क्षेत्र को सौन्दर्य प्रदान करता है।

(11) **'भीषणता और सरलता, कोमलता और कठोरता, कटुता और मधुरता, प्रचण्डता और मृदुता का सामंजस्य ही लोक-धर्म का सौन्दर्य है। आदिकवि वाल्मीकि की वाणी इसी सौन्दर्य के उद्‌घाटन-महोत्सव का दिव्य संगीत है। सौन्दर्य का यह उद्‌घाटन सौन्दर्य का आवरण हटाकर होता है। धर्म और मंगल की यह ज्योति अधर्म और अमंगल की घटा को फाड़ती हुई फूटती है। इसमें कवि हमारे सामने असौन्दर्य, अमंगल और अत्याचार, क्लेश इत्यादि भी रखता है, रोष, हाहाकार और ध्वंस का दृश्य भी लाता है।'**

सौन्दर्य- 'काव्य में लोक-मंगल की साधनावस्था' शीर्षक निबन्ध के प्रस्तुत गद्यांश में शुक्लजी साधनावस्था अर्थात् प्रयत्न-पक्ष को लेकर चलने वाले काव्य की विशेषताओं का निरूपण कर रहे हैं।

व्याख्या- भारतीय साहित्य में ब्रह्म की आनन्द-कला के प्रकाश का निरूपण हुआ है। 'रामचरितमानस' के राम ब्रह्म की आनन्द-कला के पूर्ण अवतार हैं। वे अपने असीम शील, सौन्दर्य और शक्ति से तथा 'वज्रादपि कठोर' एवं 'कुसुमादपि कोमल-कठोर' व्यक्तित्व के सम्बन्ध में कर्म क्षेत्र में सौन्दर्य का प्रसार करते देखे जाते हैं। संसार में यदि एक ओर भीषणता और कठोरता है तो दूसरी ओर कोमलता और मनोरमता भी है। अत्याचार, हिंसा एवं पाप-प्रवृत्ति अपने प्रभाव से सृष्टि में व्याप्त आनन्द-कला का तिरोभाव कर देती है। इसके लिए हमारे अवतारी पुरुष सामने आते हैं और कर्म क्षेत्र में सौन्दर्य का प्रसार कर अत्याचार, पाप और हिंसा का आवरण हटा देते हैं जिससे आवृत्त, आनन्द-कला पुनः प्रकाशित हो जाती है।

भीषणता और सरसता, कोमलता और कठोरता, कटुता और मधुरता, प्रचण्डता और मृदुलता ही लोक-धर्म का सौन्दर्य है। वाल्मीकि ने इसी सौन्दर्य का उद्‌घाटन अपने महाकाव्य में किया है। राम में जहाँ असीम शील, सौन्दर्य और शक्ति है, वहाँ वह अत्याचार और पाप के दमन में साक्षात् यम है। धर्म और मंगल की यह ज्योति राम और कृष्ण के रूप में अधर्म और अमंगल का विनाश करती हुई कर्म-सौन्दर्य का प्रकाशन करती देखी जाती है। भारतीय कवि यथार्थ जीवन की विषमता, असौन्दर्य, अमंगल, अत्याचार आदि का वर्णन करते हैं। ये सम्पूर्ण भाव आनन्द की कला के विकास में योग देते हैं। 'महाभारत' अधर्म के पराभव और धर्म-विजय की घोषणा करता है। भारतीय साहित्य में विरोधी तत्त्वों का सामंजस्य लोक-मंगल का प्रसार करता है।

(12) **'मनुष्य के शरीर के जैसे दक्षिण और वाम दो पक्ष हैं, वैसे ही उसके हृदय के भी कोमल और कठोर, मधुर और तीक्ष्ण दो पक्ष हैं और बराबर रहेंगे। काव्य-कला की पूरी रमणीयता इन दोनों पक्षों के समन्वय के बीच मंगल या सौन्दर्य के विकास में दिखाई पड़ती है।'**

सन्दर्भ- 'काव्य में लोक-मंगल की साधनावस्था' शीर्षक निबन्ध के प्रस्तुत गद्यांश में भारतीय और पाश्चात्य साहित्य के दृष्टिकोण का अन्तर स्पष्ट करते हुए शुक्लजी कहते हैं।

व्याख्या- भारतीय काव्य-परम्परा में कवि कर्म-सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उसका वर्णन करते रहे हैं। किन्तु टालस्टाय के समय से एक नया फैशन पश्चिम में यह चला कि प्रेम और भ्रातृ-भाव के प्रदर्शन में ही भावों का उत्कर्ष माना जाने लगा। इस एकपक्षीय दृष्टिकोण का विरोध करते हुए शुक्लजी ने कहा है कि क्रूर और पीड़क को उपदेश देना, उससे दया की भिक्षा माँगना और प्रेम-प्रदर्शन करना ही कर्म क्षेत्र का सौन्दर्य नहीं है। इससे न तो संसार का कल्याण सम्भव है और न जीवन में सन्तुलन ही आ सकता है। मनुष्य के शरीर में दायाँ और बायाँ दो अंग हैं। इन अंगों के कर्त्तव्य और कार्य भिन्न-भिन्न हैं, वैसे ही हृदय के भी कोमल और कठोर, कटु और तीक्ष्ण, भीषण और मनोरम दो पक्ष होते हैं। एक पक्ष का अस्तित्व दूसरे पक्ष पर निर्भर है। काव्य की सफलता इन दोनों और सौन्दर्य दोनों पक्षों का समन्वित सौन्दर्य प्रकाशित करने में ही है।

(13) **'भावों की छानबीन करने पर मंगल का विधान करने वाले दो भाव ठहरते हैं-करुणा और प्रेम। करुणा की गति रक्षा की ओर होती है और प्रेम की रंजन की ओर। लोक में प्रथम साध्य रक्षा है। रंजन का अवसर उसके पीछे आता है। अतः साधनावस्था या प्रयत्न-पक्ष को लेकर चलने वाले काव्यों का बीज-भाव करुणा ही ठहरती है।'**

सन्दर्भ- 'काव्य में लोक-मंगल की साधनावस्था' शीर्षक निबन्ध के प्रस्तुत गद्यांश में शुक्लजी स्पष्ट करते हैं कि मंगल का विधान करने वाले करुणा और प्रेम दो भाव हैं। दोनों में करुणा का महत्त्व अधिक है।

व्याख्या- विश्व में लोक-मंगल का विधान करने वाले करुणा और प्रेम-दो भाव हैं। करुणा के मूल में रक्षा की भावना रहती है। यह मानव मन का परिष्कार करती है। मनुष्य और प्रकृति में शील और सात्विकता आदि का संस्थापक मनोविकार करुणा की रक्षा की भावना भी उदित करता है। प्रेम मन का अनुरंजन मात्र ही करता है। अतः प्रेम की अपेक्षा करुणा का महत्त्व अधिक हो जाता है। करुणा का प्रसार समाज के लिए वांछनीय है। रक्षा के हो जाने पर ही मनोरंजन का अवसर आता है। यदि रक्षा ही न हुई, तो मनोरंजन का अवसर कहाँ रहा?

शुक्लजी ने सिद्ध किया है कि काव्य का मूल प्रेरक भाव करुणा ही है। वाल्मीकि, तुलसी और व्यास आदि के काव्य का प्रेरक मूल भाव करुणा ही है।

अशोक के फूल

(14) **"अशोक का वृक्ष जितना भी मनोहर हो, जितना भी रहस्यमय हो, जितना भी अलंकारमय हो, परन्तु है वह उस विशाल सामन्त सभ्यता की परिष्कृत रुचि का ही प्रतीक, जो साधारण प्रजा के परिश्रमों पर पली थी, उसके रक्त के सार कणों को खाकर बड़ी हुई थी और लाखों करोड़ों की उपेक्षा से समृद्ध हुई थी, के सामन्त उखड़ गये, समाज ढह गये और मदनोत्सव की धूमधाम मिट गयी। सन्तान कामिनियों को गन्धर्वों में अधिक शक्तिशाली देवताओं का वरदान मिलने लगा, पीरों ने, भूत-भैरवों ने, काली दुर्गा ने, यक्षों की इज्जत घटा दी। दुनिया अपने रास्ते चली गई, अशोक पीछे छूट गया।"**

सन्दर्भ- व्याख्यार्थ प्रस्तुत गद्यांश 'अशोक के फूल' नामक पाठ से उद्धृत किया गया है, जिसके लेखक सुप्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी हैं।

प्रसंग- हिन्दी के सुप्रसिद्ध आलोचक बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने मानवतावादी दृष्टिकोण को अपनाया है। द्विवेदी जी का प्रमुख उद्देश्य सदैव भारतीय सभ्यता और संस्कृति को विश्लेषित करके देवत्व के स्थान पर मनुष्यत्व को स्थापित करना था। साहित्य के क्षेत्र में भी द्विवेदी जी का उद्देश्य मानव की सद्वृत्तियों का विकास करके उसके व्यक्तित्व को विकसित करना था। डॉ. द्विवेदी जी ने इसी सन्दर्भ को आगे बढ़ाते हुए इस गद्यांश में अशोक के फूल के महत्त्व को स्थापित किया है और उसकी साहित्यिक परम्परा का भी चित्रण किया है।

व्याख्या- प्रस्तुत गद्यांश में द्विवेदी जी ने फूल की मनोरमता और सभ्यता की रुचि का प्रतीक बताते हुए लिखा है कि अशोक का दुर्लभ एवं दिव्य फूल चाहे कितना ही रहस्यमय, अलंकारमय तथा मनोरम हो, लेकिन उस फूल को राजघराने की महारानियों ने अपने नूपुर भरे चरणों से ही पुष्पित पल्लवित किया है।

डॉ. द्विवेदी जी ने कहते हैं कि यह फूल सामन्ती प्रथा को संकेत देता है। ये सामन्त लोग प्रजा की कमाई पर ही पाले जाते थे। इस फूल को इसलिए अभिजात्य वर्ग की वस्तु स्थान दिया जाता है।

डॉ. द्विवेदी जी कहते हैं कि जब सामन्त व्यवस्था समाप्त हो गई तो उनके द्वारा आयोजित होने वाले मदनोत्सव की परम्परा भी खत्म हो गई है। जो स्त्रियाँ सन्तान की इच्छाएं रखती थीं उनको देवताओं द्वारा वरदान दिया जाने लगा था। इन यक्षों का मान, देवताओं द्वारा कम कर दिया गया। इसी कारण डॉ. द्विवेदी जी कहते हैं कि दुनिया अशोक के फूल की तरफ ध्यान न देकर अपने रास्ते चलती गई और विकसित होती गई।

विशेष- (1) डॉ. द्विवेदी जी ने फूल को सामन्ती परम्परा का प्रतीक माना है और इसकी उपेक्षा तथा सामन्तवादी प्रथा की समाप्ति के सम्बन्ध का उल्लेख इस गद्यांश में स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। (2) **भाषा-** सरल, सहज तथा शुद्ध है। (3) **शैली-** विवेचनात्मक एवं व्याख्यात्मक है।

(15) **"आज जिसे हम बहुमूल्य संस्कृति मान रहे हैं, क्या ऐसी ही बनी रहेगी सम्राटों-सामन्तों ने जिस आचार-निष्ठा को इतना मोहक और मादक रूप दिया था, वह लुप्त हो गई, धर्माचार्यों ने जिस ज्ञान और वैराग्य को इतना महार्घ समझा था, वह समाप्त हो गया। मध्य युग के मुसलमान रईसों के अनुकरण पर जो रस राशि उमड़ी थी, वह वाष्प की भाँति उड़ गयी, तो क्या यह मध्य युग के कंकाल में खिला हुआ व्यावसायिक-युग**

का कमल ऐसा ही बना रहेगा? महाकाल के प्रत्येक पदाघात में धरती धसकेगी। उसके कुण्ठनृत्य की प्रत्येक चारिका कुछ न कुछ लपेटकर ले जायेगी।"

सन्दर्भ- पूर्ववत् ।

प्रसंग- डॉ. द्विवेदी जी ने, साहित्य के प्रति अपनी एक निश्चित धारणा व्यक्त की थी, यही नहीं उन्होंने मानव की सद्वृत्तियों का विकास करते हुए उसके व्यक्तित्व का विकास किया था और साहित्य का लक्ष्य मानव को उसके जीवन के लक्ष्य, संस्कृति के प्रति सजग करना बताया है। लेखक ने इस गद्यांश में, 'अशोक के फूल' के महत्त्व को इसी संदर्भ में पुनः स्थापित किया है। और उसकी सांस्कृतिक परम्परा का उल्लेख भी किया है।

व्याख्या- प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने कहा है कि आज हम जिस संस्कृति का बहुमूल्य मान रहे हैं, वह समय के साथ बदलती जावेगी। जिस प्रकार राजा, सामन्त, रजवाड़े समय के साथ समाप्त होते चले गये। जो ज्ञान प्राचीन काल में संचित किया गया उसका प्रभाव भी समाप्त हो गया। जो दरबारी संस्कृति, मुस्लिम प्रभाव से अस्तित्व में आयी थी, वह भी विलुप्त होती चली गई। यह धरती मध्य युग के अस्थि-पंजर के पदाघात से खिसक जावेगी। महाकाल की सेविकाएं नृत्य करती हैं, वे अपने में कुछ न कुछ लपेट कर ले जावेंगी।

डॉ. द्विवेदी जी कहते हैं कि समय बड़ा बलवान, गतिमान होता है, जिसके प्रभाव से हर प्रथा, चलन, रीति-रिवाज, समय आने पर सब अप्रासंगिक हो जावेंगे। समय के साथ समस्त मूल्य, मान्यताएं बदल जावेंगी। सब कुछ नया होता जायेगा। यही समय चक्र है, जिसके प्रभाव से कोई नहीं बचता है।

विशेष- (1) लेखक ने इस गद्यांश में इस तर्क को प्रस्तुत किया है कि "पुराने पत्तों के बाद ही नये पत्तों को आगमन के समान परिवर्तन तथा नूतन चीजों का आगमन समय के साथ अपेक्षित है।" यही प्रकृति का नियम है जिसे लेखक ने इस गद्यांश में उद्धृत किया है।

(2) **भाषा-** लाक्षणिक, संस्कृतनिष्ठ, मधुर एवं शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है।

(3) **शैली-** भावात्मक एवं वर्णनात्मक है।

(16) **"पण्डिताई भी एक बोझ है-जितनी भी भारी होती है, उतनी ही तेजी से डूबती है। जब वह जीवन का अंग बन जाती है, तो सहज हो जाती है, तब वह बोझ नहीं रहती वह उस अवस्था में उदास नहीं करती। अशोक का कुछ भी तो नहीं बिगड़ा है। कितनी मस्ती में झूम रहा है। कालिदास इसका रस ले सके थे अपने ढंग से, मैं भी ले सकता हूँ, अपने ढंग से। उदास होना बेकार है।"**

सन्दर्भ- पूर्ववत् ।

प्रसंग- लेखक ने प्रस्तुत गद्यांश में अपनी सांस्कृतिक परम्परा के साथ-साथ अशोक के फूल के महत्त्व को स्थापित किया है तथा द्विवेदी जी ने साहित्यिक क्षेत्र में भी उसके महत्त्व को चित्रित किया है।

व्याख्या- प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने अशोक के फूल को नये परिप्रेक्ष्य में चित्रित किया है। जो संस्कारी व्यक्ति अपने को पुरानी मान्यताओं एवं परम्पराओं में ढालता है, वह अशोक के फूल को देखकर शीघ्र ही उदास हो जाता है और इस फूल की उपेक्षा करने वाले व्यक्ति को मूर्ख समझता है। जो व्यक्ति अधिक ज्ञानवान होता है, वह कभी-कभी एक बोझ के समान भी हो जाता है।

लेखक बताता है कि उसका ज्ञान कितना गहन होगा, वह उतना ही सांसारिकता से विमुख होता चला जायेगा। यही ज्ञान जब मानव जीवन का अंग बन जाता है, तो वह ज्ञान जीवन को विकसित करने में सहायक होता है। तब वह दूसरों को उदास भी नहीं करता है। लेखक बताता है कि इन सबके बाद भी अशोक के फूल का कुछ नहीं बिगड़ा है। वह तो उसी पहले जैसी मस्ती से झूमता रहा है। इस फूल का आनन्द कालिदास ने अपने युग की प्रवृत्तियों के अनुसार जिस प्रकार उठाया था। उसी प्रकार हम भी अपने युग की परिस्थितियों के अनुसार उसका आनन्द ले सकते हैं। उदासी को समाप्त करने के लिए हमें अपने दृष्टिकोण में बदलाव लाना आवश्यक है ताकि आगे भविष्य में उसकी उपेक्षा न हो।

विशेष- (1) लेखक उस ज्ञान को एक बोझ समझता है, जो अपने को समयानुसार परिवर्तित नहीं कर सकता, क्योंकि वह ज्ञान मानव की समस्याओं को हल नहीं कर सकता है। लेखक पाण्डित्य को भी उस समय एक बोझ समझता है, जब मनुष्य उसको अपने जीवन का अंग नहीं बना पाता। (2) **भाषा-** शुद्ध, सरल, साहित्यिक एवं मधुर है। (3) **शैली-** भावात्मक एवं प्रभावोत्पादक है।

(17) **"कहीं भी तो कुछ नहीं बिगड़ा है, कुछ भी तो नहीं बदला है, बदली है मनुष्य की मनोवृत्ति। यदि बदले बिना वह आगे बढ़ सकती तो शायद वह भी नहीं बदलती। यदि वह न बदलती तो व्यावसायिक संघर्ष आरम्भ हो जाता-मशीन का रथ घर्घर चल पड़ता-विज्ञान का 'संवेग धावन चल निकलता, तो बहुत बुरा होगा।"**

संदर्भ- पूर्ववत्।

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यांश में द्विवेदी जी ने फूल की सांस्कृतिक परम्परा और उसके महत्त्व को पुनर्स्थापित किया है तथा कहा है कि मानव के विकास में जैसे-जैसे मनुष्य आगे बढ़ा है समय के अनुसार उसकी मनोवृत्ति भी बदली है।

व्याख्या- प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने बदलाव की प्रक्रिया पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। लेखक कहता है कि सूर्य, चन्द्र, बादल, बरसात, पानी कुछ भी नहीं बदला। समय के प्रभाव से केवल मनुष्य की मनोवृत्ति ही बदली है। समय का चक्र भी बदलाव पर ही निर्भर है। यदि बदलाव न आता तो समय का चक्र रुक जाता और व्यवसाय क्षेत्र में संघर्ष प्रारम्भ हो जाता, जिससे मशीन और विज्ञान की दौड़ चल निकलती। लेखक कहता है कि इन परिस्थितियों में केवल विनाश ही निश्चित था।

विशेष- (1) लेखक ने अपने इस गद्यांश में विज्ञान के प्रभाव को दर्शाया है और यह भी बताया है कि मानव का विकास तथा मानव की प्रगति निरन्तर परिवर्तनीय मानव की मनोवृत्ति पर ही निर्भर होती है। (2) **भाषा-** सरल, सहज एवं साहित्यिक।

(3) **शैली-** विवेचनात्मक एवं भावात्मक।

(18) **'भारतीय साहित्य में, और इसलिए जीवन में भी, उस पुष्प का प्रवेश और निर्गम दोनों ही विचित्र नाटकीय व्यापार हैं। ऐसा तो कोई नहीं कह सकेगा कि कालिदास के पूर्व भारतवर्ष में इस पुष्प का कोई नाम ही नहीं जानता था। परन्तु कालिदास के काव्यों में यह जिस शोभा और सौकुमार्य का भार लेकर प्रवेश करता है, वह पहले कहाँ था? उस प्रवेश में नववधू के गृह प्रवेश की भाँति शोभा है, गरिमा है, पवित्रता है और सुकुमारता है।"**

सन्दर्भ- पूर्ववत्।

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने 'अशोक के फूल' के ऐतिहासिक महत्त्व पर प्रकाश डाला है तथा उस नाटकीय घटना का भी वर्णन किया है कि जिसके अनुसार अशोक के फूल ने कालिदास के हाथों भारतीय साहित्य में प्रवेश किया।

व्याख्या- प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने फूल की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में लिखा है कि भारतीय संस्कृति के प्रमुख अंगों में कमल, पाटल और आम्रमंजरी प्रमुख अंग है। अशोक के फूल का भारतीय साहित्यिक जीवन में प्रवेश और निर्गम के सम्बन्ध में एक कथा प्रचलित है। संस्कृति के उत्थान पतन के कारण यह कथा परिवर्तन की कथा बन गई है। ऐसा नहीं कि कालिदास ने ही सर्वप्रथम इस पुष्प का वर्णन अपने काव्य में किया है। इससे पूर्व भी लोगों को इस पुष्प के सम्बन्ध में जानकारी थी। पौराणिक कथाओं में भी इस पुष्प का उल्लेख मिलता है। यह भी हो सकता है कि कालिदास के समय इस पुष्प का कोई महत्त्व न हो इसलिए कालिदास ने इस पुष्प को अपने काव्य में प्रमुख स्थान दिया है। कालिदास के कारण ही वस्तुत: इस पुष्प को अन्य पुष्पों के बीच उच्चासन प्राप्त हो गया। इस पुष्प की शोभा को कालिदास ने अपनी स्नेहपूर्ण दृष्टि से ही समादृत किया जिस प्रकार एक नव वधू अपने गृह प्रवेश के समय शोभायमान, गम्भीरता से पूर्ण होती है, उसके रंग-रूप में जो पवित्रता होती है, वही शोभा, गम्भीरता और पवित्रता अशोक के फूल में उस समय विद्यमान थी, जब उसने कालिदास के द्वारा साहित्य में प्रवेश किया था। किसी भी कवि ने फूल की इस विशेषता को कभी भी आगे चलकर इस स्नेह पूर्ण भाव भारी पवित्र दृष्टि से नहीं देखा और न ही अपने काव्य में उसे स्थान दिया।

विशेष- (1) अशोक के फूल का आगमन गंधर्व संस्कृति के साथ ही हुआ था। डॉ. द्विवेदी जी ने कहा है कि गंधर्व देश इस फूल के लिए पिता-गृह तथा भारत पति-गृह माना जाता है। भारतीय संस्कृति में इस फूल का विशेष महत्त्व है। कालिदास ने इस फूल की शोभा की तुलना नव वधू की शोभा से की है। कालिदास ने प्रस्तुत गद्यांश में गरिमा, पवित्रता, आदि शब्दों के द्वारा पुष्प और उसकी संस्कृति को चित्रित किया है तथा लेखक ने इन्हीं पवित्र शब्दों से अशोक के फूल के साहित्य-प्रवेश को प्रस्तुत गद्यांश में वर्णित किया है।

(2) **भाषा-** विषयानुकूल एवं शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली।

(3) **शैली-** प्रभावोत्पादक, भावात्मक तथा चित्रात्मक।

(19) **"संघर्षों से मनुष्य ने नयी शक्ति पाई है। हमारे सामने समाज का जो रूप है, वह न जाने कितने ग्रहण और त्याग का रूप है। देश और जाति की विशुद्ध संस्कृति केवल बात की बात है। सब कुछ में मिलावट है, सब कुछ अविशुद्ध है। शुद्ध है-केवल मनुष्य की दुर्दम जिजीविषा (जीने की इच्छा) । वह गंगा की अबाधित, अनाहत धारा के समान सब कुछ को हजम करने के बाद भी पवित्र है। सभ्यता और संस्कृति का मोह क्षण भर बाधा उपस्थित करता है, धर्माचार का संस्कार थोड़ी देर तक इस धारा से टक्कर लेता है, पर इस दुर्दम धारा में सब कुछ बह जाता है, जितना कुछ इस जीवन शक्ति को समर्थ बनाता है, उतना उसका अंग बन जाता है। बाकी फेंक दिया जाता है।"**

सन्दर्भ- पूर्ववत् ।

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने कहा है कि अशोक का वृक्ष चाहे कितना भी मनोहर हो लेकिन उसकी छवि सामन्त प्रथा के साथ ही समाप्त हो गई थी। महाकाल के समक्ष कोई भी संस्कृति एवं सभ्यता टिक नहीं पाती तथा काल की धारा का सामना केवल मनुष्य की जीने की इच्छा ने ही किया। लेखक ने मनुष्य में अशोक के फूल के माध्यम से जीने की इच्छा का महत्त्व प्रदर्शित किया है।

व्याख्या- मनुष्य की जीवन की इच्छा ही सृष्टि के आरम्भ से अब तक प्रमुख रही है। मनुष्य ने अपने जीवन में अनेकों संघर्ष किये हैं। मनुष्य ने हर संघर्ष के बाद एक नई शक्ति को प्राप्त किया है। आज मनुष्य का जो स्वरूप हमारे सामने विद्यमान है, वह इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य

ने केवल उपयोगी तथ्यों को ही ग्रहण किया और जो तथ्य उपयोगी नहीं थे, उनको त्याग दिया था। लेखक कहता है कि कोई सभ्यता और संस्कृति पूर्ण रूप से शुद्ध नहीं है।

लेखक के अनुसार किसी भी देश की संस्कृति के विकास के अपने सिद्धान्त होते हैं, जो त्याग एवं ग्रहण पर आधारित होते हैं। हर देश की संस्कृति में तथा दूसरे देश की संस्कृति में कुछ न कुछ तत्त्वों का पारस्परिक प्रभाव देखने को मिलता है। इसलिए सांस्कृतिक शुद्धता कहीं भी देखने को नहीं मिलती है। वस्तुत: मनुष्य के जीने की इच्छा ही शुद्ध है। इस इच्छा ने कभी भी धर्माचार, रीति-रिवाजों तथा महाकाल के बन्धन को स्वीकार नहीं किया।

लेखक कहता है कि जिस प्रकार गंगा की धारा सब कुछ गंदगी को समेट कर भी शुद्ध बनी रहती है, उसी प्रकार मानव की जिजीविषा अर्थात् जीने की इच्छा ने हर संस्कृति के तत्त्वों को ग्रहण किया और फिर भी शुद्ध बनी रही। मनुष्य अपनी संस्कृति के मोह में फँसकर रुक जाता है, लेकिन जब मानव की इच्छा उग्र रूप धारण कर लेती है, तो ये बाधायें मनुष्य का रास्ता रोक नहीं पातीं। मनुष्य ऐसी स्थिति में आवश्यक तत्त्वों को ग्रहण करके अनावश्यक तत्त्वों को त्याग देता है।

विशेष- (1) प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने आस्थावादी विचारधारा का चित्रण किया है तथा मनुष्य में विद्यमान जीवन-इच्छा को ही सर्वाधिक महत्त्व दिया है।

(2) **भाषा-** शुद्ध, साहित्यिक खड़ी बोली।

(3) **शैली-** वर्णनात्मक तथा भाषात्मक।

(20) **"धन्य हो महाकाल, तुमने कितनी बार मदन देवता का गर्व खण्डन किया है। धर्मराज के कारागार में कितनी बार क्रान्ति मचाई है। यमराज के तारल्य को पी लिया। विधाता के सर्व कर्तव्य के अभिमान को चूर्ण किया है। आज हमारे भीतर जो मोह है, संस्कृति और कला के नाम पर जो आसक्ति है, धर्माचार और सत्यनिष्ठा के नाम पर जो महिमा है, उसमें कितना भाग तुम्हारे कुण्ठ नृत्य से ध्वस्त हो जावेगा, कौन जानता है? मनुष्य की जीवन धारा फिर भी अपनी मस्तानी चाल से चलती जायेगी।"**

सन्दर्भ- पूर्ववत्।

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यांश में लेखक कहता है कि संसार के समस्त धर्म, आचार-विचार, सभ्यता तथा संस्कृति सभी ने मानव जीवन की धारा के प्रखर रूप के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया है। सभ्यता और संस्कृति का प्रमुख उद्देश्य मानव जीवन को सजग रखना एवं प्रेरणा देने का है। इसके लिए ही प्रस्तुत गद्यांश में मानव की जीवनधारा की निरन्तरता का उल्लेख किया गया है।

व्याख्या- प्रस्तुत गद्यांश में लेखक महाकाल की प्रकृति का वर्णन करता हुआ कहता है कि हे महाकाल ! तुम धन्य हो ! महाकाल के चक्र से कोई भी धर्म, सभ्यता, संस्कृति, आचार-विचार आदि बच नहीं पाया है। समाज के उत्थान-पतन का कारण महाकाल के अतिरिक्त किसी को भी पता नहीं है। इसलिए लेखक सर्वप्रथम महाकाल को ही प्रणाम कर धन्यवाद देता है। मदन देवता का घमण्ड भी इसी महाकाल द्वारा ही तोड़ा गया है। महाकाल ने मदन देवता का घमण्ड कभी शिव के रूप में, कभी बुद्ध के रूप में तो कभी ऋषियों के रूप में तोड़ा है। सभी पुण्यात्माओं को धर्मराज द्वारा अपनी कारागार में डाल दिया गया है। जो आत्मा अपने कर्तव्य-पथ से विमुख हो गई, उसको संसार रूपी नरक की यातनाएं भोगने के लिए संसार में आना पड़ता है, क्योंकि धर्मराज निर्दयता का प्रतीक माने जाते हैं, लेकिन धर्मराज की निर्दयता को भी महाकाल द्वारा घोलकर पी लिया गया है।

लेखक के अनुसार ब्रह्मा जी को भी संसार रचने का बहुत घमण्ड था। लेकिन उनके द्वारा निर्मित समस्त चीजों को महाकाल द्वारा ध्वंस कर दिया गया। वर्तमान समय में मानव अपने धर्म,

सभ्यता एवं संस्कृति, आचार-विचार व सत्यनिष्ठा से बखूबी चिपका हुआ है। लेकिन महाकाल मानव के इस मोह को कब तोड़ दे, कोई नहीं जानता। इस सम्बन्ध में लेखक कहता है कि महाकाल के पंजों से कोई भी नहीं बच पाया तथा हर कोई उसकी पकड़ में फँसा हुआ है। फिर भी इस सबके बावजूद भी मानव की जीवनधारा की गति अबाध, निरन्तर एवं चलायमान है। मानव की जीवनधारा निर्माण और ध्वंस के बीच अपना अस्तित्व बनाये रखती है। महाकाल ने भी मनुष्य की जीवनधारा के सामने समर्पण कर दिया है।

विशेष- (1) प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने केवल महाकाल और मानव जीवन धारा की तुलना करता है, अपितु लेखक द्वारा महाकाल के क्षेत्रों को भी सीमित कर दिया है और यह भी सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि मानव जीवन धारा पर महाकाल का भी कोई अंकुश नहीं होता है। (2) **भाषा-** गाम्भीर्य के साथ-साथ प्रवाहपूर्ण भाषा का प्रयोग है।

(3) **शैली-** व्याख्यात्मक एवं विवेचनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

(21) **"कहते हैं, दुनिया बड़ी भुलक्कड़ है। केवल उतना ही याद रखती है, जितने से उसका स्वार्थ सधता है। बाकी को फेंककर वह आगे बढ़ जाती है। शायद अशोक के फूल से उसका स्वार्थ नहीं सधा, क्यों उसे वह याद रखती? सारा संसार स्वार्थ का अखाड़ा ही तो है।"**

संदर्भ- पूर्ववत्।

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने दुनिया की भुलक्कड़ प्रवृत्ति एवं स्वार्थपरता पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि संसार समस्त चीजों को बहुत जल्दी भुला देता है। यह संसार उन्हीं चीजों को याद करता या रखता है, जो उसके स्वार्थों की पूर्ति करने में सक्षम हैं। जो चीजें दुनिया के स्वार्थ की पूर्ति नहीं करतीं, उनको उसके द्वारा छोड़ दिया जाता है और संसार आगे की ओर अग्रसर हो जाता है।

लेखक कहता है कि अशोक के फूल से दुनिया का कोई स्वार्थ सिद्ध नहीं हुआ। इसलिए दुनिया ने उसको याद भी नहीं रखा। यदि अशोक के फूल से किसी प्रकार का स्वार्थ सिद्ध हो जाता, तो दुनिया इस फूल को भी याद रखती। सारे संसार को लेखक ने स्वार्थ से परिपूर्ण बताया है, क्योंकि संसार का हर व्यक्ति अपने स्वार्थ की पूर्ति में लगा हुआ है। इसलिए लेखक ने दुनिया को स्वार्थ का अखाड़ा कहा और यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि यदि कोई चीज दुनिया के स्वार्थ की पूर्ति न करे तो उसको पूर्ण रूप से भुला दिया जाता है।

विशेष- (1) लेखक ने प्रस्तुत गद्यांश में दुनिया की भुलक्कड़ प्रकृति तथा स्वार्थपरता का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है तथा मनुष्य को इस प्रवृत्ति के प्रति सजग भी किया है।

(2) **भाषा-** परिमार्जत एवं शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली।

(3) **शैली-** व्याख्यात्मक एवं भावात्मक शैली।

मेरे राम का मुकुट भीग रहा है

(22) **"महीनों से मन बेहद उदास है। उदासी की कोई खास वजह नहीं, कुछ तबीयत ढीली, कुछ आसपास के तनाव और उनसे टूटने का डर, खुले आकाश के नीचे भी खुलकर साँस लेने की जगह की कमी, जिस काम में लगकर मुक्ति पाना चाहता हूँ, उस काम में हजारों बाधाएं; कुल ले-देकर उदासी के लिए इतनी बड़ी चीज़ नहीं बनती। फिर भी रात-दिन नींद नहीं आती। दिन ऐसे बीतते हैं, जैसे भूतों के सपनों की एक रील पर दूसरी रील चढ़ा**

दी गयी हो और भूतों की आकृतियाँ और डरावनी हो गयी हों। इसलिए कभी-कभी तो बड़ी-से-बड़ी परेशानी करने वाली बात हो जाती है और कुछ भी परेशानी नहीं होती, उल्टे ऐसा लगता है, जो हुआ, एक सहज क्रम में हुआ; न होना ही कुछ अटपटा होता और कभी-कभी मामूली-सी बात भी भयंकर चिंता का कारण बन जाती है।"

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यावतरण ललित निबन्धकार डॉ. विद्यानिवास मिश्र द्वारा लिखित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' शीर्षक निबन्ध से लिया गया है। यहाँ पर लेखक ने अपने मन का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है।

व्याख्या- लेखक का कथन है कि महीनों से मेरा मन उदास है। उदासी का क्या कारण हो सकता है, यह बात भी समझ में नहीं आती। इस उदासी के कारण स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता। लेखक के साथ जैसा मानसिक रूप से हो रहा है, वैसा अन्य मनुष्यों के साथ भी होता रहता है। कुछ तनाव, कुछ तनाव से टूटने का डर। खुले आकाश के नीचे भी लेखक कहता है कि मैं खुलकर साँस नहीं ले पाता। जिस कार्य में अपने मन को लगाता हूँ, उस काम में मन नहीं लगता, वरन् अनेकों कठिनाइयाँ सामने आ जाती हैं। ऐसा किसी भी मानसिक उदास व्यक्ति के साथ हो सकता है। जहाँ समस्याएं हों, वहाँ और अधिक समस्याएं आ जाती हैं। लेखक कहता है कि उदासी मेरे लिए कोई कारण नहीं, न ही उदासी का कोई कारण है, फिर भी मैं तनावग्रस्त रहती हूँ। मुझे रात-दिन नींद भी नहीं आती। दिन ऐसे बीत जाता है जैसे एक रील मशीन पर चढ़ा दी गई हो। मन तनावग्रस्त होने से विभिन्न प्रकार की भूतों की आकृतियाँ, डरावनी चेहरे आँखों के सामने घूमते रहते हैं, इसी तनावग्रस्तता में छोटी-छोटी परेशानी भी बड़ी बन जाती है, कभी-कभी यह छोटी परेशानी भी बड़ी बन जाती है, कभी कुछ भी परेशानी दिखाई नहीं देती। लेखक के कहने का भाव यह है कि यह एक मानसिक विकार है। इसी मन के कारण ही बड़ी-से-बड़ी परेशानी छोटी लगती है और छोटी-सी-छोटी परेशानी बड़ी लगती है। कई बार ऐसा लगता है कि जो हुआ सो ठीक हुआ, सहज रूप में हुआ, न होना भी कई बार स्वयं को अटपटा-सा लगता है। कभी-कभी मामूली-सी बात भी भयंकर लगने लगती है। कई बार भयंकर बात भी छोटी लगने लगती है।

विशेष- (1) लेखक ने मन का विश्लेषण किया है। (2) विश्लेषणात्मक शैली प्रयुक्त की गई है। (3) भाषा तत्सम होते हुए भी जीवन्त शक्ति को अक्षुण्ण रखे हुए है।

(23) **"अभिषेक की बात चली, मन में अभिषेक हो गया और मन में राम के साथ राम का मुकुट प्रतिष्ठित हो गया। मन में प्रतिष्ठित हुआ, इसलिए राम ने राजकीय वेश उतारा, राजकीय रथ से उतरे, राजकीय भोग का परिहार किया, पर मुकुट तो लोगों के मन में था, कौसल्या के मातृ-स्नेह में था, वह कैसे उतरता, वह मस्तक पर विराजमान रहा और राम भीगें तो भीगें, मुकुट न भीगने पाये, इसकी चिंता बनी रही। राजा राम के साथ उनके अंगरक्षक लक्ष्मण का कमर-बन्द दुपट्टा भी (प्रहरी की जागरूकता का उपलक्षण) न भीगने पाये और अखण्ड सौभाग्यवती सीता की माँग का सिंदूर न भीगने पाये, सीता भले ही भीग जाये। राम तो वन से लौट आये सीता को लक्ष्मण फिर निर्वासित कर आये, पर लोकमानस में राम की वनयात्रा अभी नहीं रुकी। मुकुट दुपट्टे, ओम सिंदूर के भीगने की आशंका अभी भी साल रही है। कितनी अयोध्याएं बसीं, उजड़ीं पर निर्वासित राम की असली राजधानी, जंगल का रास्ता अपने काँटों-कुशों, कंकड़ों-पत्थरों की वैसी ही ताजा चुभन लिए हुए बरकरार है, क्योंकि जिसका आसरा साधारण गँवार आदमी भी लगा सकता है, वे राम तो सदा निर्वासित ही रहेंगे और उनके राजपाट को सँभालने वाले भरत अयोध्या के समीप रहते हुए भी उनसे भी अधिक निर्वासित रहेंगे।"**

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यावतरण ललित निबन्धकार डॉ. विद्यानिवास मिश्र द्वारा लिखित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' शीर्षक निबन्ध से लिया गया है। यहाँ पर लेखक ने व्यक्त किया है कि

व्यक्ति किसके बारे में सोच रहा होता है और मन कहाँ चला जाता है उसी का चित्रण यहाँ किया गया है।

व्याख्या- लेखक का स्वयं का कथन है कि मैं अपने एक चिरंजीव और एक मेहमान जो संगीत का कार्यक्रम सुनने गये हैं और देर रात तक पहुँचे नहीं हैं तो उनके मन में बात देर तक न आने और उनकी प्रतीक्षा की बात मन में चल रही है, लेकिन लेखक का मन रात देर तक बैठे रहने पर कहीं ओर चला जाता है। राम के अभिषेक की बात चली तो लेखक के मन में राम के अभिषेक की बात आ गयी। राम का मुकुट मन में प्रतिष्ठित हो गया। यह सारी प्रक्रिया रात को प्रतीक्षा करते-करते निबन्धकार के मन में चल रही है। राम ने राजसी वेश उतारकर, राजसी रथ से उतर गये। राजकीय भोग-विलास का भी त्याग किया, पर लोगों के मन में राम का राजसी वेश ही बसा हुआ था। राजसी वेश राम की माता कौशल्या के मातृ-स्नेह में था, वह कैसे उतरता, वह मस्तक पर अभी भी विराजमान था। लेखक के मन.में भी यही बात थी, लोकमानस से भी यही बात थी कि राम भले ही भीग जायें, लेकिन राम का मुकुट बारिश में न भीगे। लेखक बारिश में घोर अंधियारे को देख रहा है जो उनके घर से चिरंजीव और एक लड़की संगीत सुनने के लिए गये हुए हैं। चिरंजीव को वह राम के रूप में अभिषेक करके राम बारिश में न भीग जायें उसी के बारे में मन में रील चल रही है। राम का मुकुट न भीगे, इसी की चिंता लेखक के मन में बनी हुई है। लेखक कहता है कि राजा राम के साथ अंगरक्षक लक्ष्मण भी भीगने न पाये। वह यह भी चाहता है कि अखण्ड सौभाग्यवती सीता की माँग का सिंदूर भी न भीगे, सीता भले ही भीग जाये। राम वनवास से लौटकर आ गये, सीता को लक्ष्मण फिर से निर्वासित कर आये। वास्तव में सीता का निर्वासित होना, उस दृष्टि से लेखक सोच रहा है कि महानगर में पली लड़की जो चिरंजीव के साथ संगीति सुनने गयी है उसी के बारे में सोच रहे हैं कि वह परायी लड़की है और उसे कल को गृहिणी बनना है अर्थात् कब तक वह खुले आकाश में विचरण करेगी। राम को निर्वासित कर देना, राम को वन भेजना आज भी राम की वनयात्रा लोकमानस में रची बसी है। लेखक के मन में मुकुट, दुपट्टे, सिंदूर के भीगने की आशंका अभी भी कचोट रही है। लेखक कहता है कि कितनी बार अयोध्याएं बनीं, बसीं, उजड़ीं। लेकिन निर्वासित, वनवासी राम की वनयात्त उसकी राजधानी, जंगल में राजसी राम को जंगल के रास्तों की चुभन, काँटे, कुश, कंकड़-पत्थर सभी की चुभन आज भी लोकमानस के मन में बसी हुई है। कारण, राजा राम राजा नहीं बल्कि लोकमानस के रचे बसे राम हैं। राम लोकमानस में इतने बसे इसलिए हैं कि साधारण, गँवार आदमी भी राम का ही आश्रय लेता है, राम आश्रय देते भी हैं। राम सदा निर्वासित ही रहेंगे और उनके राजपाठ को सँभालने वाले भरत अयोध्या के समीप रहते हुए भी उनसे भी अधिक निर्वासित हैं। कहने का भाव यह है कि राजपाट तो राम का है भरत तो केवल उस राजपाट को चला रहे हैं।

विशेष- (1) लेखक ने भारतीय जीवन की अजस्र परम्परा का प्रयोग किया है। (2) लोक जीवन की सरसता और लोकसंस्कृति की तरलता अन्तर्वर्तिनी धारा के रूप में प्रवाहमान है। (3) लेखक ने संस्कृति का चित्रण करके हमारे चिंतन को विस्तृत कर दिया है। (4) निबन्ध की भाषा तत्सम होने पर भी उसकी जीवन्त शक्ति को अक्षुण्ण रखा है। (5) लेखक ने कवित्वपूर्ण भावात्मक शैली को व्यक्त किया है।

(24) **"सोचते-सोचते लगा कि इस देश की ही नहीं, पूरे बिश्व की एक कौसल्या है; जो हर बारिश में बिसूर रही है-'मोरे राम के भीजै मुकुटवा' मेरी संतान, ऐश्वर्य की अधिकारिणी संतान वन में घूम रही है, उसका मुकुट, उसका ऐश्वर्य भीग रहा है, मेरे राम कब घर लौटेंगे; मेरे राम के सेवक का दुपट्टा भीग रहा है, पहरुए का कमरबन्द भीग रहा है, उसका जागरण भीग रहा है, मेरे राम की सहचारिणी सीता का सिंदूर भीग रहा है, उसका अखण्ड सौभाग्य भीग रहा है, मैं कैसे धीरज धरूँ? मनुष्य की इस सनातन स्थिति**

से एकदम आतंकित हो उठा, ऐश्वर्य और निर्वासन दोनों साथ-साथ चलते हैं। जिसे ऐश्वर्य सौंपा जाने को है। उसको निर्वासिन पहले से बदा है जिन लोगों के बीच रहता हूँ, वे सभी मंगल नाना के नाती हैं, वे 'मुद मंगल' में ही रहना चाहते हैं, मेरे जैसे आदमी को वे निराशावादी समझकर बिरादरी से बाहर ही रखते हैं, डर लगता रहता है कि कहीं उड़कर उन्हें भी दुख न लग जाए, पर मैं अशेष मंगलाकांक्षाओं के पीछे से झाँकती हुई दुर्निवार शंकाकुल आँखों में झाँकता हूँ तो मंगल का सारा उत्साह फीका पड़ जाता है और बंदनवार बंदरवार ने दिखकर बटोरी हुई रस्सी की शक्ल में कुंडली मारे नागिन दिखती है।"

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यावतरण डॉ. विद्यानिवास मिश्र द्वारा लिखित निबन्ध 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' शीर्षक से लिया गया है। लेखक रात को अंधेरे में अपने घर के लोगों की प्रतीक्षा करते-करते राम के बारे में सोचने लगते हैं। लेखक घर के बारे में सोचते-सोचते देश के बारे में नहीं पूरे विश्व के बारे में सोचते हैं।

व्याख्या- लेखक घर में आयी मेहमान को कौशल्या के रूप में देखता है कि राम की माता कौशल्या केवल राम की माता नहीं थी अपितु विश्व की माता हैं, जो हर बारिश में द्रवित हो रही है या सोच रही है कि मेरे राम का मुकुट भीग रहा है। मेरी संतान, ऐश्वर्य की अधिकारिणी संतान वन में भटक रही है। कौशल्या सोचती है कि राम का मुकुट, उसका ऐश्वर्य भीग रहा है, मेरा राम कब घर लौटेगा ? मेरे राम का सेवक लक्ष्मण भी बारिश में भीग रहा है। राम का अंगरक्षक, पहरेदार लक्ष्मण का कमरबन्द भीग रहा है, उसका जागरण भीग रहा है। मेरे राम का सहचारिणी सीता का सिंदूर भीग रहा है, उसका अखण्ड सौभाग्य भीग रहा है, मैं कैसे धैर्य धारण करूँ, अर्थात् अब यह धैर्य रखा नहीं जाता। कौशल्या नियति को याद करके एकदम आतंकित हो उठती है अर्थात् यह सोचकर कौशल्या का मन डर जाता है कि ऐश्वर्य-निर्वासन दोनों साथ-साथ चलते हैं, जिसे ऐश्वर्य सौंपा जाना था, उसके लिए विधाता ने निर्वासन पहले से ही लिख दिया है। लेखक इस प्रसंग से हटकर अपने लौकिक संसार की बात कहता है कि मैं जिन लोगों के बीच रहता हूँ, वे सभी मंगल नानी के नाती हैं। वे हर्ष, उमंग और मंगल में ही रहना चाहते हैं। लेखक स्वयं के लिए कहता है कि मेरे जैसे आदमी को निराशावादी समझकर बिरादरी से बाहर ही रखते हैं, पर डर लगा रहता है कि कहीं उड़कर उन्हें भी दुःख न लग जाए, लेकिन में अशेष मंगलकामनाओं के पीछे झांकता दुर्निवार शंकाकुल होकर देखता हूँ तो मंगलकामना की भावना यह उत्साह फीका पड़ जाता है। दरवाजे के ऊपर लगी बंदरवार दिखाई न देकर बटी हुई रस्सी की शक्ल में कुण्डली मारा साँप दिखाई देता है। लेखक कहता है कि जब मन निराशामय होता है तो स्पष्ट चीज भी विभिन्न रूपों में और डरावनी रूप में दिखाई देती है।

विशेष- (1) लेखक ने भोजपुरी लोक-संस्कृति और साहित्य की मिठास में सिक्त कर एक नया क्षितिज प्रदान किया है। (2) लोक-जीवन की सरसता का चित्रण किया गया है। (3) लेखक के संस्कृत तथा भाषा-विज्ञान के प्रकाण्ड पाण्डित्य का परिचय मिलता है। (4) लेखक ने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। (5) लेखक ने नियति को शक्तिशाली बताया है कि सभी कुछ उसी के हाथ में है। हम केवल खिलौने मात्र हैं। (6) निबन्ध की भाषा तत्सम होने पर भी उसकी जीवन्त शक्ति को अक्षुण्ण बनाए हुए है।

(25) **"राम भीगें तो भीगें, राम के उत्कर्ष की कल्पना न भीगे, वह हर बारिश में हर दुर्दिन में सुरक्षित रहे। नर के रूप में लीला करने वाले नारायण निर्वासन की व्यवस्था झेलें, पर नर रूप में उनकी ईश्वरता का बोध दमकता रहे, की पानी की बूँदों की झालर**

में उसकी दीप्ति छिपने न पाये। उस नारायण की सुख-सेज बने अनन्त के अवतार लक्ष्मण, भले ही भीगतें रहें, उनका दुपट्टा, उनका अहर्निश जागर न भीजे, शेषी नारायण के ऐश्वर्य का गौरव अनन्त शेष के जागर-संकल्प से ही सुरक्षित हो सकेगा और इन दोनों का गौरव जगज्जननी आद्यशक्ति के अखण्ड सौभाग्य सीमंत सिंदूर से रक्षित हो सकेगा, उस शक्ति का एकनिष्ठ प्रेम पाकर राम का मुकुट है, क्योंकि राम का निर्वासन वस्तुतः सीता दुहरा निर्वासन है। राम तो लौटकर राजा होते हैं, पर रानी होते ही सीता राजा राम द्वारा वन में निर्वासित कर दी जाती है। राम के साथ लक्ष्मण है, सीता है, सीता वन्य पशुओं से घिरी हुई विजन में सोचती है-प्रसव की पीड़ा हो रही है, कौन इसे बेला में सहारा देगा, कौन प्रसव के समय प्रकाश दिखलायेगा, कौन मुझे संभालेगा, कौन जन्म के गीत गायेगा?"

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यावतरण डॉ. विद्यानिवास मिश्र द्वारा लिखित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' शीर्षक निबन्ध से लिया गया है। यहाँ पर लेखक का कहना है कि मनुष्य की उर्ध्वोमुख चेतना की यही कीमत आदि सनातन समय से चली आ रही है कि जिसके ऐश्वर्य का अभिषेक हो रहा था, वह निर्वासित हो गया। उत्कर्ष की ओर उन्मुख, समाज का चैतन्य अपने ही घर से बेघर कर दिया गया।

व्याख्या- लेखक का राम से इतना निकट का सम्बन्ध लगता है कि लेखक बारिश में अपने लोगों के आने का इंतजार कर रहा है, जो संगीत सुनने के लिए गए हुए हैं। वहीं पर बैठे ही आधी रात में राम के उत्कर्ष का ख्याल आ जाता है। लेखक कहता है कि राम भीगें तो भीगें लेकिन राम की कल्पना मेरे मन में इस समय जो आ रही है वह न भीगें। वह हर बारिश में अर्थात् हर कठिनाई के समय में दुरावस्था में भी सुरक्षित रहें। नर के रूप में लीला करने वाले नारायण को भी मनुष्य की भाँति वनवास जाना पड़ा, लेकिन नर रूप में उनकी ईश्वरता का, ब्रह्मबोध सदैव हमें प्रकाशित करता रहे, पानी जिसमें आर-पार दिखाई देता है उतनी पानी की बूँदों की झालर में राम का नारायण रूप कभी भी लुप्त न हो, वह सदैव दीप्तिमय रहे। नारायण अर्थात् राम की सुख-सेज बने विष्णु के अवतार लक्ष्मण भले ही बारिश में भीगते रहें, लेकिन उनका दुपट्टा अर्थात् रक्षा कवच, उनका दिन-रात जागना अर्थात् अपनी अन्तःवृत्तियों को जाग्रत कर रखा है, वह कभी न भीजें। शेष नारायण के ऐश्वर्य का गौरव अनन्त शेष के अन्तःवृत्तियों को जाग्रत करने वाले लक्ष्मण संकल्प मात्र से ही, सुरक्षित हो सकेंगे। पर इन दोनों का गौरव और जगत् जननी आद्यशक्ति के अखण्ड सौभाग्यवती का सिंदूर भी रक्षित हो सकेगा। इस शक्ति का एकनिष्ठ प्रेम पाकर ही राम का मुकुट है, क्योंकि राम द्वारा दिया गया निर्वासन सीता का रोहरा वनवास है। राम चौदह वर्ष के वनवास से लौटकर आते हैं तो राजा राम बन जाते हैं, पर सीता रानी होते हुए भी राजा राम द्वारा वन में पुनः निर्वासित कर दी जाती हैं। राम वन में गये थे तो उनके साथ सीता-लक्ष्मण थे, परन्तु सीता के साथ वनवास में वन्य पशु हैं। सीता को पुनः निर्वासन होता है तो सीता को प्रसव पीड़ा हो रही है। वह सोचती है कि मुझे इस समय कौन सहारा देगा, कौन प्रसव-पीड़ा के समय प्रकाश दिखायेगा, कौन मेरा सहारा बनेगा। कौन इन नये बच्चों का जन्म के गीत सुनायेगा? आदि प्रश्न सीता के मन में पैदा होते हैं।

विशेष- (1) लेखक ने रामायण को यहाँ पर दोहरा दिया है। (2) नारायण-विष्णु को भी नियति का विधान भोगना पड़ता है। (3) भारतीय जीवन की अजस्र परम्परा से युक्त निबन्ध में लेखक ने जिस शैली का प्रयोग किया है, वह सांस्कृतिक आकलन की सर्वथा मौलिक पद्धति है। (4) लेखक के निबन्ध में लालित्य के अतिरिक्त विचार-समृद्धि भी है। (5) लेखक ने गूढ़ विचार ग्रन्थित विचारात्मक शैली और कवित्यपूर्ण भावात्मक शैली का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है।

(26) **"सीता जंगल की सूखी लकड़ी बीनती है, जलाकर अंजोर करती है और जुड़वाँ बच्चों का मुँह निहारती है। दूध की तरह अपमान का ज्वाला में चित्त कूद पड़ने के लिए उफनता है और बच्चों की प्यारी और मासूम सूरत देखते ही उस पर पानी के छींटे पड़ जाते हैं, उफान दब जाता है। पर इस निर्वासन में भी सीता का सौभाग्य अखण्डित है, वह राम के मुकुट को तब भी प्रमाणित करता है, मुकुटधारी राम को निर्वासन से भी बड़ी व्यथा देता है और एक बार अयोध्या जंगल बन जाती है, स्नेह की रस धार रेत बन जाती है, सब कुछ उलट-पुलट हो जाता है।"**

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यावतरण डॉ. विद्यानिवास मिश्र द्वारा लिखित निबन्ध 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' शीर्षक से लिया गया है। इस अवतरण में लेखक ने बताया है कि सीता को पुन: जब निर्वासित कर दिया जाता है, तब मुकुटधारी राम को सीता का निर्वासन भी व्यथा देता है।

व्याख्या- लेखक कहता है कि सीता जब राम द्वारा पुन: निर्वासित कर दी जाती है तो सीता जंगल की सूखी लकड़ियाँ बीनती हैं, उन्हें जलाकर ही उजाला करती है। जब अपने दोनों बच्चों का मुँह निहारती है तो दूध की भाँति उबल पड़ती है और चिता में कूदने के लिए तैयार हो जाती है। सीता के मन में ख्याल आता है कि एक बार निर्वासित हो जाने के बाद उसे पुन: राम निर्वासित कर देते हैं जबकि वे उसकी अग्निपरीक्षा भी ले चुके हैं। फिर बच्चों की प्यारी भोली सूरत देखकर उस पर पानी के छींटे पड़ जाते हैं और सीता का मन फिर शांत हो जाता है। पर इस निर्वासन में भी सीता का सौभाग्य अखण्डित है, वह राम के मुकुट को तब भी प्रमाणित करता है। मुकुटधारी राम अर्थात् राम मुकुट तो धारण कर लेते हैं लेकिन पुन: सीता को निर्वासित कर देना उन्हें बहुत व्यथित कर देता है। इस निर्वासन से राम को यह प्रमाण मिल जाता है कि अयोध्या एक बार जंगल में परिवर्तित हो जाती है, स्नेह की रसधार नदियाँ रेत में परिवर्तित हो जाती हैं, सब कुछ उलट-पुलट हो जाता है। पुन: राम का मुकुट उसे राजा राम भी नहीं रहने देती भले ही वे मुकुट धारण कर लेते हैं।

विशेष- (1) लेखक की सीता के साथ सहानुभूति व्यक्त की गई है। (2) रामायण के उत्तरकाण्ड के प्रसंग को लेखक ने व्यक्त किया है। (3) लेखक ने उपमा अलंकार की योजना की है। (4) भाषा में तत्सम शब्दों का प्रयोग किया गया है। (5) यहाँ लेखक की विद्वता का परिचय मिलता है।

(27) **"तार टूट जाता, मेरे राम का मुकुट भीग रहा है, यह भीतर से कहाँ पाऊँ अपनी उदासी से ऐसा चिपकाव अपने सकरे-से दर्द से ऐसा रिश्ता, राम को अपना कहने के लिए केवल उनके लिए भरा हुआ हृदय कहाँ पाऊँ? मैं शब्दों के घने जंगलों में घिरा गया हूँ। जानता हूँ, उन्हीं जंगलों के आस-पास किसी टेकड़ी पर राम की पर्णकुटी है, पर इन उलझाने वाले शब्दों के अलावा मेरे पास कोई राह नहीं। शायद, सामने उपस्थित अपने ही मनोराज्य के युवराज, अपने बचे-खुचे स्नेह के पात्र, अपने भविष्यत् के संकट की चिंता में राम के निर्वासन का जो ध्यान आ जाता है, उनसे भी अधिक एक बिजली के जगमगाते शहर में एक पढ़ी-लिखी चन्द दिनों की मेहमान लड़की के एक रात कुछ देर से लौटने पर अकारण चिंता हो जाती है। उसमें सीता का ख्याल आ जाता है। वह राम के मुकुट या सीता के सिंदूर के भीगने की आशंका से जोड़े न जोड़े, आज की दरिद्र अर्थहीन उदासी को कुछ ऐसा अर्थ नहीं दे देता, जिससे जिन्दगी ऊब से कुछ उबर सके?"**

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यावतरण डॉ. विद्यानिवास मिश्र द्वारा लिखित 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' शीर्षक निबन्ध से लिया गया है। यहाँ पर लेखक रात को अंधेरी बारिश में अपने घर से गये हुए मेहमानों की चिंता कर रहा है, अचानक लेखक राम, सीता, लक्ष्मण, वनवास के बारे में सोचता

है तो अचानक वह राम के मुकुट भीगने का तार टूट जाता है, उसी का चित्रण यहाँ पर किया गया है।

व्याख्या- लेखक कहता है कि मुझे बारिश में राम के मुकुट भीगने का डर था, ज्यों ही यह रील मेरे मन से टूटती है तो लेखक सोचता है कि मेरे भीतर जो उदासी बसी हुई है, संकरा दर्द मेरे भीतर है तो राम को सच्चे हृदय से अपना कहने के लिए हृदय कहाँ से लाऊँ। लेखक अनेकों प्रश्नों से घिरा हुआ है। लेखक कहता है कि मैं यह भी जानता हूँ कि इन्हीं जंगलों के आस-पास किसी टेकड़ी पर राम की पर्णकुटी है। लेखक कहता है कि मैं इस समय इतना उलझा हुआ हूँ कि उलझाव के अतिरिक्त मेरे पास कुछ नहीं है। अपने आँखों के समक्ष उपस्थित अपने ही मनोराज्य के युवराज, अपने बचे-खुचे स्नेह के पात्र, अपने भविष्य के संकट की चिंता में उलझे राम के निर्वासन का जब ख्याल आता है तो उससे हृदय में एक बिजली-सी कौंध जाती है, उधर लेखक अपने घर में आयी महानगरीय लड़की की चिंता कुछ रात देर से लौटने पर अकारण ही चिंता हो जाती है, इसी बीच लेखक को सीता का भी ख्याल आता है, वह राम के मुकुट के भीगने और सीता के सिंदूर के भीगने की चिंता से जोड़े या न जोड़े, लेकिन आज की दरिद्र, अर्थहीन उदासी को ऐसा कुछ अर्थ या सांत्वना दे जिससे व्यक्ति जिन्दगी में आई ऊब से कुछ उबर सके। आज चारों ओर लेखक को ऊब ही ऊब दिखाई देती है।

विशेष-

(1) *लेखक कहता है कि आज के ऊब भरे वातावरण में व्यक्ति अपने आपको राम या सीता से नहीं जोड़ सका है।*

(2) *आज विचित्र से अनमनेपन में अकारण चिंता किसी के लिए होती है।*

(3) *आज मनुष्य को अपने भीतर यह प्रतीत नहीं होता कि मैं किसी का हूँ या कोई मेरा है।*

(4) *भारतीय जीवन की अजस्र परम्परा से युक्त निबन्ध में लेखक ने सांस्कृतिक आकलन की शैली का प्रयोग किया है।*

(5) *संस्कृत तथा भाषा विज्ञान के प्रकाण्ड विद्वान के रूप में दिखाई देते हैं।*

पगडण्डियों का जमाना

(28) **जिसे देवता समझ बैठा था, वह तो आदमी निकला। मैंने अपनी आत्मा से पूछा, 'हे मेरी आत्मा, तू ही बता! क्या गाली खाकर बदनामी करवाकर मैं ईमानदार बना रहूँ?' आत्मा ने जवाब दिया, 'नहीं, ऐसी कोई जरूरत नही है। इतनी जल्दी क्या पड़ी है? आगे जमाना बदलेगा, तब बन जाना।' मेरी आत्मा बड़ी सुलझी हुई बात कह देती है कभी-कभी। अच्छी आत्मा 'फोल्डिंग' कुर्सी की तरह होनी चाहिए। जरूरत पड़ी तब फैलाकर उस पर बैठ गए; नहीं तो मोड़कर कोने में टिका दिया। जब कभी आत्मा अड़ंगा लगाती है, तब मुझे समझ में आता है कि पुरानी कथाओं के दानव अपनी आत्मा को दूर किसी पहाड़ी पर तोते में क्यों रख देते थे। वे उससे मुक्त होकर बेखटके दानवी कर्म कर सकते थे। देव और दानव में अब भी तो यही फर्क है-एक की आत्मा अपने पास ही रहती है और दूसरे की उससे दूर।**

सन्दर्भ- हरिशंकर परसाई ने अपने निबन्ध 'पगडण्डियों का जमाना' में यह प्रसंग उठाया कि उनके एक मित्र उनसे अपने पुत्र के लिए अंक बढ़वाने आये। परसाई ने कहा चूँकि यह कार्य अनैतिक है अत: नहीं करूँगा-उनके मित्र रुष्ट हुए और कहने लगे आजकल साला बड़ा ईमानदार

बनता है उसकी प्रतिक्रिया पर उन्होंने अपनी अंतरात्मा से पूछा कि मुझे क्या करना चाहिए। इस पर उनकी आत्मा के विचार को उन्होंने प्रकट किया है।

व्याख्या- परसाई का कथन है जिसे मैंने देव तुल्य या सत्यनिष्ठ समझा था वह तो सामान्य पुरुष की भाँति मिथ्याभाषी निकला तब मैंने अपनी अन्तर आत्मा से यह प्रश्न किया है। आत्मा अब तू ही स्पष्ट कर कि मैं लोगों के कुवचन सुनकर एवं अपनी अप्रतिष्ठा करवाकर सत्यनिष्ठ बना रहूँ हरिशचन्द्र का अनुगामी बनूँ तो मेरी आत्मा ने उत्तर दिया उसकी कोई आवश्यकता नहीं। अभी तू शीघ्रता मत कर भविष्य के युग में परिवर्तन होगा उस समय लोग सत्यनिष्ठ होंगे तब तू भी सत्यनिष्ठ बन जाना। वे लिखते हैं मेरी आत्मा कभी-कभी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं स्पष्ट बात कह देती है। क्योंकि अच्छी आत्मा को बंधने वाली या फोल्डिग कुर्सी की भाँति होना चाहिए ताकि जब आवश्यकता हो उसे फैला कर बैठ जाओ और नहीं तो उसे मोड़कर एक कोने में रख दो। अत: जब कभी मेरी अन्तरात्मा मुझे टोकती या रोकती है तब मुझे विचार उठता था कि पुरानी कहानियों में राक्षस अपनी आत्मा को किसी तोते में क्यों रख देते थे जो दूर किसी पहाड़ी पर रहता था। क्योंकि तब वे आत्मा से मुक्त होकर डंके की चोट पर नि:शंक अपने दुष्टता पूर्वक कार्यों को कर लेते थे। देवता और राक्षस में यही अन्तर है। अर्थात् देवता के ऊपर आत्मा का अंकुश होता है राक्षसों पर नहीं। क्योंकि एक की आत्मा उसके समीप होती है निकट होती है जबकि दूसरे की उससे दूर अन्य स्थान पर होती है।

उसने कहा था

(29) **"मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्म भर की घटनाएं एक-एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ होते हैं, समय की धुंध ऊपर से बिल्कुल हट जाती।"**

संदर्भ- प्रस्तुत पंक्तियां चंद्रधर शर्मा गुलेरी संकलित कहानी "उसने कहा था" से ली गई है। लहनासिंह का मृत्यु समय निकट है। इस समय उसकी स्मृति में पूर्व जीवन की सभी घटनाएं आ रही हैं। प्रस्तुत पंक्तियों में कहानीकार इसी तत्व को पल्लवित कर रहा है।

व्याख्या- जीवन के अंतिम क्षणों में मनुष्य के समक्ष उसके जीवन की सभी घटनाएं आ जाती हैं। उनकी स्मृति साफ हो जाती है। जीवन के सारे दृश्य उसे स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं। जिस प्रकार शीशे पर से धूल हट जाने से स्पष्ट दिखाई देने लगता है, उसी तरह से अंतिम समय में कर्म और संघर्ष की धूल मनुष्य की आँखों से हट जाती है और उसे अपने जीवन की विगत घटनाएं चलचित्र की भांति दिखाई देने लगती है-लहना के सामने-अमृतसर में लड़की से भेंट, सूबेदारनी द्वारा लहना से सूबेदार एवं वजीरसिंह की रक्षा का वचन इत्यादि समस्त घटनाएं याद आ जाती हैं।

विशेष- खड़ी बोली, व्यंजना शब्द शक्ति। मनोवैज्ञानिक सत्य की मीमाँसा है।

(30) **क्या मजाल है कि 'जी' और 'साहब' बिना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती ही नहीं है पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती हुई। यदि कोई बुढ़िया बार-बार चितौनी देने पर भी लीक से नहीं हटती तो उनकी वचनावली के यह नमूने हैं-हट जा जीणे जोगिए, हट जा करमा वालिए।**

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियाँ चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' की प्रसिद्ध कथा 'उसने कहा था', से उद्धृत हैं जिनमें अमृतसर के उन ताँगों वालों की मानसिकता व्यंजित है जो आगे से पैदल यात्रियों को हटाने हेतु मधुर शब्दावली का प्रयोग करते हैं-

व्याख्या- कहानीकार ने स्पष्ट किया है जिनकी पीठ इक्के गाड़ी वालों की जबान का चाबुक सहते-सहते छिल गयी है, उन्हें अमृतसर के बम्बकार्ट वालों की जबान का मरहम अवश्य लगाना चाहिए। उनका उच्चारण मधुर होता ही है, साथ ही जी और साहब सम्बोधन भी उनकी भाषा में समाहित रहता है और इन्हीं शब्दों के साथ प्रार्थना करते हुए लोगों को हटाया जाता है। ऐसा नहीं है कि उनको सामने से हटाने के कठोर तरीके नहीं आते जैसा अन्यत्र होता है, उन उनकी जीभ बड़ी मधुर चलती है, जो मानो मीठी छुरी की सी मार करती है और बड़ी महीन मार भी करती है। उदाहरण के लिए यदि कोई बुढ़िया बार-बार चेतावनी के बाद भी सामने से नहीं हट पाती है तो वह बड़े मीठे शब्दों में उच्चारण करते हैं-हे भाई तू अभी जीने योग्य है, अत: सामने से हट जा। तेरे कर्म, (भाग्य) बड़ा अच्छा है, जरा हट जा। इसी प्रकार की वचनावली से वे अपनी शालीनता का परिचय देते हैं।

विशेष- (1) वातावरण की स्थिति व्यंजित है। (2) भाषा बड़ी प्रभावी है।

(31) **जैसा मैं जानता ही न होऊँ। रात-भर तुम अपने दोनों कम्बल उसे उढ़ाते हो और आप सिंगड़ी के सहारे गुजर करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्ते पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न माँदे पड़ जाना। जाड़ा क्या मौत है और निमोनिया में मरने वालों को मुरब्बे नहीं मिला करते हैं।**

प्रसंग- लहनासिंह और बजीरासिंह की बात हो रही है, पलटन खाइयों में जमी है और युद्ध जारी है उसी समय बजीरासिंह पूछता है, अब बोधासिंह कैसा है। लहना कहता है 'अच्छा है' तब बजीरासिंह कहता है।

व्याख्या- बजीरासिंह कहता है, शायद तुम यह जानते होंगे कि मुझे कुछ भी पता नहीं है, मैं सब कुछ जानता हूँ कि तुम बोधा की कितनी सेवा करते हो, रात भर तुम अपने दोनों कम्बल उसे ही उढ़ा देते हो और स्वयं सिगड़ी के पास बैठकर रात काट देते हो इतना ही नहीं उसके पहरे पर भी स्वयं चले जाते हो और पहरा दे आते हो। अपने सूखे तख्ते पर उसको सुला देते हो और स्वयं कीचड़ में ही पड़े रहते हो यह सब करके कहीं तुम बीमार तो नहीं पड़ जाओगे, जाड़ा कितना भीषण है जिसमें निमोनिया हो जाने की पूरी सम्भावना है। शायद तुमको यह नहीं मालूम कि निमोनिया से मरने वालों को उचित स्थान भी प्राप्त नहीं होता है।

साहित्यिक वैशिष्ट्य- (1) कहानी का मुख्य कथ्य है 'उसने कहा था' अर्थात् सूबेदारनी ने प्रार्थना की थी कि उसके सुहाग और पुत्र की रक्षा करना-शायद लहनासिंह यही फर्ज निभा रहा है। (2) लहना की पर सेवा की भावना भी व्यंजित है। (3) भाषा बड़ी सहज, सरल है। (4) शैली भावात्मक है।

(32) **अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग! तुम्हें याद है, एक दिन टाँगे वाले का घोड़ा दही वाले की दूकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे। आप घोड़े की लातों में चले गये थे और मुझे उठाकर दूकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यही मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।**

प्रसंग- लहनासिंह पलटन में था, छुट्टी पर गाँव गया, मार्ग में सूबेदार हजारासिंह के गाँव आया। वहाँ उसे बताया गया कि सूबेदारनी बुला रही है। यह सूबेदारनी लहनासिंह की पूर्व परिचित थी, बचपन की परिचित थी। आज वह कह रही है-

व्याख्या- सूबेदारनी ने बताया मेरा पति और बेटा दोनों रणक्षेत्र में जा रहे हैं जहाँ तुम भी हो। यही दोनों मेरे भाग्य हैं, मेरे सर्वस्व हैं, तुम्हें याद होना चाहिए कि बचपन में एक बार जब हम तुम दोनों ही बाजार में थे, सहसा ताँगे वाले का घोड़ा दही वाले की दूकान पर बिगड़ गया था, उस समय तुमने मेरी रक्षा की थी, मेरे प्राण बचाये थे और अपने प्राणों का मोह त्याग कर यह सब किया था, आप तो घोड़े की टाँगों के नीचे आ गये थे और मुझे उठाकर दूकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। मेरी प्रार्थना है, इसी प्रकार इन दोनों की रक्षा करना, मैं तुम्हारे आगे आँचल फैलाकर अपने सुहाग और पुत्र के प्राणों की रक्षा की भीख माँग रही हूँ।

साहित्यिक वैशिष्ट्य- (1) यह पंक्तियाँ पूर्व दीप्ति के आधार पर रची गयी हैं। लहनासिंह अपनी मृत्यु से पूर्व स्थितियों पर विचार कर रहा है। (2) भावात्मक और कर्तव्यपरायणता इन पंक्तियों की सविशेष विशेषता है। (3) भाषा सहज स्वाभाविक है। (4) शौर्य, पराक्रम की गहरी व्यंजना हुई है।

पूस की रात

(33) **"कुत्ते की देह से न जाने कैसी दुर्गन्ध आ रही थी, पर वह उसे अपनी गोद में चिपटाये हुये ऐसे सुख का अनुभव कर रहा था, जो इधर महीनों से उसे न मिला था। जबरा शायद समझ रहा था कि स्वर्ग यही है और हलकू की पवित्र आत्मा में तो उस कुत्ते के प्रति घृणा की गंध तक न थी। अपने किसी अभिन्न मित्र या भाई को भी वह इतनी ही तत्परता से गले लगाता।"**

संदर्भ एवं प्रसंग - प्रस्तुत गद्यावतरण हिन्दी कहानी को समृद्ध बनाने वाले, किसानों और मजदूरों की पीड़ा को कहानी के माध्यम से व्यक्त करने वाले, आदर्शोन्मुख, यथार्थवादी कहानीकार श्री प्रेमचंदजी द्वारा लिखित "पूस की रात" कहानी से अवतरित किया गया है।

पूस की कंपाने वाली रात में हलकू अपने कुत्ते जबरा के साथ खेत की रखवाली हेतु गया है। पूस की शीत उसके शरीर और हड्डियों में प्रवेश कर रही है। इस शीत से बचने के लिए हलकू पहले तो चिलम पीता है लेकिन जब चिलम से भी जाड़ा नहीं जाता तो वह अपने प्रिय कुत्ते जबरा को अपनी गोद में सुला लेता है।

व्याख्या - कहानीकार कहता है कि जबरा के शरीर से दुर्गन्ध आ रही थी लेकिन उसे अपनी गोद में लिटाते हुए हलकू स्वर्गीय आनन्द का अनुभव कर रहा था। वह जिस सुख का अनुभव कर रहा था वह सुख तो उसे महीनों से प्राप्त नहीं हुआ था। जबरा यह समझ रहा था कि इससे बड़ा सुख और क्या हो सकता है? उसके लिए यही स्वर्ग का सुख था। इस असामान्य अवस्था में हलकू की आत्मा पवित्रता के उच्चतम शिखर पर पहुँच गई थी। उसके मन में उस कुत्ते के लिए किसी प्रकार का घृणाभाव नहीं था। हलकू ने उतने ही प्रेम और आत्मीयता से जबरा को अपनी गोद में सुलाया जितनी आत्मीयता से वह अपने किसी भाई या अपने अभिन्न मित्र को गले लगाता। हलकू की आत्मा का विस्तार हो चुका था। कुत्ते जैसे सामान्य जीव के साथ हुई मित्रता के कारण उसकी आत्मा के समस्त द्वार खुल चुके थे और उसकी आत्मा का प्रत्येक अणु प्रकाशित होने लगा था।

विशेष - (1) यहाँ हलकू के चरित्र का उज्जवल पक्ष अभिव्यक्त हो रहा है। (2) भाषा सरल, सहज और भावानुकूल है। (3) चित्रात्मक शैली है।

(34) **कर चुके दूसरा उपाय! जरा सुनूँ तो कौन उपाय करोगे? कोई खैरात दे देगा कम्बल? न जाने कितना बाकी है, जो किसी तरह चुकने में ही नहीं आती। मैं तो कहती**

हूँ, तुम क्यों नहीं खेती छोड़ देते? मर-मर काम करो, उपज हो तो बाकी दे दो, चलो छुट्टी हुई। बाकी चुकाने के लिए ही तो हमारा जन्म हुआ है। पेट के लिए मजूरी करो। ऐसी खेती से बाज आये।

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियाँ प्रेमचन्द द्वारा रचित 'पूस की रात' कहानी से अवतरित हैं। इन पंक्तियों को कहने वाली मुन्नी है जो अपने पति हल्कू को सम्बोधित करके कह रही है। हल्कू ने मजदूरी करके किसी तरह तीन रुपये जोड़े थे ताकि माघ-पूस की रात में खेत की रखवाली करते समय वह कम्बल ओढ़कर सर्दी से अपना बचाव कर सके। परन्तु उसने सहना से कर्जा ले रखा है तथा एक सुबह सहना हल्कू के घर आकर अपना ऋण माँगता है तब उसकी घुड़कियों व गालियों से भयभीत होकर हल्कू अपनी पत्नी मुन्नी से जोड़े हुए तीन रुपये देने के लिए कहता है। इसके साथ ही वह कहता है कि वह शीघ्र ही कम्बल के लिए दूसरा कोई उपाय सोचेगा।

व्याख्या- पति हल्कू के मुख से यह सुनकर की वह कम्बल के लिए कोई दूसरा उपाय सोचेगा, मुन्नी घर की परिस्थिति से परिचित होने के कारण क्रोध में भरकर पति से कहती है कि अब तो तुम कर चुके दूसरा उपाय। अर्थात् यदि तुमने ये पैसे दे दिये तो तुम कम्बल ही नहीं खरीद पाओगे। वह कहती है कि मुझे भी तो बताओ वह कौनसा दूसरा उपाय है जिससे तुम कम्बल खरीद लोगे। क्या कोई व्यक्ति तुम्हें मुफ्त अथवा दान में एक कम्बल दे देगा?

इसके पश्चात् वह अपने शोषण के संदर्भ में कहती है कि न जाने इन महाजनों, ऋणदाताओं आदि का कितना ऋण बाकी बचा हुआ है कि साल-दर-साल हम अपनी फसल व मजदूरी से मिले धन को भी उन्हें सौंपते आ रहे हैं फिर भी उनका कर्जा उतरता ही नहीं है। कहने का अभिप्राय यह है कि महाजन इन अनपढ़ किसानों का सूद के नाम पर निरंतर शोषण करते रहते हैं और किसान जीवन भर अपने मूल का सूद चुकाने में लगा रहता है जबकि मूल ज्यों का त्यों रहता है।

इस ऋण-चक्र से बाहर निकलने में स्वयं को असमर्थ पाकर मुन्नी हल्कू से कहती है तुम्हें यह खेती अब छोड़ देनी चाहिए क्योंकि हम वर्ष-भर तो खेत में मेहनत करते हैं और जब फसल बिकती है तो उधार देने में ही वह राशि चली जाती है और अब फिर से ऋण लेकर खेती करो। इस तरह से तो यह लगता है कि हमारा जन्म ही इस ऋण को चुकाने के लिए हुआ है। साल भर की कमाई ऋण चुकाने में चली जाती है तथा पेट भरने के लिए मजदूरी करनी पड़ती है। ऐसी खेती से तो दूर रहना ही अच्छा है।

विशेष- (1) मुन्नी के इस कथन में छोटे किसानों के शोषण की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। (2) पात्रानुकूल संवाद है जिसमें जनम, मजूरी, आदि शब्दों को अशुद्ध प्रयोग हुआ है। (3) अभिधा शब्द शक्ति है। (4) प्रसाद गुण का समावेश है। (5) मुहावरे (बाज आना) का सार्थक प्रयोग हुआ है। (6) प्रचलित विदेशज शब्दों जैसे खैरात, बाज (अरबी) आदि का प्रयोग हुआ है। (7) सरल, सहज, भावानुकूल भाषा है।

(35) **जबरा समझ रहा था कि स्वर्ग यहीं हैं और हल्कू की पवित्र आत्मा में तो उस कुत्ते के प्रति घृणा की गंध तक न थी। अपने किसी अभिन्न मित्र या भाई को भी वह इतनी ही तत्परता से गले लगाता। वह अपनी दीनता से आहत न था; जिसने आज उसे इस दशा में पहुँचा दिया। नहीं, इस अनोखी मैत्री ने जैसे उसकी आत्मा के सब द्वार खोल दिए थे और उसका एक-एक अणु प्रकाश से चमक रहा था।**

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियाँ प्रेमचन्द द्वारा रचित 'पूस की रात' कहानी से अवतरित हैं। इन पंक्तियों से पूर्व कहानीकार यह बता चुका है कि सहना को तीन रुपये दे देने से हल्कू को अब माघ-पूस की रातों में बिना कम्बल के ही खेतों में रखवाली करनी पड़ रही है। हल्कू अपने कुत्ते जबरा के साथ मंडया में लेटा हुआ है परन्तु शीत लहर उसे सोने नहीं देती है। अन्ततः वह जबरा

को उठाकर अपने पास गोदी में सुला लेता है। इन पंक्तियों में प्रेमचन्द ने कुत्ते व हल्कू दोनों की मानसिक अवस्थाओं का चित्रण किया है।

व्याख्या- हल्कू ने जब कड़ाके की ठण्ड से बचने के लिए अपनी खाट के नीचे लेटे हुए जबरा को उठाकर अपनी गोदी में ले लिया तब जबरा को तो यह अनुभव हो रहा था कि हल्कू की गोदी में स्वर्ग है। कहने का अभिप्राय यह है कि कुत्ता जबरा अपने मालिक की गोदी में पहुँचकर स्वर्ग-सुख को अनुभव कर रहा था वहीं दूसरी ओर हल्कू की भी आत्मा अत्यन्त निर्मल व पवित्र थी और उसमें कुत्ते के प्रति कोई घृणा भाव विद्यमान न था। उसने जबरा को अपनी छाती से लगाते समय वही आत्मीयता दर्शायी, जो वह अपने ही सगे भाई या गहरे मित्र को अपने गले से लगाते समय दर्शाता। कहानीकार कहता है कि जबरा कुत्ते को अपनी गोदी में लेते समय उसमें अपनी निर्धनता की कोई हीन भावना नहीं थी दूसरे शब्दों में, यह भी कहा जा सकता है कि भले ही हल्कू ने सर्दी से बचने के लिए जबरा को अपनी गोदी में ले लिया था परन्तु इस कार्य से उसके मन में अपनी निर्धनता या हीनता के कारण कोई गलत विचार नहीं आया था जबकि इसी निर्धनता के कारण कम्बल न खरीद सकने के कारण हल्कू को अब कुत्ते के संग सोना पड़ रहा था।

कहानीकार कहता है कि हल्कू व जबरा की इस विचित्र मित्रता ने हल्कू की आत्मा से सभी दुख-सुख, अपने-पराये, ऊँच-नीच, छोटे-बड़े आदि के भाव को समाप्त कर दिया था और उसकी आत्मा का एक-एक अणु दिव्य प्रकाश से जगमगा रहा था। कहने का भाव यह है कि उसकी आत्मा से न केवल ऊँच-नीच का बल्कि मानव-पशु का भी भेद समाप्त हो गया था और उसमें सात्त्वक गुणों का प्रकाश जगमगा रहा था।

विशेष- (1) कहानीकार ने कुत्ते व हल्कू दोनों की मानसिक अवस्था का सूक्ष्म अवलोकन करके उसे चित्रित किया है। (2) गद्यांश में मनोवैज्ञानिक तथ्य को आधार बनाकर हल्कू के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है। (3) यथार्थवादी शैली का प्रयोग हुआ है। (4) अभिधा शब्द शक्ति है। (5) तत्सम शब्दावली का (अभिन्न, अणु आदि) का प्राधान्य है। (6) भाषा प्रवाहमयी है तथा अंतिम पंक्ति में काव्यात्मक भाषा का प्रयोग हुआ है। (7) प्रसाद गुण का समावेश है।

(36) **बगीचे में खूब अंधेरा छाया हुआ था और अंधकार में निर्दय पवन पत्तियों को कुचलता हुआ चला जाता था। वृक्षों से ओस की बूँदें टपटप नीचे टपक रही थीं। एकाएक एक झोंका मेहँदी की खुशबू के लिए हुआ आया।**

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियाँ प्रेमचन्द द्वारा रचित 'पूस की रात' कहानी से उद्धृत हैं। इन पंक्तियों से पूर्व पूस की रात में पुरानी गाढ़े की चादर ओढ़े हल्कू अपनी फसल की रखवाली के लिए खेत की मँडया पर लेटा हुआ है। वह आठ नौ बार चिलम पी चुका है, जबरा को गोदी में लेकर सोने का प्रयास कर चुका है। परन्तु उसे सर्दी के कारण नींद नहीं आ रही है। अन्ततः वह थोड़ी-दूरी पर स्थित आम के बाग में नीचे पड़ी सूखी पत्तियों को जलाकर आग तापने के उद्देश्य से वहाँ जाता है। अवतरित पंक्तियों में इसी आम के बाग के दृश्य को चित्रित किया गया है।

व्याख्या- कहानीकार कहता है कि पूस की अंधेरी रात में जब हल्कू आम के बाग में पहुँचा तो उसने देखा कि बगीचा गहरे अंधकार में डूबा हुआ था तथा जाड़ों में चलने वाली शीत लहर सम्भवतः इसी अंधेरे के कारण कुछ न देख पाने के कारण वहाँ पड़ी हुई सूखी पत्तियों को कुचलती हुई आगे बढ़ रही थी। कहने का अभिप्राय यह है कि पूस में चलने वाली शीत लहर इतनी तीव्र गति से बह रही थी कि बगीचे में खड़े आम के पेड़ भी उसे मन्द करने में असमर्थ थे और वह शीत लहर बगीचे में पड़ी पत्तियों को अपने प्रभाव से इधर-उधर कर रही थी। दूसरी ओर ओस वृक्षों के पत्तों पर इकट्ठी होकर बूँद के रूप में लगातार नीचे टपक रही थी। ऐसी स्थिति में अचानक शीत लहर का एक झोंका आया जिसमें मेहँदी के फूलों की महक भरी हुई थी।

अन्तिम पंक्ति का यह अर्थ भी निकाला जा सकता है कि शीत लहर इतनी तेज चल रही थी कि आम के बाग से दूर खड़े मेहँदी पौधों पर खिले फूलों की खुशबू आम के बाग तक आ रही थी।

विशेष- (1) कहानीकार ने पूस की रात व आम के बगीचे के संदर्भ में प्रकृति का प्रभावशाली चित्रण किया है। (2) कहानीकार ने 'पवन' को पुल्लिग माना है जो कि व्याकरणिक दृष्टि से गलत है क्योंकि हिन्दी में 'पवन' को स्त्रीलिंग माना जाता है। (3) काव्यात्मक भाषा का प्रयोग हुआ है। (4) अभिधा व लक्षणा शब्द शक्तियाँ विद्यमान हैं। (5) प्रसाद गुण का समावेश है। (6) विदेशज शब्दों जैसे खूब, खुशबू (फारसी) का प्रयोग हुआ है। (7) 'वृक्षों से ओस की बूँदें टपटप नीचे टपक रही थीं' वाक्य में क्रियाशीलता दिखाई देती है।

गुण्डा

(37) **ईसा की अठारहवीं शताब्दी के अंतिम भाग में वही काशी नहीं रह गयी थी, जिसमें उपनिषद् के अजातशत्रु की परिषद् में ब्रह्मविद्या सीखने के लिए विद्वान्, ब्रह्मचारी आते थे। गौतम बुद्ध और शंकराचार्य के धर्म-दर्शन के वाद-विवाद, कई शताब्दियों से लगातार मन्दिरों और मठों के ध्वंस और तपस्वियों के वध के कारण प्रायः बन्द से हो गए थे। यहाँ तक कि पवित्रता और छुआछूत में कट्टर वैष्णव धर्म भी उसी विश्रृंखलता में नवागन्तुक धर्मोन्माद में अपनी असफलता देखकर काशी में अघोर रूप धारण कर रहा था।**

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यांश जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'गुण्डा' से अवतरित है। इन पंक्तियों से पूर्व कहानीकार नन्हकू सिंह के बाह्य-व्यक्तित्व पर प्रकाश डाल चुका है और यह भी बता चुका है कि लोग उसे नगर का गुण्डा कहते हैं। अवतरित पंक्तियों में कहानीकार ने काशीनगर की तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक आदि परिस्थितियों पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या- कहानीकार कहता है कि अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक काशी नगर की सामाजिक, धार्मिक आदि परिस्थितियों में अत्यधिक परिवर्तन आ चुका था। इस काल की काशी अब वैसी ही काशी नहीं थी जैसा कि उपनिषदों में बताया गया है कि अजातशत्रु के शासन काल में उसकी परिषद् में दूर-दूर से विद्वान् ब्रह्मचारी ब्रह्मविद्या अर्थात् वेदों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आया करते थे। कहने का अभिप्राय यह है कि किसी समय काशी के राजा अजातशत्रु की परिषद् में अनेक विद्वान् ब्रह्मविद्या को सीखने के लिए आते थे परन्तु अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक काशी नगरी अब वैसी नहीं रही और यहाँ कोई भी विद्वान् ब्रह्मविद्या सीखने नहीं आता था।

किसी समय काशी नगरी में स्थित मंदिरों व मठों में महात्मा बुद्ध और शंकराचार्य द्वारा स्थापित दार्शनिक व धार्मिक सिद्धान्तों पर वाद-विवाद हुआ करते थे परन्तु अनेक शताब्दियों से विदेशी आक्रमणकारियों व कुछ कट्टर पंथी लोगों द्वारा इन्हीं मन्दिरों, मठों को तोड़े जाने के कारण तथा इन मंदिरों, मठों में धर्म, दर्शन आदि पर वाद-विवाद करने वाले तपस्वियों, चिंतकों, दार्शनिकें आदि का वध किए जाने के कारण अब यहाँ महात्मा बुद्ध व शंकराचार्य के मतों पर वाद-विवाद होने लगभग बंद से हो गए हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि काशी नगरी कभी धर्म, दर्शन आदि विषयों के वाद-विवाद का केन्द्र हुआ करती थी परन्तु अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक ये वाद-विवाद मन्दिरों, मठों के तोड़े जाने व यहाँ पर रहने वाले अनुयायियों की हत्या किए जाने के कारण लगभग समाप्त से हो गए थे।

कहानीकार बताता है कि अठारहवीं शताब्दी के अंत तक काशी नगरी की सामाजिक व धार्मिक परिस्थिति इतनी परिवर्तित हो चुकी थी कि वैष्णव धर्म जो कभी पवित्रता और छुआछूत में

गहरी आस्था रखता था, वह अपनी परम्परा, सिद्धान्त आदि की श्रृंखला से अलग होकर, नए-नए आने वाले धर्मों के उन्माद तथा उसके सामने अपने धर्म की असफलता को देखकर, वहीं वैष्णव धर्म अब नरमाँस, मद्य आदि का भक्षण करने व मल, मूत्रादि तक घृणा न करने वाले अघोर रूप में बदलता जा रहा था। कहने का भाव यह है कि पवित्रता और छुआछूत में विश्वास रखने वाला वैष्णव धर्म इसलिए अघोर रूप में परिवर्तित होता जा रहा था, क्योंकि उसके समक्ष आने वाले नए-नए धर्म उसकी असफलता का कारण बनते जा रहे थे। अर्थात् वैष्णव धर्म के अनुयायी दूसरे धर्मों से प्रभावित होते जा रहे थे।

विशेष- (1) कहानीकार ने अठारहवीं शताब्दी की काशी नगरी की सामाजिक व धार्मिक परिस्थितियों पर प्रकाश डाला है। (2) तुलनात्मक व वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। (3) अभिधा शब्द शक्ति सम्पूर्ण गद्यांश में विद्यमान है। (4) प्रसाद गुण का समावेश है। (5) तत्सम शब्दावली का बाहुल्य है जिसके लिए प्रसाद जी का साहित्य प्रसिद्ध है। (6) भाषा सारगर्भित, प्रभावशाली व विषयानुकूल है।

(38) **उसी समय समस्त न्याय और बुद्धिवाद को शस्त्र-बल के सामने झुकते देखकर काशी के विच्छिन्न और निराश नागरिक जीवन ने एक नवीन सम्प्रदाय की सृष्टि की। वीरता जिसका धर्म था। अपनी बात पर मर मिटना, सिंह-वृत्ति से जीविका ग्रहण करना, प्राण-भिक्षा माँगने वाले कायरों और चोट खाकर गिरे हुए प्रतिद्वन्द्वी पर शस्त्र न उठाना, सताये निर्बलों की सहायता देना और प्रत्येक क्षण प्राणों को हथेली पर लिए घूमना, उनका बाना था। उन्हें लोग काशी में गुण्डा कहते थे।**

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यांश जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'गुण्डा' से उद्धृत है। इन पंक्तियों से पूर्व कहानीकार नायक नन्हकू सिंह के बाह्य-व्यक्तित्व पर प्रकाश डाल चुका है। प्रस्तुत पंक्तियाँ अठारहवीं शताब्दी युगीन काशी नगरी के सामाजिक, धार्मिक आदि परिस्थितियों के संदर्भ में प्रयुक्त की गई हैं। कहानीकार यह स्पष्ट कर चुका है कि जैसे काशी नगरी राजा अजातशत्रु के काल में ब्रह्मविद्या का केन्द्र थी, धार्मिक व दार्शनिक मतों के वाद-विवाद का केन्द्र थी, अब वही काशी नगरी अघोर रूप धारण करती जा रही थी।

व्याख्या- कहानीकार कहता है कि अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जब भोगी, विलासी, स्वार्थी, चाटुकार राजाओं, राजकर्मचारियों, विदेशी शासकों ने अपने शस्त्र-बल पर काशी के विद्वानों, दार्शनिकों, न्यायप्रिय व्यक्तियों को अपने अधीन कर लिया, उस समय अभिजात्य वर्ग, शासक वर्ग आदि से अलग-थलग पड़ चुके उपेक्षित व निराश जनसाधारण ने अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए एक नए सम्प्रदाय की स्थापना की। कहने का अभिप्राय यह है कि काशी नगर के बुद्धिजीवियों, उदारवादियों, न्यायप्रियों को अत्याचारी विदेशी शासकों व उनकी चापलूसी करने वाले राजाओं ने अपने अधीन कर लिया और काशी में अब न्याय आदि का अभाव हो गया था। अत: जनसाधारण ने एक नए सम्प्रदाय को जन्म दिया।

उपेक्षित व समाज के बड़े वर्ग से कटी हुई साधारण जनता ने जिस सम्प्रदाय की स्थापना की उसका धर्म वीरता था। इस सम्प्रदाय के लोगों की कुछ विशेषताएं थीं जैसे वे अपनी बात पर अटल रहते थे और दिया गया वचन पूरा करने के लिए अपने प्राण की परवाह नहीं करते थे। जिस प्रकार सिंह अपना शिकार स्वयं करता है उसी प्रकार इस सम्प्रदाय के लोग अपनी जीविका का उपार्जन करते थे अर्थात् वे दुराचारियों, शोषकों को लूटते थे। वे लोग उन कायरों पर कोई शस्त्र-प्रहार नहीं करते थे जो उनसे प्राणों की भीख माँगने लग जाते थे। इस प्रकार यदि उनका प्रतिद्वन्द्वी चोट खाकर गिर जाता था उस पर भी वे प्रहार नहीं करते थे। इस सम्प्रदाय के लोग शोषकों व धनाढ्य वर्ग द्वारा सताए गए लोगों की सहायता करते थे। इस प्रकार के व्यवहार से उनके अनेक लोग शत्रु

बन जाते थे परन्तु वे उनसे भयभीत हुए बिना, अपने जीवन को खतरे में डालकर सदैव निर्भय होकर घूमते थे। कहानीकार कहता है कि इस सम्प्रदाय के लोगों को काशी में गुण्डा कहा जाता था।

कहने का अभिप्राय यह है कि अत्याचारियों, शोषकों, दुराचारियों का विरोध करके, उन्हें लूटकर निर्धनों की सहायता करने वाले और अपने वचन को निभाने के लिए प्राण देने वाले लोगों को समाज का अभिजात्य वर्ग व उनके चापलूस लोग ही गुण्डा कहते थे।

विशेष- (1) कहानीकार ने अठारहवीं शताब्दी युगीन काशी नगरी के देशकाल व सामाजिक स्थिति का चित्रण किया है। (2) अन्तिम दो पंक्तियों में विरोधी-मूलक वैचित्र्य है। (3) सम्पूर्ण गद्यांश में तत्सम व तद्भव शब्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। (4) 'प्राणों को हथेली पर लिए घूमना' मुहावरा 'प्राण पर खेलना' मुहावरे का सुन्दर परिवर्तित रूप है तथा उसका सार्थक प्रयोग हुआ है। (5) अभिधा व लक्षणा शब्द शक्ति है। (6) प्रसाद व ओज गुण का समावेश है। (7) वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। (8) भाषा भावानुकूल व विषयानुकूल होने पर भी प्रवाहमयी है।

(39) **जीवन की किसी अलभ्य अभिलाषा से वंचित होकर जैसे प्राय: लोग विरक्त हो जाते हैं, ठीक उसी तरह किसी मानसिक चोट से घायल होकर एक प्रतिष्ठित जमींदार का पुत्र होने पर भी नन्हकू सिंह गुण्डा हो गया था। दोनों हाथों से उसने सम्पत्ति लुटाई।**

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यांश जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'गुण्डा' कहानी से अवतरित है। इन पंक्तियों से पूर्व कहानीकार यह स्पष्ट कर चुका है कि अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में शासकों, राजकर्मचारियों आदि द्वारा की जाने वाले लूट-खसोट, शोषण, अन्याय, अत्याचार के कारण वहाँ पर एक ऐसे वर्ग का जन्म हुआ जो सिंह-वृत्ति से जीविका ग्रहण करता था, निर्बलों की सहायता करता था, प्राणों की भिक्षा माँगने वाले व गिरे हुए प्रतिद्वन्द्वियों पर शस्त्र नहीं उठाता था परन्तु काशी में इस वर्ग के लोगों को गुण्डा कहा जाता था। इन पंक्तियों में कहानीकार ने कहानी के नायक नन्हकू सिंह के गुण्डा बनने के कारण पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या- कहानीकार कहता है कि इस संसार में जिन लोगों को अपने जीवन में किसी दुर्लभ वस्तु को प्राप्त करने की अभिलाषा नहीं होती है, ऐसे लोग प्राय: इस संसार से विरक्त होकर संन्यासी बन जाते हैं अथवा इस संसार से विरक्त होकर निरुद्देश्य घूमते-फिरते हैं, ठीक उसी प्रकार किसी मनोवेदना के कारण नन्हकू सिंह जो कि एक प्रतिष्ठित जमींदार का पुत्र था, इस संसार से विरक्त होकर गुण्डा बन गया था। कहने का अभिप्राय यह है कि नन्हकू सिंह पन्ना से प्रेम करता था और जब काशी के राजा बलवन्त सिंह ने पन्ना को बलात् अपनी रानी बना लिया तब प्रेम में असफल होकर नन्हकू सिंह को भी इस संसार से विरक्ति हो गई तथा वह नगर का गुण्डा बन गया। अत: संसार से विरक्त होने के कारण अपनी सारी सम्पत्ति को अनावश्यक खर्चों व कार्यों में लुटा दिया।

विशेष- (1) कहानीकार ने नन्हकू सिंह के गुण्डा बनने के कारण पर प्रकाश डाला है। (2) गद्यांश की प्रथम पंक्ति में मनोवैज्ञानिक तथ्य को सुन्दर उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है। (3) 'दोनों हाथों से सम्पत्ति लुटाना' मुहावरे का सार्थक प्रयोग हुआ है। (4) अभिधा व लक्षणा शब्द शक्ति है। (5) प्रसाद गुण का समावेश है। (6) तत्सम व तद्भव शब्दों का प्रयोग हुआ है। (7) प्रवाहमयी भाषा है।

(40) **यह झूठ है। बाबू साहब के ऐसा धर्मात्मा तो कोई है ही नहीं। कितनी विधवाएं उसकी दी हुई धोती से अपना तन ढँकती हैं। कितनी लड़कियों की ब्याज शादी होती है। कितने सताये हुए लोगों की उनके द्वारा रक्षा होती है।**

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यांश जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'गुण्डा' कहानी से अवतरित है। इन पंक्तियों से पूर्व काशी की प्रसिद्ध वेश्या दुलारी को राजमाता पन्ना अपने राजमंदिर में बुलवाती है। वहाँ पर राजमाता पन्ना के समक्ष दुलारी कुबरा मौलवी व नन्हकू सिंह के मध्य घटित हुई घटना का वर्णन करती है, तब राजमाता नन्हकू सिंह के बारे में पूछती है। यह जानने पर कि नन्हकू सिंह जमींदार निरंजन सिंह का वही बेटा है जिसने कई वर्ष पहले युवती पन्ना को हाथी से बचाया था। उस प्रसंग को याद कर राजमाता के मुख का रंग उड़ जाता है तब उनकी दासी गेंदा नन्हकू सिंह को डाकू कहकर उस पर अनेक आरोप लगाती है। अवतरित पंक्तियों में दुलारी गेंदा की बात का विरोध करती हुई राजमाता के समक्ष सच्चाई प्रकट करती है।

व्याख्या- राजमाता पन्ना की मुँह लगी दासी गेंदा द्वारा नन्हकू सिंह को डाकू कहे जाने पर वेश्या दुलारी उसका विरोध करते हुए कहती है कि गेंदा जो कुछ कह रही है वह झूठ है। अर्थात् न तो नन्हकू सिंह कोई डाकू है और न ही वह किसी की हत्या करता है। दुलारी कहती है बाबू नन्हकू सिंह जैसा धर्मात्मा व्यक्ति तो इस दुनिया में दूसरा कोई हो ही नहीं सकता। वह नगर की उन विधवाओं की सहायता करता है तथा उन्हें वस्त्रादि भेंट करता है जिन विधवाओं को उसके परिवार वाले व सगे-सम्बन्धी ही घर से बेघर कर देते हैं तथा उसे असहाय छोड़ देते हैं। नन्हकू सिंह निर्धन परिवार की लड़कियों की शादी का खर्चा स्वयं उठाता है। अर्थात् वह निर्धन लड़कियों का अभिभावक बनकर उनका घर बसाता है। इतना ही नहीं, वह समाज के शोषितों के लिए नन्हकू सिंह गुण्डा नहीं है बल्कि वह तो धर्मात्मा है।

विशेष- (1) दुलारी के माध्यम से कहानीकार ने नन्हकू सिंह की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डाला है।

(2) वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

(3) अभिधा शब्द शक्ति का प्रयोग हुआ है।

(4) ओज गुण का समावेश है।

(5) तत्सम (रक्षा, धर्मात्मा), देशज (धोती, ब्याह) के साथ-साथ विदेशज (साहब) शब्द का प्रयोग हुआ है।

(6) भाषा पात्रानुकूल, विषयानुकूल एवं सरल, सुबोध है।

अपना-अपना भाग्य

(41) **नैनीताल की संध्या धीरे-धीरे उतर रही थी। रुई के रेशे से भाप के बादल हमारे सिरों को छू-छूकर बेटोक घूम रहे थे। हल्के प्रकाश और अंधियारी से रंग कर कभी वे पीले दीखते, कभी सफेद और फिर जरा अरुण पड़ जाते, जैसे हमारे साथ खेलना चाह रहे हों।**

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यांश जैनेन्द्र कुमार की कहानी 'अपना-अपना भाग्य' से उद्धृत है। कहानी के प्रारम्भ में लेखक नैनीताल की संध्या का गतिशील चित्रण करते हुए लिखता है-

व्याख्या- नैनीताल में शाम धीरे-धीरे घिर रही थी। कोहरा रुई के रेशे की तरह हल्के-फुलके भार के बादल के समान मेरे तथा मेरे मित्र के सिरों को छूते हुए अबोध गति से आ-जा रहा था। कम रोशनी में तथा अंधेरे के रंग में रंग कर वे भाप के बादल अपना रंग बदल रहे थे। कभी तो वे पीले रंग के दिखाई देते और कभी सफेद रंग के और थोड़े से लाल रंग के दिखाई देते थे।

उनके हमारे सिर के ऊपर आने-जाने से मुझे ऐसा लगता था मानो वे हमारे साथ खेलने की इच्छा मन में रखते हों।

(42) **वह हमें न देख पाया, वह जैसे कुछ भी न देख रहा था। न नीचे की धरती, न ऊपर चारों ओर फैला कुहरा, न सामने का तालाब और न एकाकी दुनिया। तब बस अपने निकट वर्तमान को देख रहा था।**

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियाँ जैनेन्द्र कुमार की कहानी 'अपना-अपना भाग्य' से उद्धृत हैं। इसमें लेखक गरीब पहाड़ी लड़के की मनोदशा का वर्णन कर रहा है। वह लिखता है-

व्याख्या- वह दस-बारह वर्ष का पहाड़ी लड़का अपने-आप में ही खोया हुआ था। वह न तो मुझे और न मेरे मित्र को देख पा रहा था। उसे देखकर लगता था जैसे वह कुछ भी नहीं देख रहा था। उसके सामने जैसे कुछ नहीं था। वह न तो नीचे की जमीन देख रहा था तथा न ही वह आकाश में चारों ओर फैली धुंध को देख रहा था। उसे किसी से कोई सरोकार न था। वह न सामने का तालाब देख रहा था और न ही अकेले संसार को। अर्थात् वह स्वयं को संसार में अकेला अनुभव कर रहा था। उसका मन अपने वर्तमान जीवन को देख रहा था। उसे अपने वर्तमान के अतिरिक्त कुछ नहीं दिखाई दे रहा था। बस वह अकेला चला आ रहा था।

(43) **मेरे कई भाई-बहिन हैं, सो भाग आया। वहाँ काम नहीं, रोटी नहीं। बाप भूखा रहता है और माँ भूखी रहती थी, रोती थी, सो भाग आया। एक साथी और था। उसी गाँव का मुझसे बड़ा। दोनों साथ यहाँ आए। अब वह नहीं है।**

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियाँ जैनेन्द्र कुमार की कहानी 'अपना-अपना भाग्य' से उद्धृत हैं। इन पंक्तियों में पहाड़ी लड़का अपने परिवार के सम्बन्ध में, अपनी गरीबी के सम्बन्ध में बताता हुआ अपने भाग आने का कारण बता रहा है।

व्याख्या- लेखक के मित्र ने उस पहाड़ी लड़के से उसके माता-पिता के सम्बन्ध में पूछा तथा उसके भाग आने के कारण को जानना चाहा। पहाड़ी लड़का बताता है कि मेरे माता-पिता हैं तथा मेरे कई भाई-बहिन हैं। वे गाँव में रहते हैं। मेरे पिता के पास कोई काम नहीं है। वे बेरोजगार हैं। इसलिए वे परिवार का पालन-पोषण नहीं कर सकते। वे हमारा पेट नहीं भर सकते। मेरे माता-पिता भूखे रहते हैं। दो समय का भोजन भी न जुटा पाने के कारण मेरी माँ रोती रहती है। उस गाँव में न कोई काम है और न खाने को रोटी है अत: मैं अपनी गरीबी से तंग होकर यहाँ भाग आया। मेरे साथ उसी गाँव का मुझसे बड़ा एक लड़का था। हम दोनों एक साथ ही गाँव से भागकर आये थे लेकिन अब वह लड़का इस दुनिया में नहीं है। वह मर गया है।

(44) **बस जरा सी उम्र में ही उसकी मौत से पहचान हो गई।**

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियाँ जैनेन्द्र कुमार की कहानी 'अपना-अपना भाग्य' से उद्धृत हैं। लेखक उस पहाड़ी लड़के से उसके साथी की मृत्यु को सुनकर आश्चर्यचकित हो उठता है और मन में सोचता है-

व्याख्या- पहाड़ी लड़का दस-बारह वर्ष का था। उसका साथी उससे कुछ बड़ा रहा होगा। लेखक सोचता है इतनी छोटी-सी आयु में ही उसकी मृत्यु हो गई। उसने इस दुनिया में कुछ नहीं देखा, कुछ नहीं भोगा और छोटी-सी आयु में ही उसकी मौत हो गई। यह सोचकर लेखक को आश्चर्य हुआ कि वह इतनी छोटी-सी आयु में चल बसा।

(45) **"ये पहाड़ी वाले शैतान होते हैं। बच्चे-बच्चे में गुण छिपे रहते हैं- आप भी क्या अजीब हैं उठा लाए कहीं से-लो जी यह नौकर रख लो।"**

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियाँ जैनेन्द्र कुमार की कहानी 'अपना-अपना भाग्य' से उद्धृत हैं। लेखक और उसका मित्र उस पहाड़ी लड़के को लेकर अपने मित्र वकील साहब के यहाँ नौकर रखवाने ले जाते हैं। वकील साहब लेखक और उसके मित्र पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं-

व्याख्या- साहब ये पहाड़ी लड़के बड़े उपद्रव खड़ा करने वाले होते हैं। ऊपर से तो ये बड़े सीधे-साधे दिखाई पड़ते हैं किन्तु इनके चरित्र में अनेक अवगुण छिपे रहते हैं। दूसरे शब्दों में ये पहाड़ी लड़के बड़े चोर-उचक्के और बेईमान होते हैं। मौका लगते ही हाथ साफ कर जाते हैं। वकील साहब उनकी नेकनीयत पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि आप भी बड़े अद्‌भुत हैं। पता नहीं कहाँ से इस लड़के को पकड़ लाए हैं न जानते हैं, न पहचानते हैं और कहते हैं, लो जी इसे नौकर रख लो।

(46) **बालक कुछ ठहरा। मैं असमंजस में रहा। तब वह प्रेत गति से एक ओर बढ़ा और कुहरे में मिल गया। हम भी होटल की ओर बढ़े। हवा तीखी थी- हमारे कोटों को पार कर बदन में तीर-सी लगती थी।**

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियाँ जैनेन्द्र कुमार की कहानी 'अपना-अपना भाग्य' से उद्धृत हैं। वकील साहब ने उस पहाड़ी लड़के को नौकर रखने से मना कर दिया। उसके बाद की स्थिति का वर्णन करते हुए लेखक लिखता है-

व्याख्या- वकील साहब ने उस पहाड़ी लड़के को अपने यहाँ नौकर रखने से साफ मना कर दिया। इसके बाद वह लड़का कुछ देर तक तो हमारे पास खड़ा रहा। लेखक कहता है कि मैं भी इस स्थिति को देखकर कुछ देर तक दुविधा में पड़ा रहा कि अब इस लड़के को क्या कहें। जब तक हम दुविधा से उभरते, तब तक वह लड़का अत्यन्त तेज चाल से एक ओर को चल दिया और धुंध में विलीन हो गया अर्थात् वह शीघ्र ही दिखाई देना बंद हो गया। हम भी अपने होटल की ओर चल दिए। हवा अत्यन्त तेज और ठंडी थी। वह इतनी तीखी थी कि हमारे गर्म कोटों को पार करके हमारे शरीर पर तीर के समान लग रही थी।

(47) **पर बताने वालों ने बताया कि गरीब के मुंह पर, छाती, मुट्ठियों और पैरों पर, बर्फ की हल्की-सी चादर चिपक गई थी, मानो दुनिया की बेहयाई ढकने के लिए प्रकृति ने शव के लिए सफेद और ठंडे कफन का प्रबंध कर दिया था।**

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियाँ जैनेन्द्र कुमार की कहानी 'अपना-अपना भाग्य' से उद्धृत हैं। लेखक और उसका मित्र जब नैनीताल से वापस लौटने के लिए बस में सवार हो गए तब उन्हें एक पहाड़ी लड़के के मरने का समाचार मिला। लोगों ने उन्हें बताया कि-

व्याख्या- लोगों ने जिन्होंने उस पहाड़ी लड़के की मृत देह देखी थी, बताया कि उस गरीब पहाड़ी लड़के के मृत शरीर के विभिन्न अंगों पर प्रकृति ने बर्फ की हल्की-सी पर्त बिछा दी। वह सफेद बर्फ की पर्त ऐसी प्रतीत होती थी मानो प्रकृति ने साधन-सम्पन्न संसार की बेशर्मी को छुपाने के लिए उसके मृत शरीर के लिए सफेद और ठंडे कफन का प्रबंध कर दिया हो।

राजा निरबंसिया

(48) **औलाद ही तो वह स्नेह की धुरी है, जो आदमी औरत के पहियों को साधकर तन के दलदल से पार ले जाती है....नहीं तो हर औरत वेश्या है और हर आदमी वासना का कीड़ा।**

संदर्भ- प्रस्तुत गद्य पंक्तियां कमलेश्वर की प्रसिद्ध कहानी "राजा निरबंसिया" से अवतरित हैं। यह कथा मध्यमवर्गीय जीवन के पक्ष को प्रकट करने वाली है। चंदा को जब बचनसिंह से अवैध गर्भ ठहर गया तो वह अपने मायके चली गई। एक दिन सुनने में आया कि वह जगपती को छोड़कर किसी और के संग बैठने वाली है। जगपती को उसने पुत्र प्राप्ति का समाचार भी नहीं दिया। इसी तारतम्य में आते-जाते विचारों को यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

व्याख्या- जगपती यह समाचार पाकर कि चंदा ने एक पुत्र को जन्म दिया है तथा उसे खबर तक नहीं दी है तो वह सोचने लगता है कि संतान ही तो पति-पत्नी के बीच स्नेह की धुरी के रूप में कार्य करती है, जिसके सहारे स्त्री-पुरुष दोनों जीवन नैया पार कर लेते हैं, संतान के होने पर जीवन का उद्देश्य परिवर्तित हो जाता है, पति-पत्नी के बीच शारीरिक संबंधों की बात गौण हो जाती है अगर संतान न हो तो हर औरत एक वेश्या के समान व्यवहार करेगी अर्थात् उस स्थिति में सिर्फ शारीरिक संबंध ही जीवन का उद्देश्य रह जायेंगे तथा आदमी केवल वासना का कीड़ा बनकर रह जायेगा।

(49) **"रानी अपने कुल देवता के मंदिर में पहुँची", माँ सुनाया करती थीं, "अपने सतीत्व को सिद्ध करने के लिए उन्होंने घोर तपस्या की। राजा देखते रहे। कुल देवता प्रसन्न हुए और उन्होंने अपनी दैवी शक्ति से दोनों बालकों को तत्काल जन्मे शिशुओं में बदल दिया। रानी की छातियों में दूध भर आया, उनमें से धार फूट पड़ी, जो शिशुओं के मुंह में गिरने लगी। राजा को रानी के सतीत्व का सबूत मिल गया। उन्होंने रानी के चरण पकड़ लिए और कहा कि तुम देवी हो ! ये मेरे पुत्र हैं। और उस दिन से राजा ने फिर से राजकाज संभाल लिया...."**

संदर्भ- प्रस्तुत अवतरण हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक कमलेश्वर द्वारा लिखित 'राजा निरबंसिया' से अवतरित है।

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियों में स्पष्ट किया गया है कि जब राजा परदेश चले गये थे तो उनकी रानी ने दो बच्चों को जन्म दिया, लेकिन राजा को शक हुआ कि यह बच्चे उसके अपने नहीं हैं। इसी बात को सच साबित करने के लिए रानी कुल-देवता के मंदिर जा पहुँची।

व्याख्या- माँ ने कहानी को आगे बढ़ाते हुए बताया कि जब राजा धन कमाने हेतु परदेश गया था तो उसके जाने के बाद उनकी रानी ने दो शिशुओं को जन्म दिया किन्तु राजा ने रानी पर शक किया और उन बालकों को अपना नहीं समझा। रानी यह सब देखकर विचलित हो गयी और अपना सतीत्व सिद्ध करने के लिए कुल देवता के मंदिर में पहुँची तथा उसने कुलदेवता की कठोर तपस्या की। राजा यह सब देखते रहे। रानी की कठोर तपस्या तथा सच्चाई को देखकर कुलदेवता प्रसन्न हुए और उन्होंने अपनी दैवीय शक्ति से दोनों बालकों को हाल के पैदा हुए बच्चे के बराबर कर दिया। रानी की छातियों में दूध भर गया, उनमें दूध भरकर बहने लगा तथा स्वयं बच्चों के मुंह में गिरने लगा। यह सब देखकर राजा आश्चर्यचकित हो गया और उसे रानी के सतीत्व का सच्चा सबूत भी प्राप्त हो गया। उन्होंने तुरंत गिरकर रानी के पैर पकड़ लिए और क्षमा याचना की। फिर अपनी गलती का एहसास करते हुए राजा कहने लगे-रानी असल में ये मेरे ही पुत्र हैं, मैंने व्यर्थ ही तुम पर शक किया। इस तरह राजा ने फिर से अपनी राज-काज की व्यवस्था संभाल ली।

(50) **"कानून को उसने लिखा था-किसी ने मुझे मारा नहीं है..... किसी आदमी ने नहीं। मैं जानता हूं कि मेरे जहर की पहचान करने के लिए मेरा सीना चीरा जाएगा। उसमें जहर है। मैंने अफीम नहीं, रुपये खाये हैं, उन रुपयों में कर्ज का जहर था, उसी ने मुझे मारा है। मेरी लाश तब तक न जलाई जाये, जब तक चंदा बच्चे को लेकर न आ जाये। आग बच्चे से दिलवाई जाये। बस।"**

संदर्भ- प्रस्तुत अवतरण हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक कमलेश्वर द्वारा लिखित 'राजा निरबंसिया' से अवतरित है।

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियों में स्पष्ट किया है कि मरने से पहले जगपती ने दो परचों पर अलग-अलग लिखकर रख दिया कि मैं अपनी इच्छा से अपने प्राण गंवा रहा हूं। मेरे पीछे किसी को भी परेशान न किया जाये।

व्याख्या- कानून के नाम उसने जो पत्र लिखा था वह इस तरह से है कि-मुझे किसी ने नहीं मारा है, मैं अपनी इच्छा से अपने प्राण त्याग रहा हूं। इसके पीछे किसी भी आदमी का हाथ नहीं है जिसे कि परेशान किया जाये। मैं इस बात को जानता हूं कि मेरे मरने के बाद मेरे शरीर की चीरा-फाड़ी की जायेगी, जिसमें जहर निकलेगा। मैंने अफीम नहीं, रुपये खाये हैं क्योंकि उन रुपयों में कर्ज का जहर था, उसी कर्ज रूपी रुपये (जहर) ने मुझे मरने को विवश किया है। उसने पत्र में यह भी लिखा कि मेरी लाश को तब तक अग्नि न दी जाये, जब तक चंदा बच्चे को लेकर न आ जाये। मेरी लाश को अग्नि सिर्फ मेरे बेटे से ही दिलवाई जाये। बस।

सिक्का बदल गया

(51) **"कहीं-कहीं लिपे-पुते आँगनों पर से धुआँ उठ रहा था। टन-टन बैलों की घण्टियाँ बज उठती हैं। फिर भी ..... कुछ बँधा-बँधा सा लग रहा है। शाहनी ने नजर उठाई। यह मीलों फैले खेत अपने ही हैं। भरी-भराई नई फसल को देखकर शाहनी किसी अपनत्व के मोह में भीग गई। यह सब शाहनी की बरकतें हैं। दूर-दूर तक गाँवों तक फैली हुई जमीन, जमीनों में कुएं सब अपने हैं। साल में तीन फसल जमीन तो सोना उगलती है।"**

सन्दर्भ- प्रस्तुत गद्यावतरण कृष्णा सोबती की कहानी 'सिक्का बदल गया' से अवतरित है।

प्रसंग- शाहनी चिनाव नदी में अपने नियम के अनुसार नहाने के लिए गई थी। वहाँ रेत पर अनगिनत पाँवों के निशान देखकर वह स्थिति की भयावहता को समझ गई और शाहनी श्रीराम-श्रीराम कहती हुई अपने घर की ओर चल पड़ी।

व्याख्या- शाहनी बाजरे के खेत में होकर अपने घर की ओर लौट रही है। दूर आसमान में लालिमा फैलने लगी है। गाँव के जो सम्पन्न घर हैं वे लिपे-पुते, साफ-सुथरे हैं। उन घरों के आँगनों में धुआँ उठ रहा है अर्थात् उस घर की स्त्रियाँ उठ गई हैं और उनके दैनिक कार्य शुरू हो गये हैं। बैलों की सानी कर दी गई है इसलिए वे गर्दन हिला-हिलाकर आनन्दमग्न होकर खा रहे हैं या किसान खेत जोतने के लिए बैलों को लेकर निकल पड़े हैं जिनके कारण उनके गले में पड़ी घण्टियाँ बज उठी हैं। गाँव के लोगों के जाग जाने पर भी शाहनी को लग रहा है जैसे सब कुछ बँधा-बँधा सा हो। ऐसा आभास होने पर उसने अपनी आँखें ऊँची कर परिस्थिति को समझने की चेष्टा की, तो उसकी नजर मीलों तक फैले अपने खेतों पर पड़ी। खेतों में नई फसल लहरा रही थी। यह फसल शाहनी की है। यह बात याद आते ही उसमें अपनत्व की भावना भर गई। इन्हीं से तो शाहनी की पूँजी या धन और बढ़ जायेगा। दूर-दूर तक गाँवों तक फैली हुई जमीनें हैं। इन जमीनों की सिंचाई के लिए कुएं हैं। यह बस शाहनी के वैभव का ही हिस्सा है। इन जमीनों में साल में तीन बार भरपूर फसल होती है। फसलों के रूप में यह जमीन सोना उगल रही है। यही कारण है कि शाहनी इतनी वैभव सम्पन्न है।

साहित्यिक वैशिष्ट्य- प्रस्तुत अवतरण में शाहरी का अपनी जमीनों के प्रति अपनत्व का भाव प्रकट होता है। जमीन कहीं सूख न जाए। इस बात की ओर विशेष ध्यान देकर वहाँ जगह-जगह

कुएँ बनवाये। वहाँ जमीन भी उसे भरपूर फसल देकर कृतार्थ कर रही है। इसलिए भूमि को शस्य-श्यामला कहा जाता है।

(52) **"आज इस प्रभात की मीठी नीरवता में जाने क्यों कुछ भयावना-सा लग रहा है। वह पिछले पचास वर्षों से यहाँ नहाती आ रही है। कितना लम्बा अरसा है। शाहनी सोचती है, एक दिन इसी दरिया के किनारे वह दुल्हन बनकर उतरी थी। और आज .....। आज शाहजी नहीं, उसका वह पढ़ा-लिखा लड़का नहीं, आज वह अकेली है, शाहजी की लम्बी-चौड़ी हवेली में अकेली है।"**

सन्दर्भ- प्रस्तुत गद्यावतरण कृष्णा सोबती की कहानी 'सिक्का बदल गया' से अवतरित है।

प्रसंग- प्रस्तुत अवतरण में लेखिका ने स्पष्ट किया है कि पिछले पचास वर्षों से शाहनी चिनाव नदी में सुबह-सुबह नहाती आ रही है। उसे किसी बात का डर नहीं था, किन्तु अब भारत-पाक का विभाजन हो जाने के पश्चात् वह नदी के किनारे की रेत पर अनगिनत पाँवों के निशानों को देखकर स्वयं सहम जाती है।

व्याख्या- वृद्धा शाहनी आज भी चिनाव नदी में नहाने के लिए आयी थी। वह यहाँ के वातावरण की अभ्यस्त थी पर आज उसको कुछ विचित्र-सा अनुभव हो रहा था। प्रातःकाल की मीठी-मीठी खामोशी में उसे कुछ डर-सा व्याप्त लग रहा था। इस वातावरण की चुप्पी में उत्पन्न भय को वह महसूस कर रही थी। वह पिछले पचास वर्षों से यहाँ पर नहाने आती रही है पर आज कुछ अनोखा-सा उसको लग रहा है। एक लम्बा समय गुजर गया। शाहनी अपने ही विचारों में खो जाती है। वह उस समय की याद करने लगती है, जब उसका विवाह हुआ था। वह इसी नदी के किनारे दुल्हन के रूप में सजी-सँवरी उतरी थी। आज वह वातावरण पहले जैसा नहीं है। वह बदल गया है। आज उसके अपने पति शाहजी नहीं रहे। उसका अपना पढ़ा-लिखा लड़का भी नहीं रहा। आज वह घर-परिवार में अकेली है। शाहजी की लम्बी-चौड़ी हवेली है। इस हवेली में वह अकेली ही रहती है।

शाहनी को दुःख इस बात का है जिस हवेली में वह पिछले पचास वर्षों से रहती आई है, उस हवेली में वह आज अकेली रह गई है। वह भी राज के पलट जाने पर छिन जायेगी। अपने पुरखों की हवेली, गाँव तथा गाँव के उन लोगों को भी छोड़ना पड़ेगा जिनसे पिछले पचास वर्षों से उनका सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। राज का यह बदलाव उसे न जाने कहाँ ले जायेगा।

साहित्यिक वैशिष्ट्य- यहाँ पर राज बदलने पर क्या स्थिति होती है इस अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति को सरल सहज भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है।

(53) **"मालूम होता है कि कुल्लूवाल के लोग आये हैं यहाँ? शाहनी ने गम्भीर स्वर में कहा। शेर ने जरा रुक कर घबराकर कहा, "नहीं शाहनी!" शेरे के उत्तर की अनसुनी कर शाहनी चिन्तित स्वर से बोली, जो कुछ भी हो रहा है अच्छा नहीं। शेरे, आज शाहजी होते तो शायद कुछ बीच-बचाव करते। पर.....। शाहनी कहते-कहते रुक गई। आज क्या हो रहा है। शाहनी को लगा जैसे जी भर-भर आ रहा है। शाहजी से बिछुड़े कई साल बीत गये, पर आज कुछ पिघल रहा है। शाहजी हेतु पिछली स्मृतियाँ!**

सन्दर्भ- प्रस्तुत गद्यावतरण कृष्णा सोबती की कहानी 'सिक्का बदल गया' से अवतरित है।

प्रसंग- प्रस्तुत कहान में लेखिका ने भारत-पाक विभाजन की त्रासदी का वर्णन किया है। शाहनी नहाने गई तो उसने रेत पर अनगिनत पाँवों के निशान देखे तो वह सहम गई। उसे वैसे ही वातावरण में एक अजीब-सी खामोशी लग रही है। वास्तविकता शाहनी से छिपी न रह सकी।

व्याख्या- शाहनी ने गम्भीर स्वर में शेरा से कहा कि उसे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि यहाँ पर कुल्लूवाल के लोग आये हैं। शाहनी ने यह बात इतनी गम्भीरता से कही थी कि शेरा उसके स्वर को सुनकर ही घबरा गया। उसकी अपनी मनःस्थिति डांवाडोल हो गई, वह कुछ कहते-कहते रुक गया है और घबराहट भरे स्वर में बोला-नहीं शाहनी ! शेरे की बात को सुनकर शाहनी समझ गई कि शेरे को सब कुछ जानकारी है पर वह बता नहीं रहा है। इसलिए उसने शेरे की बात अनसुनी कर दी। वह कुछ चिन्तित स्वर में कहने लगी शेरे यहाँ पर जो कुछ भी हो रहा है, अच्छा नहीं हो रहा है। यह बात शाहनी ने देश-विभाजन के कारण उत्पन्न परिस्थितियों से दुःखी होकर कही। उसे इस बात का भय हुआ कि कुल्लूवाल से आये लोग उसके गाँव में भी आग लगायेंगे, लूटपाट करेंगे और हिन्दुओं की निर्मम हत्या कर उनकी बहु-बेटियों को बेइज्जत करेंगे। उसे शाहजी की याद हो आई क्योंकि वह स्वयं इन घटनाओं को रोकने में असमर्थ थी। इसलिए उसने कहा कि यदि शाहजी होते तो शायद कुछ बीच-बचाव करते। यह बात कहते-कहते वह और अधिक दुःखी हो गई। उसने फिर कहा कि गाँव में जो कुछ भी हो रहा है उसके विषय में किसी ने उससे सलाह नहीं ली। यह बात उसे अखर रही थी। यह सोचकर शाहनी को लगा जैसे उसका जी भर आया है और वह रो पड़ेगी। शाहजी का स्वर्गवास हुए कई वर्ष बीत चुके थे किन्तु उसे आज उनकी याद बहुत आ रही थी। उससे अपना अकेलापन या वैधव्य झेला नहीं जा रहा था उसे ऐसा लगा कि जैसे शाहजी के साथ जुड़ी हुई तमाम बातें उसकी स्मृति में उभर आई हैं और वे उसको बेचैन किए डाल रही हैं।

साहित्यिक वैशिष्ट्य- (1) प्रस्तुत अवतरण में लेखिका ने शाहनी की स्मृतियों का बेबाक-चित्रण किया है। (2) भाषा, सरल मुहावरेदार तथा प्रभावशाली है।

(54) **"एक बार घूम-फिरकर पूरा घर क्यों न देख आऊँ मैं? जी छोटा हो रहा है, पर जिनके सामने हमेशा बड़ी बनी रही है, उनके सामने वह छोटी न होगी। इतना ही ठीक है बस हो चुका। सिर झुकाया। ड्योढ़ी के आगे कुलवधू की आँखों से निकलकर कुछ बूँदें चू पड़ीं।'**

सन्दर्भ- प्रस्तुत अवतरण कृष्णा सोबती की कहानी 'सिक्का बदल गया' से अवतरित है।

प्रसंग- प्रस्तुत कहानी में भारत-पाक विभाजन के बाद लोगों की मानसिकता पर प्रकाश डाला गया है। लोगों के घर लूटे, मरे और उनको जबर्दस्ती से अपने पुरखों का घर छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ा। इसी दृश्य का यहाँ चित्रण किया गया है-

व्याख्या- देश का विभाजन हो जाने के बाद शाहनी को जब अपने पूर्वजों का घर छोड़ना पड़ रहा था, तो उस समय उसके मन में एक द्वन्द्व छिड़ा हुआ था। अपने पूर्वजों के प्रति उसका मोह उसे इस बात के लिए व्याकुल बनाये हुए था कि उस घर को सदा-सदा के लिए अलविदा करने से पहले घर का एक-एक कोना जी भरकर देख ले। लेकिन दूसरी ओर वह यह भी सोच रही थी कि ऐसा करना वहाँ एकत्रित उस जनसमूह के सामने अपनी कमजोरी प्रकट करना है, उनकी नजरों में गिरना है-यही वह जनसमूह है जो उसके कुल-गौरव से परिचित और प्रभावित है। अंततः उसने अपने मन की कमजोरी को दबा लिया और स्वाभिमानपूर्वक उसने उस घर की देहरी को लाँघ लिया, किन्तु ऐसा करते समय उसकी मनोव्यथा एक बार फिर उभर पड़ी और वह आँसुओं के रूप में प्रकट हुई। इसी से देहरी को लाँघते समय भी दो बूँद आँसू वहाँ पर गिर पड़े।

साहित्यिक वैशिष्ट्य- (1) अपना पुश्तैनी घर छोड़ते समय शाहनी को काफ़ी ग्लानि होती है और वह अपनी मनोव्यथा को नहीं रोक पाती। यही कारण है कि देहरी लाँघते समय उसके आँखों से आँसू टपक पड़ते हैं। (2) शुद्ध साहित्यिक-सरल भाषा का प्रयोग दृष्टव्य है।

पथ के साथी

(55) **कार्य और कारण में चाहे ..... धबीला कर देती है।**

सन्दर्भ- यह गद्य-खण्ड श्रीमती महादेवी वर्मा द्वारा रचित 'प्रणाम : रवीन्द्रनाथ ठाकुर' नामक जीवनीपरक संस्मरणात्मक रेखाचित्र से उद्धृत है तथा उनकी सुप्रसिद्ध रेखाचित्र-पुस्तक 'पथ के साथी' का (जिसका सर्वप्रथम प्रकाशन सन् 1956 में हुआ था) एक भाग है।

प्रसंग- साहित्य की सामान्य अनुभूति और साहित्यकार के व्यक्तित्व में प्राप्त समानता-असमानता पर अपने विचार व्यक्त करते हुए महादेवी जी ने कहा है।

व्याख्या- प्रत्येक कार्य का कोई न कोई कारण होता है और निश्चय ही किसी न किसी कारणवश ही प्रत्येक कार्य सम्पन्न हुआ करता है। इस तरह प्रत्येक कार्य और कारण में परस्पर अपेक्षा भरा अन्योन्याश्रित वाला सम्बन्ध होता है। दूसरी ओर, यह भी सच है कि इन दोनों में प्राप्त एकरूपता या समानता नियम का अपवाद ही कही मानी जायेगी। जिस तरह आकाश रथ मेघों में ही रह कर चमकने वाली आकाश-विद्युत की तीव्र प्रकाशमयी और उज्ज्वल रेखा में मेघों का पूरा विस्तार नहीं दीख पड़ता अथवा पुष्प-गन्ध को व्यापकता में पुष्प के दर्शन करना संभव नहीं होता, यद्यपि गन्ध निःसंदेह पुष्प की ही होती है, ठीक इसी तरह किसी साहित्यकार द्वारा रची गयी उसकी साहित्यिक रचनाओं में व्यक्त की गयी (साहित्यकार की वैयक्तिक) अनुभूतियों और उसके व्यक्तित्व में समानता को ढूँढ़ पाना, आसान नहीं, अत्यन्त कठिन होता है। कभी-कभी तो इनमें इतनी अधिक भिन्नता मिलती है कि साहित्यिक रचना को पढ़-सुन कर हम रसिकों-पाठकों और श्रोताओं के मन में जो श्रद्धा-आदर का भाव उत्पन्न हो जाता है, साहित्यकार के व्यक्तित्व की जानकारी होते-होते एकदम उपेक्षा भाव में बदल जाता है अथवा इसके विपरीत साहित्यकार से परिचित होकर जो मोह-आदर हममें उसके प्रति आ जाता है, वह जैसे उसकी रचनाओं को कलंकमय और गंदा ही ठहराती है। आशय यही है कि किसी भी साहित्यकार की रचनाओं और उसके स्वयं के व्यक्तित्व में एकदम भिन्नता रहती है। अतएव दोनों में समानता का प्रायः अभाव ही रहता है।

विशेष- 1. यहाँ पर महादेवी जी की स्वयं की धारणाएं व्यक्त हुई हैं। 2. विचारपरकता, गंभीरता और गहन विश्लेषण-क्षमता आदि विशेष दृष्टव्य है। 3. सूक्तियों का समावेश और संस्कृतनिष्ठ शब्दावली प्रमुख भाषागत वैशिष्ट्य है। 4. विचारात्मक, काव्यात्मक, सूक्ति-व्याख्या तथा आलंकारिक शैलियों का सुन्दर समन्वय है। 5. संस्मरण में वैयक्तिकता का समावेश है।

(56) **जब हमारी दृष्टि में ..... रहती है।**

सन्दर्भ- यह गद्यांश श्रीमती महादेवी वर्मा द्वारा रचित 'पथ के साथी' नामक जीवनपरक संस्मरणात्मक रेखाचित्र वाली पुस्तक के 'मैथिलीशरण गुप्त' नामक रेखाचित्र से उद्धृत है।

प्रसंग- श्री मैथिलीशरण गुप्त जी के मुक्त स्वभाव की सूचक उनकी उन्मुक्त हँसी और दृष्टि तथा उसके साहित्यिक-सामाजिक वैशिष्ट्य तथा प्रभावादि का प्रतिपादन करते हुए लेखिका (श्रीमती महादेवी वर्मा जी) ने कहा है-

व्याख्या- (यह एक सनातन सत्य है कि) जब हमारी दृष्टि में विस्तार अधिक रहता है तब हम उसको किसी एक (वस्तु व्यक्ति आदि) पर केन्द्रित या सीमित नहीं कर सकते। दूसरी ओर, हमारी तीव्र दृष्टि एक ही क्षेत्र में एक साथ अनेक को स्पर्श करती है। परिणाम यह होता है कि इससे जिस सीमा तक हमारा ज्ञान बढ़ता है, उतना ही अधिक विषयों का महत्त्व कम रह जाता है। इसके विपरीत, जब हमारी हँसी में मुक्त व्यापकता (फैलाव) नहीं होती, तब उसका वायु के झोंके जैसा मस्त कर देने वाला प्रभाव हम सब तक नहीं पहुँचा सकते हैं। ऐसी स्थिति में तो हमारे सारे हँसी-मजाक केवल

कुछ लोगों तक ही केन्द्रित और फलस्वरूप सीमित बन कर रह जाते हैं। नि:संदेह, कलाकार की दृष्टि हर किसी पर केन्द्रित होती है, और सबको ही आत्म परिचय देती है। उसकी हँसी भी सबको प्रभावित करके ही अपनत्व भाव को स्वीकारती है। निश्चय ही इसके अभाव में जीवन का वह आदान-प्रदान पूर्णत: संभव नहीं हो पाता है जिसकी जरूरत साहित्य और कला के क्षेत्र में पगे-पगे पड़ती है।

विशेष- 1. यहाँ पर लेखिका की अपनी विचारधारा व्यक्त हुई है। 2. विचार प्रधान वर्णन शैली है। 3. शब्दावली तत्समपरक और काव्यात्मक-आलंकारिक है।

(57) **हमारे शैशवकालीन अतीत ..... कठिन हो जाता है।**

सन्दर्भ- प्रस्तुत गद्य पंक्तियाँ हमारी पाठ्यपुस्तक 'पथ के साथी' में संग्रहित 'सुभद्राकुमारी चौहान' नामक रेखाचित्र से उद्धृत हैं तथा इनकी लेखिका सुप्रसिद्ध श्रीमती महादेवी वर्मा है।

प्रसंग- शैशवावस्था की कुछ स्मृतियाँ व्यक्ति को आजन्म याद रहती हैं जबकि कुछ को वह पूर्णत: भूल जाता है। इसी मनोवैज्ञानिक सत्य को प्रतिपादित करते हुए महादेवी जी ने कहा है-

व्याख्या- समय एक नदी है तो इसके दो तट-अतीत और वर्तमान है। जिस समय हमारे शैशवकालीन भूतकाल और साकार हुए वर्तमान रूपी तटों के मध्य दूरी बढ़ जाती है, समय रूपी नदी का पाट अधिक जलप्रवाह से चौड़ा हो जाता है अर्थात् अतीत और वर्तमान में समयावधि अधिक हो जाती है, तो हम मनुष्यों की स्मृति में भी, अनजाने में ही, एक परिवर्तन स्वत: प्रकट हो जाता है। यह परिवर्तन यह है कि शैशवकाल के जिन स्मृति-चित्रों (घटनाओं, व्यक्तियों आदि) से हमारा भावनात्मक लगाव अधिक रहा हो, वे और भी अधिक साफ-साफ दिखाई देने वाली याद आने लगते हैं, यहाँ तक कि वृद्धावस्था में धुँधली पड़ गयी अपनी आँखों से (स्मृति रूप में मन की आँखों से) उनको निरंतर देखते-याद करते रह सकते हैं। दूसरी ओर जिन घटनाओं या व्यक्तियों से उस अतीतकाल में अधिक भावनात्मक लगाव न रहा हो, वे हमको याद तक नहीं रहते। यहाँ तक कि कोई अन्य यदि याद भी दिलाये, तब भी उनका याद कर पाना अत्यन्त दुष्कर हो जाता है।

विशेष- 1. यहाँ पर लेखिका ने एक मनोवैज्ञानिक सत्य का उद्घाटन किया है-अपनी काव्यात्मक शैली में। निश्चय ही, यह स्थल लेखिका के मनोविज्ञान-ज्ञान और काव्य-शिल्प दोनों ही दृष्टियों से दृष्टव्य है।

2. वैयक्तिकता का समावेश, तत्समपरक शब्दावली और समर्थ अलंकार संयोजन आदि इसकी उल्लेखनीय विशेषताएं हैं।

(58) **प्राय: एक स्पर्धा का तार ..... न कर देगा।**

सन्दर्भ- प्रस्तुत गद्यांश श्रीमती महादेवी कृत 'पथ के साथी' नामक रचना के 'सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला' नामक जीवनीपरक संस्मरणात्मक रेखाचित्र से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग- निराला जी के अद्भुत अपनत्व भरे मैत्री भाव का वर्णन करते हुए लेखिका ने कहा है-

व्याख्या- जिस तरह कोई वार (या धागा) पुष्पों को बेधकर एक स्थान पर (पुष्पहार के रूप में) एकत्र रखता है, उसी तरह एक प्रतियोगिता का भाव हम मानवों को मैत्री भाव के आधार पर एक बनाए रखता है। जिस तरह पुष्पों के सूख कर झड़ते या टूट कर गिर जाने पर केवल तार ही शेष रह जाता है, ठीक यही स्थिति मैत्री भाव के खत्म हो जाने पर हम मानवों की रह जाती है। यही कारण है कि जीवन में किसी साथी से बिछुड़ना भी हमको अकेलेपन का तीव्र अहसास नहीं कराता। निराला जी की तो मित्रता और विरोधमयी विपरीतता दोनों ही जैसे दो ऐसी पुष्प थीं तो अपनत्व रूपी एक ही डाली पर खिले हों। ये ऐसे पुष्प हैं जो एक ओर तो खिल कर जैसे डाली

का (आत्मीयता का) श्रृंगार करते हैं और दूसरी ओर झड़ कर बिखर जाने पर उसको अकेला और सूना कर देते हैं। संकेतार्थ यह है कि निराला जी का सख्य और विरोध दोनों ही आत्मीयता से परिपूर्ण है। यही कारण है कि मित्र तो क्या, उनका कोई विरोधी जन भी ऐसा नहीं जिसके प्रति उनमें अपनत्व न हो, जिसका बिछुड़ना उनको अत्यंत व्याकुल न कर दे। (पन्त जी का निधन-समाचार इसी सत्य का सशक्त साक्षी है।)

विशेष- 1. यहाँ पर निराला जी के व्यक्तित्व में प्राप्त वैशिष्ट्य की प्रस्तुति है।

2. विचारात्मक वर्णन शैली है।

3. यहाँ पर लेखिका के विचार भी व्यक्त हुए हैं।

(59) **उनकी धारणा थी कि ..... आवश्यक है।**

सन्दर्भ- यह गद्यांश सुप्रसिद्ध लेखिका श्रीमती महादेवी वर्मा कृत 'पंथ के साथी' नामक संस्मरणात्मक कृति के 'जयशंकर प्रसाद' नामक संस्मरणात्मक रेखाचित्र से उद्धृत है।

प्रसंग- एक बार, महादेवी ने काशी स्थित निवास स्थान पर जा कर प्रसाद जी से भेंट की। बातों-बातों में, उन्होंने (प्रसाद कृत) 'कामायनी' के विषय में प्रसाद जी के सम्मुख कथा-विरलता सम्बन्धी जिज्ञासा प्रस्तुत की जिसका समाधान प्रसाद जी ने तुरंत कर दिया। प्रसाद जी द्वारा प्रस्तुत किये गये समाधान और उनकी तत्सम्बन्धी धारणाओं को व्यक्त करते हुए महादेवी जी बताती हैं-

व्याख्या- प्रसाद जी की मान्यता थी कि (वेदों में उल्लिखित) अधिकतर कथाओं के कथानक अत्यन्त नाटकीय हैं। फलस्वरूप, उनको अपने दार्शनिक विचारों-निष्कर्षों के अनुकूल परिवर्तित करना कठिन है (अर्थात् उन पर अपने दार्शनिक विचार आसानी से आरोपित नहीं किये जा सकते हैं, फलत: उनके माध्यम से स्व दार्शनिक विचारों को व्यक्त नहीं किया जा सकता है जो 'कामायनी' की रचना करने में प्रसाद जी का महत्त्वपूर्ण-सर्वोपरि इष्ट था।) अपनी समकालीन समस्याओं को भी कोई रचनाकार प्राचीन कथाओं पर आरोपित करके तभी व्यक्त कर सकता है जबकि प्राचीन कथा लोचदार अर्थात् आसानी से परिवर्तित हो सकने वाली हो जबकि ऐसी कथाएं जो प्राचीन और कठिन हो कर एक निश्चित आकार, रूप-रेखा पा लेती है, उनमें प्राय: ऐसी लोच नहीं होती जो उनको सर्वथा नया रूप देने, परिवर्तित और आधुनिक रूप में प्रस्तुत कर पाने के लिए अत्यन्त जरूरी है।

विशेष- 1. यहाँ पर प्रसाद जी की विचारधारा व्यक्त की गई है।

2. प्रसाद जी का (और लेखिका का भी) चिन्तन विशेष दृष्टव्य है।

(60) **मेरी स्थिति बहुत-कुछ ..... अनुभूति होती है।**

सन्दर्भ- यह गद्य-खण्ड 'पथ के साथी' पुस्तक के 'सुमित्रानन्दन पन्त' विषयक संस्मरणात्मक रेखाचित्र से उद्धृत है तथा इसकी लेखिका श्रीमती महादेवी वर्मा हैं।

प्रसंग- अपने आरंभकालीन सृजन के समय की अपनी स्थिति को व्यक्त करते हुए लेखिका बताती है।

व्याख्या- (छायावाद के प्रारंभिक समय में, जबकि हिन्दी काव्य में खड़ी बोली पर्याप्त पुष्ट स्थान ले ही सृजन करने में निमग्न थी)। उस समय में जैसे उस पक्षी के बच्चे के समान थी जिसको अपने पंखों (और उनकी क्षमता) के क्षण-क्षण बढ़ते रहने का कोई अनुमान नहीं होता (अर्थात् मुझे काव्य-सृजन करने की अपनी क्षमता का ज्ञान नहीं था)। अचानक किसी दिन, वह अबोध पक्षी-शावक अपने घोंसले से झाँक कर देखने के प्रयास में गिर पड़ता है किन्तु धरती पर न आकर तेजी से उड़कर किसी ऊँची वृक्ष-शाखा पर बैठ जाता है, तभी उसे ज्ञात होता है कि उसमें तो ठीक तरह से

उड़ने की क्षमता आ गई है। मेरी स्थिति भी ऐसी ही थी (अर्थात् मुझे भी अपने काव्य-सृजन करने और खड़ी बोली में गीतादि का सृजन करने की क्षमता का मान अज्ञानक ही हुआ था।)

(61) **जहर जब तट से टकराती ..... निष्ठावती है।**

सन्दर्भ- यह गद्य-खण्ड श्रीमती महादेवी वर्मा द्वारा रचित 'पथ के साथी' नामक संस्मरणात्मक रेखाचित्र की पुस्तक 'सियारामशरण गुप्त' नामक पाठ से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग- (सुप्रसिद्ध राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त जी के अनुज) श्री सियारामशरण गुप्त का वैवाहिक जीवन किशोर-नवयुवा काल तक ही सीमित रहा था। उनका विवाह भी जल्दी हुआ और दुर्भाग्यवश पत्नी का देहावसान भी। तत्पश्चात् विवाह योग्य आयु होने पर भी, उन्होंने पुनर्विवाह नहीं किया। इसी का कारण स्पष्ट करते हुए एवं सियारामशरण जी के पारस्परिक सम्बन्ध-वैशिष्ट्य की प्रशंसा करते हुए महादेवी जी ने अपने विचार व्यक्त किये हैं और कहा है-

व्याख्या- (सियारामशरण जी को अपनी पत्नी से असीम प्रेम था और वे सर्वरूपेण एकमात्र उसी के प्रति समर्पित थे। इसी से) उनकी स्थिति किसी लहर के समान थी। यह सर्वज्ञात है कि कोई लहर जब किनारे से टकराती है तो वहीं समाप्त हो जाती है और इस तरह अपनी जीवन-यात्रा को भी समाप्त कर देती है किन्तु, दूसरी ओर, जब यही लहर किसी दूसरी लहर से टकराती है तो दोनों मिलकर प्रवाहित होती हैं और इस तरह अपना जीवन-गन्तव्य पा लेती हैं।

निश्चय ही, मानवीय सम्बन्धों में भी यह लहर वाली बात ही चरितार्थ होती है। प्रमाण? जब किसी एक व्यक्ति का प्रेमभाव दूसरे की पार्थिवता से टूट कर चकनाचूर हो जाता है, चूर-चूर होकर बिखर जाता है तब शरीर से बाहर उसकी कोई गति-प्रतिक्रिया नहीं होती परन्तु, दूसरी ओर जब एक व्यक्ति की चेतना का किसी दूसरे व्यक्ति की चेतना से गहरा सम्बन्ध बन जाता है तो दोनों मिल कर अनन्त यात्रा करते हैं। संकेतार्थ यह है कि मानसिक प्रेम यदि शरीर तक सीमित रहता है तो उसके अभाव में अल्पकालीन होकर रह जाता है, सूख जाता है किन्तु जब दो व्यक्ति मानसिक प्रेम-धरातल पर एक होते हैं तो एक का अभाव भी दूसरे को गतिहीन नहीं बना पाता और वह आजन्म अपने उसी प्रेम-पथ पर बढ़ता जाता है। भाई सियारामशरण जी द्वारा रखे गये सभी सम्बन्धों में यही विशिष्टता मिलती है जो शाश्वत-सनातन होने के फलस्वरूप अकथनीय विश्वास भाव से ओतप्रोत है।

विशेष- 1. यहाँ पर महादेवी जी का गहन चिन्तन, विश्लेषण-क्षमता और कथ्य-कौशल आदि अत्यन्त प्रभावोत्पादक रूप में परिलक्षित होते हैं। 2. सियारामशरण जी के शुद्ध प्रेम-भाव और अटूट सम्बन्ध-निर्वाह का सुन्दर अंकन है। 3. प्रथम अनुच्छेद में सशक्त उदाहरण दिया गया है।

'बाणभट्ट की आत्मकथा'

वस्तुत: उपन्यास के प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं- 1. कथावस्तु या कथानक, 2. पात्र और चरित्र-चित्रण, 3. संवाद या कथोपकथन, 4. देशकाल या वातावरण, 5. भाषा-शैली और 6. उद्देश्य या जीवन दर्शन। उक्त समस्त तत्वों का समुचित तथा संतुलित समन्वय ही किसी उपन्यास को

उत्कृष्टता प्रदान करता है तथा यहाँ यह स्पष्ट किया जाएगा कि 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में उपर्युक्त तत्वों की योजना किस रूप में हुई है।

कथावस्तु या कथानक- प्राय: समीक्षक 'बाणभट्ट की आत्मकथा' को हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक अभिनव प्रयोग ही मानते हैं तथा बीसों उच्छवासों या अध्यायों में लिखित इस उपन्यास के प्रारंभ में छह पृष्ठों का कथामुख दिया गया है एवं अंत में चार पृष्ठों का उपसंहार भी है, यह उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है पर इसे आत्मकथा समझना युक्तिसंगत न होगा और इसकी मुख्य या आधिकारिक कथा बाण, भट्टिनी एवं निपुणिका की है। साथ ही इसमें अघोर भैरव, महामाया, भैरवी एवं सम्राट ग्रहवर्मा और विरतिवज्र एवं सुचरिता तथा चारुस्मिता एवं सुगतभद्र की प्रासंगिक कथाएं भी अंकित हुई हैं। इनमें से महामाया की कथा को कुछ अधिक विस्तार प्राप्त हुआ है और वह मुख्य कथा से अधिक बंध भी रखती है पर अवशिष्ट गौण कथाएं उपन्यास के परिवेश की यथार्थता का बोध कराते हुए मुख्य कथा से भी न्यूनाधिक संबंध अवश्य रखती हैं।

विस्तारपूर्वक देखा जाए तो 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास में प्रस्तावना विकास, संघर्ष चरम सीमा एवं उपसंहार नामक कथावस्तु के विकास की सभी अवस्थाओं का सम्यक निर्वाह भी हुआ है और यह उपन्यास सुगठित कथानक वाला उपन्यास ही माना जाएगा एवं इसमें प्रयुक्त घटनाओं में कहीं भी विश्रृंखला नहीं है। साथ ही इस उपन्यास में रोचकता, औत्सुक्य या कुतूहलोद्दीपन, स्वाभाविकता तथा मौलिकता आदि विशेषताएं भी दीख पड़ती हैं और लगभग तीन सौ से अधिक पृष्ठों के उपन्यास में अस्वाभाविक प्रसंग एवं असंबद्ध घटनाएं इनी गिनी ही हैं। प्रस्तुत उपन्यास का नामकरण भी सुसंगत एवं उपयुक्त ही है तथा कथावस्तु में इतिहास एवं कल्पना का संतुलित समन्वय होते हुए भी यह उपन्यास ऐतिहासिक ही माना जाएगा तथा यह ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर ही लिखा गया है हालांकि इस उपन्यास की कथावस्तु का प्रस्तुतीकरण मुख्यतया आत्मकथात्मक प्रणाली में हुआ है लेकिन प्रसंगानुसार इसमें वर्णनात्मक, प्रश्नात्मक, एवं चित्रात्मक प्रणालियों का भी प्रयोग किया गया है। इस प्रकार कथा-सौष्ठव की दृष्टि से 'बाणभट्ट की आत्मकथा' पूर्ण सफल उपन्यास ही माना जाएगा।

पात्र और चरित्र-चित्रण- यद्यपि आलोच्य उपन्यास में प्रमुख पात्र बाणभट्ट, निपुणिका एवं भट्टनी हैं लेकिन कथा-विकास की दृष्टि से कुमार कृष्णवर्धन, अघोर भैरव, महामाया, विरतिवज्र एवं सुचरिता आदि पात्र भी उल्लेखनीय कहे जा सकते हैं। इनमें से बाण इस उपन्यास का नायक है और निपुणिका एवं भट्टनी का समान महत्व होने के बावजूद निपुणिका को ही नायिका मानना उचित जान पड़ता है। यद्यपि 'बाणभट्ट की आत्मकथा' को ऐतिहासिक उपन्यास कहा जाता है लेकिन इसमें केवल बाण, हर्ष, राज्यश्री, तुवर मिलिंद एवं भर्वु शर्मा आदि पात्र ऐतिहासिक हैं तथा जो अन्य अधिकांश काल्पनिक पात्र अंकित हुए हैं वे भी ऐतिहासिक पात्रों के समान महत्वपूर्ण जान पड़ते हैं। अतएव इस उपन्यास की पात्र योजना में उपन्यासकार की मौलिक प्रतिभा का सराहनीय योग रहा है तथा अधिकांश पात्रों का चरित्र-चित्रण सजीव तथा यथार्थ जान पड़ता है।

अगर आलोच्य उपन्यास के हर्ष, कृष्णवर्धन, विग्रह वर्मा, धावक, अघोर भैरव, चंडी मंदिर के पुजारी एवं बाभ्रव्य आदि पात्र स्थिर या वर्गगत माने जाएंगे तो बाणभट्ट, निपुणिका, भट्टिनी, महामाया, विरतिवज्र एवं सुचरिता आदि पात्रों को विकसनशील या व्यक्तिगत ही कहा जाएगा। साथ ही इस उपन्यास में चरित्र-चित्रण के लिए वर्णनात्मक या विवरणात्मक, विश्लेषणात्मक एवं नाटकीय आदि प्रणालियों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है तथा पात्रों का चरित्र-चित्रण मनोविश्लेषण से पूर्ण भी है। हालांकि इस उपन्यास का नायक पुरुष है और न केवल पुरुष प्रधान उपन्यास है बल्कि संपूर्ण उपन्यास में पुरुष पात्रों की ही संख्या अधिक है लेकिन स्वयं उपन्यासकार ने स्वीकार किया है कि संपूर्ण कथा में स्त्री महिमा का बड़ा तर्कपूर्ण और जोरदार समर्थन है। वास्तव में नारी

पात्रों का सहयोग पाकर ही आलोच्य उपन्यास के पुरुष पात्रों का चरित्रोत्कर्ष संभव हो सका तथा स्वयं नायक बाण ही नारी पात्रों के समक्ष गौण जान पड़ता है तथा वह स्वयं को एक नारी का सेवक कहने में संकोच नहीं करता। इस प्रकार पात्र योजना और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह उपन्यास सफल ही माना जाएगा।

संवाद या कथोपकथन- वस्तुतः 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में संवाद योजना का पूर्ण ध्यान रखा गया है तथा इस उपन्यास के संवाद न केवल कथाक्रम को विकासोन्मुख करने में सहायक सिद्ध हुए हैं वरन् पात्रों के चरित्र-विश्लेषण में भी पूर्ण समर्थ रहे हैं। साथ ही इस उपन्यास के संवाद उद्देश्य की झलक भी प्रदान करते हैं और उनमें विवरण की स्पष्टता, प्रवाह की सुधरता तथा चिंतन की गहराई आदि विशेषताएं भी दीख पड़ती हैं। इसी प्रकार आलोच्य उपन्यास के संवादों में उपयुक्तता, अनुकूलता, रोचकता, स्वाभाविकता, संबद्धता, संक्षिप्तता तथा सोद्देश्यता आदि गुण भी हैं।

भाषा शैली- सामान्यतया 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास की भाषा संस्कृतमयी ही है लेकिन यह संस्कृत बहुल भाषा विषय एवं पात्रों के अनुकूल होने के कारण अनुपयुक्त नहीं कही जा सकती क्योंकि इसमें सजीवता, स्वाभाविकता तथा सुघरता का सहज सम्मिश्रण भी है। साथ ही उपन्यास में शब्दों की सार्थक योजना का भी ध्यान रखा गया है और कहीं-कहीं अरबी-फारसी शब्दों को भी अपनाया गया है तथा कुछ नये शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। कुशल शब्द शिल्पी द्विवेदी जी की वाक्य रचना भी सराहनीय है और उसमें सरलता, स्वच्छता, मर्मस्पर्शिता, प्रभविष्णुता तथा शुचिता आदि विशेषताएं भी दीख पड़ती हैं तथा कहीं-कहीं छोटे-छोटे वाक्यों में ही अनूठी भाव व्यंजना के दर्शन होते हैं। आलोच्य उपन्यास में चित्रमयी भाषा भी प्रयुक्त हुई है और व्याकरण की दृष्टि से भी भाषा शुद्ध ही मानी जाएगी तथा ओज, प्रसाद तथा माधुर्य आदि गुणों के साथ-साथ अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा, परिकर एवं विरोधाभास आदि अलंकारों की भी स्वाभाविक योजना हुई है। साथ ही इस उपन्यास में लोकोक्तियों, मुहावरों एवं सूक्तियों का भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है तथा उनकी योजना से भाषा में सजीवता एवं सशक्तता भी आ गई है। इसी प्रकार 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास में आत्मकथात्मक, वर्णनात्मक, तर्क वितर्कमयी, काव्यात्मक, विश्लेषणात्मक नाटकीय, चित्रात्मक एवं आलंकारिक तथा हास्य व्यंग्यमयी परिहासात्मक आदि विविध शैलियों का भी सफल प्रयोग हुआ है एवं भाषा-शैली की दृष्टि से यह एक प्रशंसनीय उपन्यास ही माना जाएगा।

उद्देश्य या जीवन दर्शन- यद्यपि आलोच्य उपन्यास में संस्कृत के प्रसिद्ध साहित्यकार बाणभट्ट के चरित्र का उज्जवल रूप अंकित कर तद्युगीन इतिहास के प्रति पाठकों को आकर्षित भी किया गया है लेकिन इस उपन्यास में लेखक का ध्यान सम सामयिक समस्याओं का ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में विश्लेषण कर उनका एक युगसंगत समाधान प्रस्तुत करने की ओर भी गया है। अतएव उपन्यासकार ने बाल विवाह, राजनीतिक शक्ति, जनतंत्र, समाज व्यवस्था, सांस्कृतिक धरातल, आर्थिक परिस्थितियां, धार्मिक स्थिति, सैन्य शक्ति, राष्ट्र प्रेम, मानव प्रेम, विश्वबंधुत्व की भावना, स्त्री पुरुष की परस्पर अनिवार्यता और साधनात्मक तथा भावनात्मक प्रेम का सम्मिलन आदि विभिन्न समस्याओं के संबंध में अपने विचार भी 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में व्यक्त किये हैं। साथ ही यथार्थ के प्रति आस्था रखते हुए भी उपन्यासकार ने आदर्शवाद में अटूट निष्ठा प्रकट की है और बाण के बहुमुखी व्यक्तित्व तथा कृतित्व के माध्यम से निराशा और शोषण के प्रति आवाज भी उठाई है। आलोच्य उपन्यास यह संदेश भी प्रसारित करना चाहता है कि जन सामान्य को स्वयं जागरूक होकर खुद निर्णय लेकर राष्ट्र हित में कार्य करने को तत्पर होना चाहिए। इस उपन्यास में सत्यमेव जयते की ध्वनि भी मुखरित हुई है और उपन्यासकार द्विवेदी जी का विशाल मानवतावादी दृष्टिकोण तथा समाजशास्त्रीय अध्ययन वर्तमान को नवीन तथा सशक्त दृष्टि भी प्रदान करता है तथा समष्टि के

लिए व्यक्ति अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को उत्सुक हो उठता है। संक्षेप में, इस उपन्यास का महान संदेश 'स्वयं स्वतंत्र जीवित रहो और दूसरों को स्वतंत्र जीवित रहने दो' ही है।

निष्कर्ष- उक्त विवेचना से स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यास कला की दृष्टि से 'बाणभट्ट की आत्मकथा' निर्विवाद रूप से एक सफल उपन्यास है और अपने शोध प्रबंध में डॉ. श्री नारायण अग्निहोत्री ने इसे एक सफल ऐतिहासिक उपन्यास कहा है एवं डॉ. रामअवध द्विवेदी के अनुसार, "बाणभट्ट की आत्मकथा इस बात का सफलतम उदाहरण है कि प्रतिभाशाली लेखक कैसे तथ्य और कथा का संयोजन करके उसके द्वारा न सिर्फ व्यक्तित्व की ही अनुसृष्टि कर सकता है; प्रत्युत युग के विशिष्ट वातावरण को भी उपस्थित कर सकता है। इस पुस्तक की रचना विषय के अनुरूप शैली में ही हुई हैं और इसमें अतीत काल के विपुल और विशद विवरणों का उपयोग आश्चर्यजनक है।"

बाणभट्ट की आत्मकथा में वर्णित नारी-स्वरूप का वर्णन

नारी समस्या के संदर्भ में पंजाबी की लब्ध-प्रतिष्ठित लेखिका अमृता प्रीतम की कुछ पंक्तियां याद आ रही हैं। उन्होंने लिखा है कि हमारे देश में राह चलते लोगों के कपड़ों पर इतनी धूल भी उड़कर नहीं गिरती जितनी तो हमारे यहाँ औरत पर लगाई जाती है तथा मजे की बात यह है कि लोग इसे अपनी अहमियत समझते हैं। कैसी विडम्बना है।

'जहाँ स्त्री की पूजा होती है उस घर में देवता निवास करते हैं, की धारणा रखने वाले भारतीय समाज में ही नारी को निरंतर अनेक गर्हित आयामों से गुजरना पड़ा है। उसकी दया, माया, ममता, स्नेह, त्याग आदि सबको नजरंदाज करके समाज ने उसे सिर्फ 'सैक्स-आर्गन' तक सीमित कर दिया। यही वस्तुतः हमारे सांस्कृतिक तथा सामाजिक पतन का कारण भी रहा है। नारी-मंगल के साधन हेतु साहित्य जगत में जितने भी प्रयत्न हुए उनमें 'बाण भट्ट की आत्मकथा' अविस्मरणीय है यद्यपि प्रसाद, पंत और शरद् बाबू का सहयोग भी कम उल्लेखनीय नहीं है।

प्रस्तुत कृति में नारी-स्वरूप के तात्विक निरूपण के साथ-साथ उसकी सामाजिक अर्हता पर भी यथेष्ट प्रकाश डाला गया है। उपन्यास पढ़ते समय 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' पंक्ति मानस में गूंजती रहती हैं। नारी क्या है? वह कितनी पवित्र है? उसमें कितनी शक्ति और सौंदर्य हैं? उसका सम्मान कितना सुखद तथा उपेक्षा कितनी घातक है? अनेकानेक प्रश्नों का उत्तर उसमें समाविष्ट है।

नारी क्या है, इसका स्पष्टीकरण लेखक ने तात्विक आधार पर किया है। नारी को शक्ति रूप माना है। परम-तत्व के दो रूपों-शिव तथा शक्ति-में से इसे एक मान कर बतलाया गया है कि पिंड में शिव का प्राधान्य पुरुष तथा शक्ति का प्राधान्य नारी है। पुरुष विधि-रूप है तथा नारी निषेध-रूपा है। जहाँ कहीं भी उत्सर्ग, परोपकार, ममता, प्रेम आदि के दर्शन हों, वहाँ नारी का ही प्राधान्य होता है। 'शक्तिमति छाया शीतल' नारी के स्वरूप की इससे उदात्त व्याख्या तथा क्या होगी, इसलिए तो पंत ने भी इसे 'धरा में स्वर्ग पुनीत' 'कलिका में अखिल बसंत' और 'बिन्दु में सिंधु अनंत' माना है। इतना ही नहीं भट्ट की भांति उन्होंने भी नारी में 'देवी माँ' सहचरी प्राण के दर्शन किए हैं।

लेखक ने न सिर्फ इसके स्वरूप की ही विवेचना की है वरन् उसके उदात्ता प्रयोजन पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है। नारी का प्रयोजन पुरुष को साधना-पथ पर प्रेरित करना, सहयोग करना तथा अंततः भौतिक प्रपंच से मुक्त करना है। यानी उसे आत्म-साक्षात्कार में सहयोग देना है तभी तो विरतिवज्र सुचरिता को पुनःग्रहण करते समय उससे अपनी लक्ष्य-सिद्धि में सहयोग का वादा लेता

है नारीहीन पुरुष की साधना फलीभूत हो भी नहीं सकती। इसके साथ ही लोक-मंगल भी उसका प्रयोजन है। वह दात्री है, प्राणदात्री तथा जीवनदात्री। तभी तो गुप्त जी ने सच ही लिखा है:

'अबला जीवन हाय ! तुम्हारी यही कहानी, आँचल में है दूध और आँखों में पानी।'

नारी की पावनता पर संदेह करना पुरुष की बर्बादी का श्रीगणेश हैं। जब तक भारतीय समाज में नारी-सौंदर्य अक्षुण्या रहा तब तक यह 'अरुण_मधुमय देश' रहा। अज्ञ-जनों ने इसे जब-तब पद-दलित किया है। इसे कलुषित करने का प्रयास किया है। लेकिन लेखक ने स्पष्ट किया है कि नारी कभी भी अपावन नहीं होती। उसकी दुरावस्था पौरुष के विघटन की तरफ उठी हुई अंगुली है। भट्ट एक स्थान कहता भी है-"पावक को कभी कलंक स्पर्श नहीं करता दीप शिखा को अंधकार की कालिमा नहीं लगती_।" निर्मलता और कालुष्य मन के भाव हैं, निषेध रूपा नारी की अशुचिता कल्पनातीत है। यदि पुरुष अपने को निषेध भाव से इसके सुपुर्द कर दे तो उसका जीवन सार्थक हो जाए। आयविर्न की खंड-प्राय: दुर्बलता को भी लेखक ने तत्कालीन समाज में 'नारी' की उपेक्षा का परिणाम बतलाया है। भट्ट के उद्‌गार भी दृष्टव्य हैं, "हाय ! संसार ने इस माँसलदेव प्रतिमा की पूजा नहीं की। वह वैराग्य और शांति मद की बालू की दीवार खड़ी करता रहा। उसे अपने परम आराध्य का पता ही नहीं लगा।" नारी के हृदयगत सौंदर्य का साक्षात्कार सामाजिक अवस्था के लिए सबसे बड़ा वरदान है। प्रस्तुत कृति में भट्ट तो नारी-देह को देवालय मानता है। नारी-उद्धार हेतु प्राणोत्सर्ग भी उसकी दृष्टि में कोई बड़ी बात नहीं। भट्ट का अभिभावक रूप ही यह आदर्श पेश करता है कि पुरुष वर्ग को स्त्री-जाति की हर संभव मदद करनी चाहिए।

अगर हम स्वयं नारी की इज्जत करें तो उसे दूसरों की दृष्टि में भी पूज्य बना सकते हैं। इस संदर्भ में भट्टजी के उद्‌गार ध्यातव्य हैं-"तुम निर्दय जाति के चित्त में संवेदना का संचार कर सकते हो। उन्हें स्त्रियों का सम्मान करना सिखा सकते हो। तुम्हारी वाणी मेरी जैसी अबलाओं में आत्म-शक्ति का संचार कर सकती है।

इसलिए नारी की उपेक्षा भी न होनी चाहिए उसके प्रति समभाव आवश्यक है। महामाया कहती है-"क्या निरीह प्रजा की बेटियां इनकी नयन-ताराएं नहीं हुआ करती ? क्या राजा और सेनापति की बेटियों का खो जाना ही संसार की बड़ी दुर्घटना है।" वास्तव में नारी के साथ ऐसा व्यवहार होना चाहिए कि वह अपने आपको धन्य समझने लगे। अपने अस्तित्व को विधाता का वरदान समझे। नारी के अभाव में पुरुष की साधना अधूरी रहती है और पुरुष के अभाव में स्त्री की बलिदाना कौक्षा भी अर्थहीन रह जाती है। बाण भी स्वीकार करता है कि अवधूत पाद की साधना इसलिए अपूर्ण है कि उन्हें स्त्री का सहयोग नहीं मिला तथा निपुणिका की बलिदान भावना भी पुरुषावलंब के बिना निष्फल रही है। अत: नारी अनुपेक्षणीय है।

त्रिभुवन का पुरुष-तत्व उसी रूप में मुग्ध है। अत: शक्ति-तंत्र में इसी को त्रिभुवन मोहनी कहा गया है। पुरुष स्त्री को शक्ति समझकर ही पूर्ण हो सकता है, पुरुष वस्तु निरपेक्ष भाव, रूप सत्य में आनंद पाता है तथा स्त्री वस्तु-युक्त रूप में रस पाती है। वह पुरुष की ममताहीन महत्वाकांक्षा की नियंत्रक शक्ति है।

स्त्री की सफलता पुरुष को बाँधने में है और सार्थकता उसे मुक्त करने में है। उसमें प्रकृति की अभिव्यक्ति, पुरुष की अपेक्षा अधिक होती है तथा पुरुष में अपेक्षाकृत पुरुष तत्व का प्राधान्य होता है। स्त्री तथा पुरुष में निहित प्रकृति की अभिभूति पुरुष से होती है। महामाया कहती है, "मैं अपने भीतर की अधिक मात्रा वाली प्रकृति अपने ही भीतर वाले पुरुष तत्व से अभिभूत नहीं कर सकती इसलिए मुझे अघौर भैरव की जरूरत है।

भट्टनी महामाया से एक स्थल पर प्रश्न करती है कि क्या स्त्री विध्नरूपा है। 'पुरुषों के समस्त वैराग्य के आयोजन मुक्ति साधना के अतुलनीय आश्रम नारी की एक बंकिम दृष्टि में ढह जाते हैं।' पर यह सार्वकालिक सत्य नहीं है। अपने कर्तव्य-पथ में नारी को विध्न रूपा मानव पुरुष की दुर्बलता है। नारी-हीन तपस्या संसार की भद्दी भूल है। पिण्डनारी का कोई महत्व नहीं; महत्वपूर्ण तो नारी तत्व है। अत: एक जगह तपस्वी कहता है-"मैं माता की आज्ञा से तुम्हारा हाथ पकड़ना चाहता हूं, क्या तुम जीवन में मेरे लक्ष्य की तरफ बढ़ने में मुझे सहायता देने को तैयार हो?"

नारी-सौंदर्य पर भी इस कृति में सम्यक् प्रकाश डाला गया है। नारी ही रत्नों तथा आभूषणों की शोभा बढ़ाती है। उसके बिना विश्व-व्यापी संगठन, शांति, धर्म कर्म और ज्ञान आदि निष्प्रभ हैं। इन सब का महत्व तब ही है जब स्त्रियों की दशा भी शोचनीय नहीं है।

स्त्री का एक भेद गणिका भी है जिसे जन-मानस घृणा की व वासना की दृष्टि से ही देखता है। वस्तुत: स्त्री की गणिका से परिणति पुरुषों की दुर्व्यवस्था का ही परिणाम है। उपन्यास में वर्णित-वारुस्मिता और विद्यद्पांग जैसी गुण-संपन्न गणिकाओं को घृणा करना आत्म-प्रवंचना होगी। यहाँ मुझे मशहूर शायर लुधियानवी के गीत की एक पंक्ति याद आ रही है जो उन्होंने वेश्याओं की ओर संकेत करते हुए लिखा था:

'जिन्हें नाज है हिन्द पर वे कहाँ हैं ?'

इस तरह 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में नारी-स्वरूप का विस्तृत विवेचन मिलता है। उसके जीवन-पक्ष को हर कण से देखने का प्रयत्न किया गया है। विश्वास, रजत-नग-पग-तल पर पीयूष स्रोत 'सी बहने वाली नारी से संबंधित समस्याओं का समाधान बाण भट्ट की इन पंक्तियों में मिल जाता है-"नारी देव मंदिर के समान पवित्र है तथा संसार की सबसे बहुमूल्य वस्तु है। इसका अपमानित होना लज्जाजनक और असहनीय है।"

यहाँ तक तो हुई नारी-प्रतिष्ठा की बात जिसमें लेखक को उल्लेखनीय सफलता मिली है। लेकिन नारी संबंधी इस स्वीकारात्मक दृष्टिकोण के साथ ही पुरुष के अहम् दर्प, कठोरता, कदाचार, महत्वाकांक्षा, कुटिलता, बर्बरता आदि की निषेधात्मक 'एप्रोच' के माध्यम से इन सब की विर्गहणा की है। छोटे अंत:पुर में फैली विलासिता तथा उसमें आकंठ डूबी निस्सहाय क्रीत-कुमारियों का पर्दाफाश करते हुए बाण भट्ट और कुमार के द्वारा इसका विरोध दिखाकर लेखक ने इसी दिशा में प्रयत्न किया है। प्रत्यंत-दस्युओं के हृदय-विदारक अत्याचार भी गर्हित पौरुष का प्रतिनिधि रूप है जिसके परिहार की अकुलाहट उपन्यास में तीव्रता से महसूस होती है। स्वार्थसिद्धि हेतु राजनीतिक प्रपंचों का आश्रम, जनता को वास्तविकता से दूर रखने के लिए चारुस्मिता जैसी गुण-संपन्न गणिका का मोहरे के रूप में प्रयोग आदि भी पुरुष वर्ग की विकृत महत्वाकांक्षा का प्रत्यक्ष प्रमाण है। लेखक ने इन सब की भर्त्सना की है एवं इस सत्य का उद्घाटन किया है कि जब तक असंयत पुरुष वर्ग में संतुलन नहीं आता और नारी की निषेध-रूप-गुण संपन्नता नहीं आती तब तक समाज, राष्ट्र और विश्व का त्राण असंभव है।

अत: निष्कर्षत: यह स्पष्ट हो जाता है कि बाणभट्ट की आत्मकथा में नारीतत्व की प्रतिष्ठा और पुरुष की विर्गहणा की गई है।

बाणभट्ट का चरित्र-चित्रण

वस्तुत: 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के पुरुष पात्रों में सर्वप्रथम दृष्टि बाणभट्ट पर ही जाती है तथा शीर्षक से ही स्पष्ट है कि बाण इस उपन्यास का नायक है तथा वह संपूर्ण कहानी का सूत्रधार

भी है। यहाँ यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि बाण सातवीं शताब्दी का अविस्मरणीय चरित्र है और भले ही 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में अंकित संपूर्ण वृत्त इतिहास सम्मन न हो पर बाणभट्ट ऐतिहासिक पात्र ही है। सत्य तो यह है कि वह एक अद्‌भुत और चित्ताकर्षक पात्र ही जान पड़ता है एवं इतिहास कल्पना तथा बौद्धिकता ने त्रिवेणी के सदृश बाण के चरित्र की महत्ता, पवित्रता एवं आदर्श की स्थापना की है। यहाँ बाण के चरित्र की विशेषताओं को निम्नानुसार दिया जा सकता है।

सामान्य परिचय- बाण शोण नदी के किनारे स्थित प्रीतकूट में निवास करने वाले वात्स्यायन गोत्रीय चित्रभानु भट्ट की पुत्र है तथा उसका वंश सुविख्यात रहा है तथा उसके पितृ पितामही के घर वेदाध्यायियों से भरे रहते थे एवं यज्ञ धूम से निरंतर धूमायित रहते हैं। साथ ही घर की शक-सारिकाएं भी विशुद्ध मंत्रोच्चारण कर लेती थीं और उनसे विद्यार्थी डरते रहते थे क्योंकि वे पद-पद पर उनके अशुद्ध पाठों को सुधार देती थीं। चित्रभानु अपने समय के प्रकांड पंडित थे तथा वे ग्यारह भाई थे। इस प्रकार वेद शिक्षा एवं यज्ञ-हवन आदि कार्यों में बाण को दक्षता वंशगत परंपराओं से प्राप्त हुई थी और उसे शास्त्र एवं काव्य का भी यथेष्ट ज्ञान था।

दैवयोग से बाण को शैशवावस्था में ही माता के वात्सल्य से सर्वदा के लिए वंचित होना पड़ा और पिता चित्रभानु ने ही उसका पालन-पोषण किया। साथ ही जब बाण चौदह वर्ष का था तब उसे पिता का भी चिरवियोग सहन करना पड़ा तथा वह अंतर से दुखी ही रहा। बाण के एक चचेरे भाई उड्डुपति (जिन्हें तारा पति भी कहा गया है) प्रसिद्ध विद्वान एवं तार्किक थे और उन्होंने प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान वसुभूति को शास्त्रार्थ से पराजित कर बौद्ध-धर्म पर विजय प्राप्त कर महाराजाधिराज हर्ष को वैष्णव या शैव-धर्म की ओर आकृष्ट किया था। इस तरह बाण विद्वत समाज से संबंधित था पर वह आरंभ में ही स्वतंत्र व्यक्तित्व का था और उसे बाल्यकाल से ही दुःख सहन करना पड़ा था।

नामकरण एवं स्वभावगत विशेषताएं- वास्तव में बाण का नाम दक्ष भट्ट था पर वह जन्म से आवारा, गप्पी, अस्थिर चित्त एवं घुमक्कड़ था तथा जब वह कालांतर में कुछ उद्दंड एवं आवारा हो गया तब उसे 'बंड' कहा जाने लगा। इसी को बाद में संस्कृत शब्द बाण द्वारा संस्कार कराकर उसने अपना नाम बाण रख लिया और बाद में लोगों ने भट्ट को आदर एवं स्नेह के कारण उसके नाम के साथ जोड़ दिया तथा उसे बाणभट्ट कहा जाने लगा। कालांतर में वह इसी नाम से प्रसिद्ध हुआ तथा लोग उसका 'दक्ष नाम भूल से गये तथा वह 'बाणभट्ट' नाम से ही अब जाने लगा।'

सामान्यतया बाण प्रारब्धवादी ही था और वह भग्य का बली होते हुए भी परिस्थितियों के साथ चलना जानता था। यद्यपि वह मन का मनचला था लेकिन उसमें संयम की परिपक्वता भी थी तथा उसका सुसंस्कृत मन विद्रोह का समर्थन न करते हुए भी वह कभी-कभी चोट खाए नाग की भांति फुत्कार भर उठता। नारी संसर्ग में रहते हुए भी वासना से दूर रहा क्योंकि वह हमेशा नारी देह को पवित्र देव मंदिर मानता था। एक ओर उसमें शाप देने की शक्ति थी तो दूसरी ओर वह आशीर्वाद देने हेतु भी हाथ उठा सकता था और समाज में पूज्य होने के साथ-साथ राजदरबार में यथोचित प्रतिष्ठा का अधिकारी था। इस प्रकार बाणभट्ट का चरित्र 'विविधता में एकता' का सुंदर उदाहरण है तथा वह अभावों से भरा, घावों से हरा और कर्म से खरा जान पड़ता है तथा परिस्थितियों से प्रेरित होकर ही वह सब कुछ करता रहा है।

विधि अनुभव एवं गुण्- वस्तुतः 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि बाण का जीवनवृत्त विचित्रताओं से पूर्ण रहा है और उसे अपने जीवन में अनेक प्रकार के अनुभव भी हुए थे। उसने स्वयं ही कहा है 'आवारा तो मैं था ही ! इस नगर से उस नगर में, इस जनपद से उस जनपद में बरसों मारा-मारा फिरता रहा। इस भटकान में मैंने कौन सा कर्म नहीं

किया ? इस तरह वह कभी नट बनता, कभी पुतलियों का नाच दिखाता, कभी नाट्य मंडली संगठित करता तथा कभी पुराण वाचक बनकर लोगों को कथा सुनाता। बाण रूपवान तो था ही पर उसमें बोलने की पुटता भी थी और किशोरावस्था एवं जवानी के दिनों में ये ही दो बातें उसकी मदद करती थीं। अतएव बाण ने कोई कर्म छोड़ा नहीं और उसके बहुविधि कार्यकलाप को देखकर लोग उसे 'भुजंग' समझने लगे थे परंतु वह लंपट नहीं था।

जीवन का नवीन अध्याय- घुमक्कड़ प्रवृत्ति का बाण अपनी आत्मकथा का आरंभ उस घटना से करता है जब वह घूमते-फिरते स्थाणीश्वर पहुँचता है और वहाँ उसके जीवन का नया अध्याय प्रारंभ होता है। वह महाराज हर्ष के भाई कुमार कृष्णवर्धन के यहाँ पुत्र के नामकरण संस्कार में होने वाले उत्सव में सम्मिलित होने के लिए जाने का निश्चय करता है परंतु पहुँच नहीं पाता क्योंकि मार्ग में उसकी भेंट निपुणिका से हो जाती है। निपुणिका पहले बाण की नाटक मंडली में काम करती थी पर वह एक दिन बिना किसी को बताये कहीं चली जाती है और बाण अपनी नाटक मंडली विसर्जित कर उसे ढूंढ़ने निकल पड़ता है क्योंकि उसे भय था कि कहीं वह युवती किसी निकृष्ट आचरण की तरफ न प्रवृत्त हो जाय। यह घटना नारी के प्रति बाण की सम्मान भावना का परिचय देती है तथा स्वयं बाण हमेशा नारी में देव मंदिर की कल्पना करता रहा है। साथ ही जिस समय बाण ने निपुणिका से भेंट की थी उस समय वह अपना प्रिय वेश धारण किए हुए था तथा उसने स्वयं कहा है, "उस दिन मैंने डट के स्नान किया, शुक्ल अङ्गराग किया, शुक्ल पुष्पों की माला धारण की, आगुल्क शुक्ल धौत उत्तरीय धारण किया।" इससे बाण की सुसंस्कृति एवं राजशाही संस्कार आदि का परिचय मिलता है।

निपुणिका के कहने पर बाण विलासप्रिय मौरवरियों के चंगुल से तुवर मिलिंद की कन्या राजकुमारी चंद्रदीग्धति के उद्धार के लिए तैयार हो जाता है तथा कुमार कृष्णवर्धन के भवन जाने का विचार त्याग देता है। स्वभाव से ही भावुक और नारी जाति के सम्मान का पूर्ण ध्यान रखने वाला बाण सीता रूपी राजकुमारी का उद्धार करने के लिए जटायु की भांति प्राण तक देने को तैयार हो जाता है तथा निपुणिका के अनुरोध पर वह नारीवेश में छोटे राजकुल के भवन में प्रवेश करता है। विचारपूर्वक देखा जाए तो राजकुमारी चंद्रदीग्धति-जिसे उपन्यास में मुख्यतया भट्टनी कहा गया है-के उद्धार का साहस और उस प्रयास में बाण की सफलता उसके अनुपम शौर्य मात्र की ही सूचक नहीं, बल्कि नारी के प्रति उसकी आँतरिक भावना का भी परिचायक है। इस तरह-"भट्टिनी के उद्धार में भट्ट का साहस, उसकी वाक्पटुता, आत्म-सम्मान, वीरता, विनम्रता, तेज, गांभीर्य, नीति कुशलता आदि सभी लक्षण अपने-अपने प्रसंग और परिस्थिति में पूर्ण रूप से उद्‌द्ध हुए हैं।"

चरित्र विश्लेषण- सामान्यतया बाण शिष्ट, सभ्य एवं सुसंस्कृत व्यक्ति था और वह मधुर भाषी भी था। वह प्रत्येक परिस्थिति में संतोषपूर्ण जीवन व्यतीत करने का आदी रहा है और चाहे कैसी भी दशा क्यों न हो उसने कभी भी कुलीन वंशीय संस्कृति एवं सभ्यता का त्याग नहीं किया। बाण हमेशा दूसरों के प्रति पूर्ण सम्मान की भावना रखता रहा परंतु वह कभी भी तिरस्कार सहन नहीं कर सकता था और चाहे उच्च अधिकारी से ही बातचीत क्यों न करनी पड़े वह वार्तालाप के समय अपने स्वाभिमान, अन्यतम साहस तथा अटूट विश्वास का ही परिचय देता है। जब वह कुमार कृष्णवर्धन से वार्तालाप कर रहा था तब वह यह जानता था कि कुमार के एक संकेत पर उसका जीवनास्तित्व ही समाप्त हो सकता है और जिस भट्टिनी का वह अभिभावक बना है उसकी भी दुर्दशा हो सकती है पर अपने उद्‌गारों में वह साहस एवं प्रबल शक्ति आदि गुणों का ही अभूतपूर्व परिचय देता है। इसी तरह वह महाराज हर्ष से उनकी राजसभा में ही विवाद करने को आतुर हो उठता है क्योंकि हर्ष ने उसे 'परम लंपट व्यक्ति कह दिया था और यह सुनकर उसके कान तक की शिराएं लाल हो गयीं तथा तीव्र मानस संताप से उसका संपूर्ण शरीर जल उठा। अगर कुमार कृष्णवर्धन संकेत न करते तो वह राजा की बातों का भी उग्र पतिपाद करने से नहीं चूकता पर वह पूर्ण रूप से

मौन नहीं रहता और अपना क्षोभ प्रकट कर ही देता है। यहाँ उपन्यासकार ने बाण के अंत: संघर्ष का सजीव चित्रण किया है तथा इस उपन्यास में कई ऐसे स्थल हैं जहाँ बाण के अंत: संघर्ष के ऐसे चित्र दीख पड़ते हैं जो उसकी चारित्रित विशेषताओं को स्पष्ट करने में समर्थ रहे हैं।

वस्तुत: अहम भावना तो प्रत्येक व्यक्ति में न्यूनाधिक मात्रा में रहती है तथा बाण में भी वह स्वाभाविक ही दीख पड़ती है पर चाहे कैसी भी स्थिति क्यों न हो वह शिष्टाचार प्रदर्शन का पूर्ण ध्यान रखता है। इस प्रसंग में बाण का आचार्य सुगतभद्र और अघोर भैरव से हुआ वार्तालाप दर्शनीय है तथा महाराज हर्ष द्वारा उपेक्षा दिखाए जाने पर भी वह शिष्टाचार का ध्यान रखता है। यह देखकर कुमार कृष्णवर्धन को कहना पड़ता है कि 'देव, बाणभट्ट पवित्र वंश का तिलक है, उनका उपयुक्त सम्मान होना चाहिए और बाण को महाराज हर्ष की राजसभा का महापंडित घोषित किया जाता है एवं हर्ष ने उसकी प्रशंसा करते हुए राजसभा में यह भी कहा कि तुम अच्छे कवि जान पड़ते हो।' सत्यभाषी तथा छलरहित बाण प्रत्युत्पन्नति संपन्न व्यक्ति है तथा वह आपदाओं से डरकर साहस नहीं खो देता वरन् परिस्थितियों के अनुरूप करणीय कार्य करने का ध्यान रखता है। हम देखते हैं कि भट्टनी जिस देव-मंदिर में आश्रय लेती है वहाँ के पुजारी का आचरण जानकर पहले तो बाण विचलित हो उठता है पर वह चतुराई के साथ उस लंपट पुजारी को घनत्व के यहाँ भेज देता है। इसी प्रकार चाहे विद्वान एवं शासक हो या फिर कंचू चिकि वाभ्रव्य और धावक के समान विदूषक हों, वह (बाणभट्ट) अपनी वार्तालाप कुशलता का ही परिचय देता रहा है।

बाण आत्म-विश्लेषक भी है तथा जब कभी उसे अवसर मिला है, उसने कार्यों पर स्वयं सूक्ष्म दृष्टि से विचार करते हुए अपने मत एवं हृदय की कमजोरियों का उल्लेख किया है। इसलिए वह निरंतर एक विकासोन्मुखी चरित्र की भांति आगे बढ़ता गया है तथा उसके चरित्र में कहीं-कहीं वैषम्य तथा विरोधाभास की झलक होते हुए भी सतत् गतिशीलता के दर्शन होते हैं। हम देखते हैं कि जब कभी भट्टिनी पर वह कोई मुसीबत आते देखता है तब पहले वह अपने को कोसने बैठ जाता है और प्रारब्ध को बुरा-भला कहकर मन को शांति प्रदान करने का प्रयत्न करता है कि बाण किसी समय पुराणवाचक बनकर तथा भविष्य-फल बना कर सर्वसामान्य जनता को भुलावे में रखता रहा है लेकिन उसका चरित्र लेखक ने देव-तुल्य ही प्रस्तुत किया है एवं राजनीति के दांव-पेंच से अनभिज्ञ होते हुए भी वह बुद्धिमान एवं नीति कुशल अवश्य था।

निष्कर्ष- उक्त विवेचना से स्पष्ट हो जाता है कि बाणभट्ट का चरित्रांकन अत्यंत मोहक एवं आकर्षक ढंग से हुआ है और संक्षेप में वह 'आदर्शवादी, प्रेमी, कलाविद्, काव्यानुरागी, स्वाभिमानी, प्रत्युत्पन्नमति, शिष्टाचार संयुक्त, प्रगल्भ, गंभीर, सहनशील और हास्यप्रिय पात्र है तथा सब प्रकार से उपन्यास का नायक होने योग्य है। उसका चरित्र स्फटिक की तरह स्वच्छ, मणि की तरह कांतिमान तथा मनुष्य की तरह भाव गफन से संयुक्त है।'

बाणभट्ट की आत्मकथा में प्रेम के स्वरूप का निरूपण

प्रेम दु:खों की सरिता, आँसुओं का सागर, मृत्यु की उपत्यकता और जीवन की चरम परिणति है यानी आत्मोत्सर्ग है। तभी तो किसी कवि ने कहा है कि यह 'प्रेम को पंथ करार महा, तरवार की धार पैधावनों है।' आज प्रेम के नाम पर जो देह भोग की प्रबलता और वासना का विज्ञापन देखने को मिलता है वह तो व्यक्ति की आदिम पाशविकता पर एक मुलम्मा मात्र है। आधुनिक या माडर्न, होने की हविस में लोगों ने प्रेम को 'रम', रेस्टॉरेंट्स, क्लब ट्विस्ट और 'हट' के सुपुर्द कर दिया। बस फिर क्या प्रेम के नाम पर न जाने कौन-कौन से विकार खेल खेलने लगे हैं। साहित्य में भी इस व्यक्तिक्रम के दर्शन प्रचुर मात्रा में होने लगे हैं। यह सब हमारे विनाश की व्यवस्था है। प्रेम

वस्तुत: आत्मिक है, सूक्ष्म है, निगूढ़ है। विशुद्ध प्रेम दैहिक नहीं होता। उसमें प्रदर्शन तथा भोग की लिप्सा नहीं होती है। देह तो एक मंदिर मात्र है जिसमें प्रेम देवता वास करते हैं।

बाणभट्ट की आत्म-कथा में प्रेम के ऐसे ही अतृप्त रूप का निरूपण है। भट्ट, निपुणिका और भट्टिनी एक-दूसरे के लिए उत्सर्ग करने को प्रतिफल तत्पर रहते हैं लेकिन इस प्रेमत्रयी में कहीं किसी भी तरह के विकास के दर्शन नहीं होते। दरअसल इसमें प्रेम का स्वरूप अत्यंत उलझन पूर्ण तथा अस्पष्ट है। न कहीं उदय की अरुणिमा फैलती है और न कहीं उदय फैलती है तथा न ही प्रस्फुटन की चटकन श्रुतिगोचर होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'भस्मावृत्त अग्नि-कणिका की भांति प्रेम ने तिरोभाव से आविर्भाव प्राप्त किया है।' इस कथा में सर्वत्र प्रेम की व्यंजना गूढ़ तथा अदृप्त भाव से हुई है। कथा का जिस ढंग से प्रारंभ हुआ है उसकी स्वाभाविक परिणति गूढ़ तथा अदृप्त प्रेम ही हो सकती है। (डॉ. द्विवेदी)

अदृप्त प्रेम की सत्ता संदेहास्पद मानी जाती है लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि अतृप्त प्रेम में ही उच्चतम आदर्श खोजा जा सकता है। हाँ, इतना है कि वह आत्म-विसर्जन के पीछे निहित रहता है। अत: जब तक आत्म-निसर्जन का द्वार नहीं खुलता, इस प्रेम की झांकी नहीं मिल सकती।

प्रस्तुत आत्मकथा में प्रेम के जिस रूप का प्रत्यक्ष होता है उनमें प्रथम तो इस सत्य पर आदृप्त है कि नर-लोक से किन्नर-लोक तक एक ही रागात्मक हृदय व्याप्त है अत: स्तर भेद और संघर्ष समाज में (प्रेम की दृष्टि से) सहज न होकर आरोपित हैं। दूसरा, प्रेम यहाँ मानसिक विकारों के रूप में ही प्रकट हुआ है। हाव तथा अनुभावों का इसमें अभाव सा ही है। तीसरा, उत्स या तो श्रद्धा है या सहानुभूति है। दैहिक सौंदर्य या माँसलता का लोभ नहीं। इसमें प्रेम को एक ओर अविभाज्य बतलाया है जो ईर्ष्या और द्वेष से कोसों दूर होता है।

आत्म-कथा में बाण भट्ट के इसी प्रेम की झांकी दी गई हैं। पाठक बाणभट्ट की आत्मकथा में प्रवेश करके ही नर-लोक से किन्न-किन्न लोक तक व्याप्त प्रेम के अरुणिम दृश्य देख सकते हैं। भट्टिनी का यह कथन देखिए, "...तुम्हीं ऐसे हो जो नर-लोक से किन्नर-लोक तक व्याप्त एक ही रागात्म हृदय एक ही करुणायत चित्र को हृदयगत करा सकते हो। मनुष्य लोभवश, मोह-वश, द्वेष-वश पशुता की तरफ बढ़ता जा रहा है। तुम इसके हृदय को संवेदनशील और कोमल बना सकते हो।"

'प्रेम का अयुक्त निर्वहन अभिशाप भी बन जाता है।' यह सुंदरता का आधार है। तपोनिष्ठ प्रेम ही वास्तविक प्रेम है। तपस्या के भीतर से प्रेम का भौतिक रूप अविभत होता है। 'पार्वती की तपस्या से सच्चे प्रेम की वे देवता आविर्भूत हुए थे, जो भस्म हुआ वह आधार, निन्द्रा के समान जड़े शरीर का विकार्य धर्म मात्र था। वह दुर्वार था परंतु देवता नहीं था, देवता दुर्वार नहीं होता।' पर इसका यह अर्थ नहीं कि प्रेम का शरीर से कोई संबंध नहीं होता, शरीर प्रेम की सिद्धि का साधन है। हृदय बंधते हैं और शरीर खिंचते हैं।

कथा में सर्वत्र प्रेम की व्यंजना गूढ़ तथा अदृप्त भाव से हुई। यह कथाकार का कौशल ही नहीं आदर्श है कि 'प्रेम की अभिव्यक्ति तो हो जाती है। पर मुखर होकर सामने नहीं आती।' भट्ट का यह मानसिक द्वंद्व देखिए-

मैंने स्वेच्छा से यह कैसा बंधन अपने लिए तैयार कर लिया है। मेरी रात अपनी नहीं है। मेरा मन अपना नहीं है।-यह पराधीनता तो तुमने स्वयं मोल ली है। मुझे सबसे ज्यादा आश्चर्य इस बात पर हुआ कि एक बार भी मेरे मन ने विद्रोह नहीं किया।' कैसी विडम्बना है कि बाण भट्ट भट्टिनी के लिए आत्मोत्सर्ग में ही अपनी सार्थकता समझता है तथा भट्टनी भी महामाया के समक्ष कुछ में से किसी का प्रेम भी मुखर नहीं होता। गूढ़ और अदृप्त प्रेम में कन्या सी स्वाभाविक परिणति

दिखाकर कथाकार ने न तो वास्तविकता से किनारा किया है और न प्रेम को कुंठा प्रवाह में ही नहाने दिया है। (डॉ. सारानाम सिंह)

यहाँ करुणाजनक संयोग के बीच सहानुभूति के रागात्मक वातावरण में मर्म वेदना का जो स्पर्श होता है वही तो प्रेम की उषा का पदार्पण होता है। निपुणिका के जीवन की दाहकता भट्ट को करुणाभिभूत कर देती है। जब निपुणिका कहती है कि 'मेरी ही शपथ करके तुम सत्य-सत्य कहो आर्य ! मेरा कौनसा ऐसा पाप चरित्र है जिसके कारण मैं आजीवन दु:ख की विदारुण भट्टी में जलती रही ?

क्या स्त्री होना ही मेरे अनर्थों की जड़ नहीं है ? तो भट्ट का यह विचारना है कि 'इन शब्दों में कितना मर्मन्तिक दु:ख है।' इसे मैं ही जानता हूं।' कितना सहानुभूति-पूर्ण लगता है। यही हृदय से हृदय तक की पहुँच है। इससे अधिक गहन वाचिक अनुभाव तथा क्या हो सकता है ? आलंबन का उत्कर्ष दिखाने वाले ये कायियक अनुभाव तो और भी महत्वपूर्ण हैं 'निपुणिका में इतने गुण हैं कि वह समाज और परिवार की पूजा का मात्र हो सकती थी, पर हुई नहीं...वह हंसमुख है, कृतज्ञ है, मोहिनी है, लीलावती... ।'

निपुणिका के संबंध में भट्ट के इस गुण-कथन में प्रकट उत्साह में व्याप्त अनुराग लहरी की आर्द्रता सहज ही अनुभव की जा सकती है। प्रिय के लोक-विधायक गुणों का गान अंतस्थ रागात्मकावृत्ति का उन्नायक तथा परिचायक है। एक अन्य स्थल पर भी बाण का निपुणिका के प्रति अनुराग का प्रत्यक्ष होता है जहाँ वह इतना तक कहने में नहीं चुकता कि उसके गुणों पर न रीझने वाला हृदय पाषाणसम कठोर है, "चारुस्मिता निपुणिका जैसी सेवा-परायणा, लीलावती ललता से प्रति जिस पुरुष की श्रद्धा और प्रीति उच्छवसित न हो उठे वह जड़ पाषाणपिण्ड से अधिक मूल्य नहीं रखता।" भट्ट का यह प्रेम एकांकी नहीं है। यहाँ तो दोनों तरफ प्रेम पलता है वाली बात है। निपुणिका का अंत:करण भी भट्ट के प्यार में लगा रहता है। स्वयं भट्ट के मनोद्‌गत भावों का अनुशीलन ही उसका साक्षी है। "आज भी उसके हृदय मंदिर के अत्यंत निमृत कक्ष में, कोई देवता स्तब्ध है जो निश्चय ही मेरी मौन पूजा से ही संतुलित रहता है।" यहाँ से पंत की एक पंक्ति याद आ रही है फिर तुम, तुम से, मैं प्रियतम में, हो जाए द्रुत अंतर्धान।' यहाँ पर जलने वाली प्रेम दीप सिखा यह नहीं चाहती कि 'पतंगा' भी उसमें जल कर भस्म हो। यहाँ तो इसी में संतोष है कि तुमने इस गंधहीन पुष्प को चरणों तक पहुँचने देने के अयोग्या नहीं समझा।' भट्ट द्वारा नाटक मंडली तोड़ने में भी निपुणिका उसके अपने प्रति अनुरक्ति ही देखती है। विशुद्ध प्रेम हेतु यह जरूरी है। विशुद्ध प्रेम के लिए यह जरूरी नहीं कि वह यह कहे कि 'प्रिय' में तुम्हें प्यार करती हूं।

वहाँ तो जीवन का हर क्षण, चेतना का हर कण अनुराग-रंजित है। यदि अब भी संतोष न हुआ हो तो एक बार और, भट्ट का यह मर्म-उद्‌गार देखिए, "हाय मेरी प्राण रक्षा के लिए उसने सम्मोहन की प्रति-प्रसव की बलिवेदी पर अपने को होम दिया है अंत में।" वाभ्रण्य से सुने अवधूतपात के इस विचार को वह आत्मसात् कर लेती है कि अपने को विशेष भाव से देना ही वशीकरण है। प्रमाण भी शीघ्र ही मिल जाता है जब अपने अंत से पूर्व वह कहती है, "भट्ट तुम नहीं देखते कि वासवदत्ता ने किस तरह दो विरोधी दिशाओं में जाने वाले प्रेम को एक सूत्र कर दिया है। प्रेम एक और अविभाज्य है। उसे सिर्फ ईर्ष्या तथा असूया ही विभाजित करके छोटा कर देते हैं।"

इसी भांति भट्टिनी के सामने भी बाण अपने को नि:शेष भाव से उंडेल देने में ही अपनी सार्थकता समझता है। उसका हृदय द्रवित नवनीत की नाई अपनी आराध्या भट्टिनी के समक्ष ढुरक पड़ना चाहता है। वह चाहता है कि उसका कण-कण भट्टिनी को जाय। और कहीं, स्त्रियों में जो समर्पण भाव देखा जाता है वह यहाँ भट्ट दृष्टिगोचर होता है। भट्ट के लिए भट्टिनी के पाणि-पल्लवों के स्पर्श के आगे स्वर्ग का परिजात-पल्लव तुच्छ कल्पना है और काल्पनिक अमृत की अपेक्षा उसकी

करतलस्रावी स्वेद धारा अधिक भ्रामक है। तीर तो वह कि बेध दे और पता भी न चले। 'देव-मंदिर का उद्धारकर्ता भट्ट न जाने कब भट्टिनी के आलौकिक रूप-मंडल से विकर्ण हुई किरणों से सम्मोहित हो जाता है इस बात का उसे अहसास ही नहीं होता "आखिर वह कौनसा अंतर्विकार है जो मेरे चित्त को जड़ बना रहा है और मेरी बुद्धि को मोह-ग्रस्त बना रहा है। मेरे लिए उसका उत्तम पाना कठिन हो रहा है आज मैं स्वयं अपने समस्या हो रहा हूं।" हर स्थल पर बाण का अंतस्थ अनुराग श्रद्धा के समक्ष सिर नहीं उठा पाता। हर कहीं संस्कारों का आवरण झूलता रहता है फिर भी सहृदय पाठक को पूर्णत: निराश नहीं होना पड़ता है।

जब जरा भट्टिनी के हाल पर भी गौर कीजिए। भट्ट के मुख से प्रथम वाक्य सुनते समय उसे अपने जीवन का अनुभव होता है। भट्ट से मिलना वह अपने जीवन की सार्थकता मानती है। अंतस्थ प्रणय का इससे अधिक प्रत्यक्षीकरण और क्या होगा? उसके लिए भट्ट इस पारिजात है। भैरवी महामाया के समक्ष तो वह अथवा हृदय ही खोल कर रख देती है। भट्टिनी के मुंह पर संयम और लज्जा के ताले लगे रहते हैं। पर भाव जब इतने घनीभूत हो जाते हैं कि मन में सिमटते ही नहीं तब राग का गुलाबी, प्रभा-मंडल उसके इर्द-गिर्द छा जाता है। भट्ट की देवी, अशोक वन की सीता, स्वीकार कर लेती है कि 'मैं देवी नहीं हूं मैं हूं चंद्रदीधति सौ-सौ बालिकाओं के समान एक बालिका। मैं हूं तुम्हारी भट्टिनी।" यद्यपि वह भट्ट में निपुणिका की अनुरक्ति से परिचित होती है तो भी भट्ट के प्रति उसकी तरलता में कोई अंतर नहीं आता। प्रेम व्यक्ति का हृदय विशाल बना देता है इसका उदाहरण तब मिलता है जब निपुणिका विकल होकर भट्ट के चरण जकड़ लेती हैं और भट्टिनी कहती है, मत छुड़ाओ भट्ट, उसे शांति मिल रही होगी।" प्रेम का अर्थ बंधन नहीं, व्यक्तित्व का परिसीमन नहीं। भट्टिनी का अनुराग इस कथन का मूर्त आदर्श है कि नारी सार्थकता पुरुष को मुक्त करने में है।

इस प्रकार भट्ट, निपुणिका तथा भट्टिनी प्रेमत्रयी अदृप्त प्रेम के निर्वहन की दृष्टि से स्पृहणीय है। सुचरिता, विशश्तिन्न तथा भट्ट का 'मंडल' भी प्रेम के इसी रूप के साधन-पथ पर अग्रगामी है। सुचरिता और भट्ट का प्रेम श्रद्धाद्भूत है और सुचरिता और विरतिवज्र का प्रेम महामाया तपापूत है। लेकिन इसका अधिक प्रस्फुटन नहीं हुआ है। महामाया और अघोर भैरव भी इस संदर्भ में विचारणीय हैं।

तो आइए इस संदर्भ में 'द्विवेदी जी' की सफलता पर वर्धापतिका की खोले बिखेरते हुए इस प्रकरण का समापन कर दें।

बालकृष्ण भट्ट का संक्षिप्त परिचय

भारतेन्दु युगीन साहित्यकारों में पंडित बालकृष्ण भट्ट का स्थान ज्यादा चर्चित है। उस युग की गद्य की सभी विधाओं में भट्ट जी का महत्व बहुत बढ़कर है।

जीवन-परिचय- पंडित बालकृष्ण भट्ट का जन्म उत्तर प्रदेश के प्रयाग के अहियापुर मुहल्ले में 3 जून 1844 ई. को हुआ था। आपके पिताश्री एक प्रसिद्ध व्यापारी थे। आपकी माताश्री न केवल सुसभ्य महिला थीं अपितु एक विदुषी भी थीं। भट्ट जी पर अपने पिता का कम, अपनी माता का प्रभाव अधिक पड़ा। परिणामस्वरूप आपने घर पर ही स्वाध्याय के द्वारा हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू, बंगला आदि भाषाओं का ज्यादा ज्ञान प्राप्त कर लिया। भट्ट जी बचपन से ही स्वाभिमानी तथा स्वच्छन्द प्रकृति के थे। पूरी शिक्षा और भाषा ज्ञान प्राप्ति के बाद उन्होंने कुछ समय तक मिशन स्कूल में कुशलतापूर्वक अध्यापन किया। लेकिन व्यवस्था को अपने स्वाभिमान के विपरीत देखकर वहाँ से त्यागपत्र दे दिया। इसके बाद उन्होंने कुछ समय तक 'हिन्दी-प्रदीप' पत्रिका का 1877 से कई वर्षों तक लगातार सम्पादन किया। यह सम्पादन घाटे के बावजूद भी चलता रहा। 20 जुलाई, 1914 ई. को हिन्दी का उज्जवल दीप सदा हेतु अस्त हो गया।

रचनाएँ- भट्ट जी की रचनाएँ विविध हैं। वे निम्न तरह हैं-

1. **नाटक-** (1) पद्मावती, (2) शर्मिष्ठा, (3) दमयन्ती स्वयंवर, (4) कलिरव की सभा, (5) रेल का विकट खेल, (6) बाल-विवाह, (7) चतुरसेन आदि।

2. **उपन्यास-** (1) सौ अजान और एक सुजान, (2) नूतन ब्रह्मचारी।

3. **निबन्ध-संग्रह-** (1) साहित्य-सुमन, और (2) भट्ट निबन्धावली (दो भागों में)

भाषा-शैली- श्री बालकृष्ण भट्ट की भाषा अत्यन्त सधी हुई है तथा अर्थवती है। उसमें भावों और अभिप्रायों की सुन्दर योजना हुई है। इस प्रकार की भाषा में संस्कृत, उर्दू, फारसी आदि विविध भाषों के शब्द उपयुक्त रूप में आए हैं। इस तरह के शब्दों के द्वारा लेखक ने मुहावरों तथा कहावतों के प्रयोग यथास्थान किए हैं। फलत: आपकी शैली मुहावरेदार तथा प्रवाहमान हो गई है। कहीं-कहीं आपकी शैली गवेषणात्मक और विवेचनात्मक भी हो गई है।

व्यक्तित्व- भट्ट जी का व्यक्तित्व पूर्ण रूप से साहित्यिक है। चिन्तन की गम्भीरता तथा विषय की बहुज्ञता आपके व्यक्तित्व की सर्वश्रेष्ठ विशेषता है। इस तरह से हम कह सकते हैं कि भट्ट जी का व्यक्तित्व मौलिक तथा युगापेक्षित व्यक्तित्व है।

महत्व- भट्ट जी अपने युग के सशक्त साहित्यकार थे। वे एक साथ निबन्धकार, पत्रकार, उपन्यासकार और आलोचक थे। उन्होंने अपने साहित्य-सृजन के द्वारा जो सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक चेतना प्रदान की वह सदैव मार्गदर्शिका के रूप में परवर्ती रचनाकारों हेतु कार्य करती रही है।

निबन्धों की विशेषताएँ

(1) सनानत धर्म के अनुयायी प्रयाग निवासी पं. बालकृष्ण भट्ट अपने समय के उच्चकोटि के साहित्यकार थे। उनकी गणना भारतेन्दु युग के साहित्यकारों में होती है।

(2) वे निबंधकार, पत्रकार तथा नाटककार थे। उन्होंने साधारण तथा गम्भीर दोनों विषयों पर निबंध लिखे हैं।

(3) साधारण विषयों में आँख, कान, नाक, बातचीत आदि पर आपके निबन्ध प्रसिद्ध हैं। उन्होंने सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं राष्ट्रीय विचारों से संबंधित कई विषयों पर निबन्ध लिखे हैं।

(4) उनके निबंधों में विचार तथा कल्पना का अद्‌भुत समन्वय मिलता है। साहित्य तथा कला की दृष्टि से आपके निबन्धों का विशेष महत्व है।

(5) अपने निबन्धों के कारण ही वे हिन्दी साहित्य में विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। उन्होंने उपन्यास भी लिखा है।

(6) उन्होंने 'हिन्दी प्रदीप' का सफलतापूर्वक सम्पादन किया था। कलिराज, रेल का विकट खेल, बाल विवाह, शिक्षादान आदि उनके कई नाटक हैं। भाषा की दृष्टि से आज भी इन नाटकों का महत्व है।

(7) भट्ट जी की भाषा के चार रूप हैं-संस्कृतगर्भित भाषा, ऊर्दू, फारसी मिश्रित भाषा, शुद्ध हिन्दी भाषा, मिश्रित भाषा।

(8) भटट्‌जी ने अपने भावात्मक या विचारात्मक निबन्धों को संस्कृतगर्भित भाषा में लिखा है। मस्ती के क्षणों में उन्होंने उर्दू, फारसी मिश्रित भाषा का प्रयोग किया है।

(9) शुद्ध हिन्दी भाषा भट्ट जी की प्रधान भाषा है। भटट् जी की मिश्रित भाष चुस्त तथा प्रवाहपूर्ण है।

(10) मुहावरों तथा कहावतों का प्रयोग भी भट्ट जी ने खूब किया है।

(11) भट्ट जी की शैली के प्रमुख चार रूप दिखाई देते हैं- वर्णनात्मक शैली, भावात्मक शैली, व्यंग्यात्मक शैली तथा विचारात्मक शैली।

(12) वर्णनात्मक शैली में भट्ट जी ने व्यावहारिक तथा सामाजिक विषयों का प्रतिपादन किया है। उनके उपन्यासों की शैली भी यही है।

(13) भावात्मक शैली ही भट्ट जी की वास्तविक शैली है। यही उनका प्रतिनिधित्व करती है। वे गद्य काव्य के प्रणेता हैं।

(14) व्यंग्य और हास्य को भट्ट जी ने व्यंग्यात्मक शैली द्वारा व्यक्त किया है।

(15) भट्ट जी के गम्भीर लेख विचारात्मक शैली में लिखे गये हैं। बातचीत, सम्भाषण, ज्ञान और भक्ति आदि निबन्ध इसी शैली के उदाहरण हैं।

महावीर प्रसाद द्विवेदी के कृतित्व एवं व्यक्तित्व का वर्णन

महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म सं.1921 एवं मृत्यु सं. 1995 में हुई। वे कान्य कुब्ज ब्राह्मण थे, पिता का नाम पं. रामसहाय दुबे था। उन्होंने सं. 1914 के प्रारंभ में प्रथम राष्ट्रीय आन्दोलन में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध विद्रोह किया। उनके पिता सेना में थे और सेना ने भी विद्रोह किया।

प्रारंभ में 18 वर्ष की अवस्था में उन्होंने 15 रु.मासिक की नौकरी की,फिर रेल्वे में 25 रु.मासिक पर नौकरी करने लगे। इसी समय उन्होंने अंग्रेजी, मराठी, गुजराती और उर्दू भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया।

इसी समय काशी नगरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई। उसी के तत्वावधान में 'सरस्वती' मासिक पत्रिका प्रारम्भ हुई। द्विवेदी जी सरस्वती में नियमित रूप से लिखने लगे। इस समय पत्रिका के सम्पादक थे बाबू श्यामसुन्दर दास- चूँकि श्यामसुन्दर दास अत्यन्त व्यस्त रहते थे अत: श्री चिन्तामणि घोष ने सरस्वती के सम्पादन का भार द्विवेदीजी को सौंपने का निश्चय किया। द्विवेदीजी उस समय झाँसी में डिस्ट्रिक्ट ट्रैफिक सुपरिटेंडेन्ट के कार्यालय में चीफ क्लर्क थे। उन्होंने यह कार्य करते हुए भी 'सरस्वती'का सम्पादन-भार सहर्ष उठाना स्वीकार कर लिया और कुछ दिनों के बाद रेल्वे की नौकरी त्यागकर स्वतंत्र रूप से 'सरस्वती'की सेवा में लग गये।

द्विवेदीजी झाँसी से कानपुर आ गये और वहीं से उन्होंने सं. 1960 से 'सरस्वती'का सम्पादन आरम्भ किया। इसके द्वारा उन्हें अपने विचारों को भी स्पष्ट रूप देने का अच्छा अवसर मिला। उन्होंनें लगभग 20 वर्ष तक 'सरस्वती' का सम्पादन किया, सं. 1978 में उन्होंने 'सरस्वती' से अवकाश ग्रहण किया पर संवत् 1986 तक वह बराबर उसके लिए लेख लिखते रहे। अपने सम्पादन-काल में उन्होंने कई नये लेखकों तथा कवियों को जन्म दिया और अपने परिश्रम,त्याग तथा विचारों से एक ऐसे युग का निर्माण किया जो हिन्दी-साहित्य के इतिहास में 'द्विवेदी युग' के नाम से प्रसिद्ध है। द्विवेदी जी में प्रतिभा के साथ-साथ परिश्रम करने की अद्‌भुत क्षमता थी। आलस्य तो उन्हें छू भी नहीं गया था। उनका सारा दिन अध्ययन और लिखने में ही व्यतीत होता था। द्विवेदी जी की हिन्दी सेवाएँ बड़ी महत्वपूर्ण थीं। उन्होंने हिन्दी-साहित्य के इतिहास में एक नवीन युग का आयोजन किया था। अत: हिन्दी-प्रेमियों ने हृदय खोलकर उनका सम्मान किया। सं. 1988 में काशी

की 'नगरी प्रचारिणी सभा' ने उन्हें हिन्दी का सर्वप्रथम 'आचार्य'मानकर सम्मानित किया। इसके पश्चात् उसने सं. 1990 के ज्येष्ठ मास के आरम्भ में उन्हें एक अपूर्व अभिनन्दन ग्रंथ भेंट किया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर उन्हें उसका सभापति भी मनोनीत किया गया, पर इस भार को उन्होंने स्वीकार नहीं किया। 'हिन्दी-साहित्य सम्मेलन'के कानपुर अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष तथा 'काशी नागरी प्रचरिणी सभा' के सभापति भी वह रह चुके थे। सम्मेलन ने भी उन्हें 'साहित्य वाचस्पति'की उपाधि देकर अपना गौरव बढ़ाया था।

द्विवेदीजी में जिस प्रकार साहित्य सेवा की भावना प्रबल थी, उसी प्रकार वह लोक-सेवा से भी प्रेरित थे। रेल्वे में नौकरी करते समय उन्होंने सैकड़ों व्यक्तियों की जीविका लगवा दी थी। 'सरस्वती'का सम्पादन भार ग्रहण करने पर भी उन्होंने इसका ध्यान रखा। गाँवों की दशा सुधारने में भी उनका पूर्ण सहयोग रहा। उनके प्रयास से ग्राम पंचायत का कानून पास हुआ। द्विवेदी जी का पारिवारिक जीवन सुखमय नहीं था। 'सरस्वती' का वरदान पाने पर भी वह कभी आर्थिक एवं पारवारिक चिन्ताओं से मुक्त नहीं हुए। उनकी पत्नी उन्हें 42 वर्ष की अवस्था में ही विधुर बनाकर सती लोक को प्रयाण कर चुकी थी, पिता पहले ही चल बसे थे। इसलिए अपने परिवार में वह अपनी माता के साथ रहते थे। उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया।

द्विवेदी जी का जीवन साहित्य सेवा का जीवन था। अपने विद्यार्थी-जीवन से ही वह सरस्वती के भक्त हो गये थे। यद्यपि उस समय उनकी शिक्षा अव्यवस्थित ही रही तथापि आगे चलकर उन्होंने अपने परिश्रम और अध्यवसाय से उसमें चार चांद लगा दिये थे। अपने गाँव में रहते समय उन्होंने रामचरित मानस और ब्रज-विलास का अच्छा अध्ययन किया था। हिन्दी के सैकड़ों कवित्त और सवैये भी उन्हें कण्ठस्थ थे। अपने पिता के साथ बम्बई में रहकर उन्होंने संस्कृत, अंग्रेजी, मराठी और गुजराती का भी अध्ययन किया था। इन भाषाओं के ज्ञान से उनमें कुछ लिखने का उत्साह उत्पन्न हुआ। सौभाग्य से ऐसे समय में उन्हें भारतेन्दु की 'कवि वचन सुधा पढ़ने को मिली। यह सं. 1942 की बात है। उस समय वह होशंगाबाद में रेल्वे की नौकरी कर रहे थे। होशंगाबाद में श्री हरिश्चन्द्र कुलश्रेष्ठ से उनका परिचय था। उन्हीं से उन्होंने हिन्दी पिंगल की शिक्षा ली और उन्हीं की देख-रेख में 'महिम्न' का हिन्दी गद्य और पद्य में अनुवाद किया। यहीं से उनकी रचनाओं का आरंभ होता है। इसके बाद उन्होंने भर्तृहरि के दो शतकों 'गीत गोविन्द'तथा गंगा लहरी का अनुवाद किया और 'ऋतु तरंगिणी'तथा 'देवी शातक'की रचना की। होशंगाबाद से झाँसी आने पर उनकी साहित्य साधना को और भी बल मिला। सं. 1942 से सं. 1948 तक उनकी छः कविता पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थीं। उन्होंने लालाजी के 'कुमारसंभव भाषा' और 'ऋतुसंहार भाषा' की बड़ी तीव्र आलोचना की। उनकी इन दोनों आलोचनाओं का हिन्दी जगत में बड़ा सम्मान हुआ। इससे प्रोत्साहित होकर सं. 1958 में उन्होंने 'हिन्दी कालिदास की समालोचन'पुस्तक-रूप में प्रकाशित की। इस पुस्तक ने उन्हें बहुत लोकप्रिय बना दिया। सं.1953से सं. 1960 तक उन्होंने जो कविताएँ कीं उनका एक संग्रह 'काव्य मंजूषा'के नाम से प्रकाशित हुआ। इस प्रकार वह धीरे-धीरे हिन्दी साहित्य साधना के क्षेत्र में आगे बढ़े और सं.1986 तक बराबर लिखते रहे। उनकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं।

1. **अनूदित ग्रन्थ-** द्विवेदीजी ने कई संस्कृत ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद किया। इन अनुवादों द्वारा उन्होंने एक ओर तो हिन्दी-साहित्य के स्तर को ऊँचा किया और दूसरी ओर उसे अंग्रेजी साहित्य की विभिन्न धाराओं के अन्धानुकरण से बचाया। उनके पद्य के अनुदित ग्रन्थों में विनय, विनोद, स्नेहमाला, बिहार वाटिका, ऋतुतरंगिणी और कुमार संभव सार, की गणना की जाती है। इनमें से प्रथम दो भर्तहरि के क्रमशः 'वैराग्यशतक' एवं श्रृंगार शतक के अनुवाद हैं। तीसरा 'गीत गोविन्द'और चौथा 'ऋतुसंहार'आदि के पद्यों के अनुवाद हैं। पाँचवां ग्रंथ 'कुमार संभाव'के प्रथम पाँच सर्गों का बोलचाल की भाषा में पद्यानुवाद है। उनके गद्य के अनूदित ग्रन्थों में गंगा-बहरी,वेकन विचार रत्नावली, भामिनी विलास, स्वाधीनता हिन्दी महाभारत, शिक्षा-शास्त्र, रघुवंश, कुमार सम्भव, 'मेघदूत'और'

किरातार्जुन 'का महत्वपूर्ण स्थान है। इनमें से पहली और तीसरी रचनाएँ जगन्नाथ पण्डितराज की हैं, दूसरी लार्ड बेकन के 36 निबन्धों का संग्रह है, चौथा जान स्टुअर्ट मिल की 'लिबर्टी'का अनुवाद है, पाँचवीं बंगला की पुस्तक का और छठी हर्बटे-स्पेन्सर के 'एजूकेशन'का अनुवाद है। 'शिव महिम्मनस्तोत्र 48' में गद्य और पद्य दोनों प्रकार की अनुदित रचनाएँ हैं।

2. **मौलिक काव्य ग्रन्थ-** द्विवेदी जी प्रधानत: कवि नहीं गद्य-लेखक थे। उन्होंने सं. 1922 से 1959 तक जो कविताएँ लिखीं उनका संकलन 'काव्य मंजूषा' में मिलता है। 'सुमन'इसी काव्य संग्रह का एक नवीन संस्करण है। 'विद्या विनोद,' 'देवी स्तुति शतक' तथा 'कविता कलाप'भी उनके स्वतंत्र काव्य संग्रह हैं। 'द्विवेदी काव्य माला में 'पं. देवीदत्त शुक्ल ने उनकी समस्त कविताओं का संग्रह किया है।

3. **मौलिक गद्य ग्रन्थ-** द्विवेदीजी के मौलिक गद्य-ग्रंथ अनेक विषयों से सम्बन्ध रखते हैं। इनमें आलोचना, निबन्ध, जीवनियाँ, चिकित्सा आदि सभी का स्थान है। उनके गद्य ग्रंथ हैं- 'नैषध चिरत चर्चा', 'नागरी', 'हिन्दी कालिदास की समालोचना', 'लाला सीताराम की रचनाओं की आलोचना', 'दार्शनिक परिभाषा शब्द कोश,"हिन्दी रीड की आलोचना,' नाट्य शास्त्र, 'जल चिकित्सा,"विक्रमाङ्कदेव-चरित्र चर्चा', 'हिन्दी भाषा की उत्पत्ति,' 'सम्पत्ति शास्त्र', 'कलिदास की निरंकुशता', 'शिक्षा,' 'प्राचीन पंडित और कवि,' ' वनिता-विलास,' 'औद्योगिकी,' 'रसज्ञरंजन,' 'कालिदास और उनकी कविता,' सुकवि संकीर्तन, 'वक्तृत्व कला,' 'अद्‌भुत आलाप,' 'साहित्य सन्दर्भ,' 'अतीत स्मृति,' 'आख्यायिका सप्तक,' 'कोविद-कीर्तन,' 'विदेशी विद्वान,' 'पुरावृत्त,' 'आलाचनांजलि,' 'प्राचीन चिन्ह,' 'लेखाज्जलि,' वैचित्र चित्रण, 'पुरातत्व प्रसंग,' 'साहित्य सीकर,"संकलन' और 'विचार विमर्श'। इनके अतिरिक्त अवध के किसानों की बरबादी, दृश्य दर्शन, 'चरित्र-चित्रण,' 'चरित्र चर्चा', विज्ञविनोद, 'साहित्यालाप,' 'वाग्विलास,' 'महिला मोद,' 'विज्ञानवार्ता,' आदि भी उनके ग्रन्थ हैं। उन्होंने 'वेणी संहार' नाटक का भी आख्यायिका के रूप में अनुवाद किया है। यह सं. 1970 की रचना है। 'टेलीग्राफी' उनकी अंग्रेजी भाषा में रचना है। 'सोहागरात'तथा तरुणोपदेश उनके अप्रकाशित ग्रंथ हैं। शिक्षा-सरोज के नाम से उनकी रीडरें हैं। उन्होंने 'जिला कानपुर का भूगोल 'भी लिखा था। इस प्रकार हम देखते हैं कि द्विवेदीजी की साहित्यिक कृतियाँ अत्याधिक हैं और विभिन्न विषयों पर हैं।

साहित्यिक दृष्टि से द्विवेदीजी का समय हिन्दी भाषा और शैली के संघर्ष का युग था। उस समय हिन्दी खड़ी बोली अपने पैरों पर खड़ी होकर चलना सीख रही थी। कभी वह थोड़ी दूर चलकर बैठ जाती थी और कभी लडखड़ा कर गिर पड़ती थी। लेखकों की अपनी-अपनी रुचि थी, अपनी -अपनी भाषा थी, अपनी-अपनी शैली थी। साधारण जनता में हिन्दी का प्रचार तो हो गया था, पर उसमें स्थायी साहित्य की रूपरेखा निर्धारित करने की कोई योजना नहीं थी। उस समय की साहित्यिक प्रगति निम्न प्रकार थी।

1. **हिन्दी खड़ी बोली की स्थिति-** द्विवेदीजी के आविर्भाव के समय भाषा की स्थिति अच्छी नही थी। उसमें अनेक अशुद्ध शब्दों का प्रयोग होता था और व्याकरण की उपेक्षा के साथ-साथ अनगढ़ शब्दों तथा आम्य-प्रयोगों का बाहुल्य था। प्रान्तीय शब्दों तथा ब्रजभाषा के प्रभाव से वह अभी मुक्त् नहीं हुई थी। शब्द-चयन शिथिल,असंगत और गंभीर विषयों के लिए अवांछनीय था। शब्दों में संयम और मर्यादा का अभाव था। भाषा में चुहुल तो थी पर भावों एवं विचारों के साथ पूर्ण साम्य न होने के कारण उसमें गंभीरता नहीं थी,शब्दों की अभिव्यंजना नहीं हो पाती थी। उसमें शक्ति नहीं थी,सौष्ठव नहीं था, शब्दों की परिष्कृत रुचि नही थी,गंभीर भावों को वहन करते समय उसके पैर लड़खड़ा जाते थे। कविता के लिए तो वह सर्वथा अशक्त थी। उसमें संगीत और लय का संविधान नहीं हो पाता था।

2. **हिन्दी गद्य-शैली की स्थिति** - भाषा की स्थिति अव्यवस्थित होने से शैली की स्थिति भी असंतोषजनक थी। उसका रूप् अभी अस्थिर था। उसमें स्वाभाविकता, प्रवाह, गति और आकर्षण का सर्वथा अभाव था। इस दिशा में लेखकों की रुचि- वैचित्र्य अधिक काम करती थी। प्रत्येक लेखक स्वतंत्र था। वाक्यों की रचना व्याकरण संगत नहीं थी। लम्बे वाक्य लिखना विद्वता का सूचक समझा जाता था। ऐसे वाक्यों में प्राय: मूल भावों का पता लगाना कठिन हो जाता था। छोटे और गंभीर भावपूर्ण वाक्य कम लिखे जाते थे। शैली में कृत्रिमता और प्रयत्न की मात्रा अधिक रहती थी। विचारों का क्रम भी अव्यवस्थित और असंयत रहता था। अनुच्छेद लम्बे और आकर्षणहीन होते थे। एक ही विचार को बार-बार दोहराने से विषय की गम्भीरता नष्ट हो जाती थी। विराम चिन्हों का प्रयोग कम होता था। शैली के प्राय: तीन रूप थे (1)शिवप्रसाद की फारसी-अरबी शब्द प्रधान-शैली, (2)राजा लक्ष्मणसिंह की संस्कृत तत्सम् शब्द प्रधान शैली और (3)भारतेन्दु की मध्यवर्त्ती शैली।

3. **हिन्दी-कविता की स्थिति-** भारतेन्दुकाल में गद्य शैली का रूप तो स्थिर हो चला था, पर खड़ी बोली में कविता करने की ओर तत्कालीन कवियों का ध्यान नहीं था। काव्य के क्षेत्र में अधिकांश ब्रजभाषा का ही प्रयोग होता था।

4. **समाचार पत्रों की स्थिति-** द्विवेदीजी ने सं. 1960 में जब 'सरस्वती'के सम्पादन का भार ग्रहण किया तब हिन्दी-समाचार पत्रों की स्थिति साधारण थी। उस समय 'भरत मित्र', 'भारत जीवन,' 'बिहार बन्धु,"हिन्दी बंगवासी," हित वार्ता," आदि साप्ताहिक पत्र निकलते थे। केवल 'हिन्दोस्तान'एक दैनिक पत्र था। 'हिन्दी प्रदीप' 'ब्राह्मण,"सुदर्शन,"छत्तीसगढ़-मित्र,'आदि मासिक पत्र थे। 'रसिक वाटिका' कविता-प्रधान पत्र था और उसमें ऐसी कविताएँ प्रकाशित होती थीं जिनमें प्राय: समस्यापूर्ति की जाती थी।

5. **साहित्य के अन्य अंगों की स्थिति** - साहित्य के अन्य अंगों की स्थिति भी अच्छी नहीं थी। काव्य साहित्य संतोषजनक था, पर उसमें नवीन विषयों का प्रवेश अभी नहीं हुआ था। उपन्यास और नाटक भी लिखे गए थे, पर उनमें तत्सम्बन्धी कलाओं का विकास नहीं हुआ था। उपन्यास प्राय: उद्देश्य-प्रधान,रस-प्रधान, वस्तु-प्रधान, चरित्र-प्रधान, ऐतिहासिक, तिलस्मी अथवा जासूसी होते थे। कहानियाँ अपेक्षाकृत कम लिखी जाती थीं। निबन्ध अधिक लिखे गये थे। गद्य-काव्य का भी सूत्रपात हुआ था। इतिहास, जीवन-चरित, व्याकरण तथा कोश के क्षेत्र अभी अछूते थे। समालोचना के क्षेत्र में कुछ कार्य हुआ था,पर वह न होने के समान ही था।

विविध भाषाओं की साहित्यिक प्रवृत्तियों से परिचित होने के कारण साहित्य- क्षेत्र में उनका व्यक्तित्व बेजोड़ था। अपने समय में वह कुशल साहित्यिक नेता थे। उनके नेतृत्व में राजनीतिक काट-छाँट नहीं था। जिस कार्य को वह अपने हाथ में लेते थे, उसे वह बड़ी ईमानदारी और लगन से पूरा करते थे। वह अपने नेतृत्व में ईमानदार थे। वस्तुत: भाषा तथा भाव के प्रति उनकी ईमानदारी ने ही उन्हें ऊँचा उठाया और वह सफलता पूर्वक हिन्दी-साहित्य का नेतृत्व कर सके। उन्होंने अपने समय के सभी लेखकों, सम्पादकों तथा साहित्कारों को अपने व्यक्तित्व से प्रभावित किया। उनमें हठ नहीं था। अपनी आलोचना वह उदारतापूर्वक स्वीकार करते थे और अपने विरोधियों की भी वह सराहना करते थे। वह निष्पक्ष थे। उनके जीवन का महान् लक्ष्य था- हिन्दी साहित्य का स्तर ऊँचा करना और उसे विविध विषयों से विभूषित करना।

द्विवेदी जी के साहित्यिक जीवन का दूसरा अध्याय सं. 1960 से आरंभ हुआ और तब से वह प्रत्यक्ष रूप से साहित्य के सम्पर्क में आये। यह कार्य उनकी प्रतिभा के अनुकूल था। इसलिए इस पद से उन्होंने हिन्दी साहित्य के उत्थान एवं परिवर्धन में महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने हिन्दी

साहित्य को क्या दिया और उस दान में उनकी मौलिक प्रतिभा का कितना अंश है, इस बात पर विचार करने के लिए हमें उनकी निम्नलिखित सेवाओं पर विचार करना होगा-

1. **खड़ी बोली का परिष्कार-** हिन्दी साहित्य में द्विवेदीजी के आविर्भाव के पूर्व हिन्दी खड़ी-बोली की दशा यह थी कि भाषा-व्यवहार में किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं था। प्रत्येक लेखक की अपनी-अपनी रुचि थी, अपनी-अपनी भाषा थी। हिन्दी क्षेत्र में कोई प्रतिभा सम्पन्न आलोचक भी नहीं था। लेखक अपने लेखों के दोष नहीं देख पाते थे। ऐसी दशा में द्विवेदीजी ने अन्यत्र सतर्कता से भाषा का संस्कार किया। सबसे पहले उन्होंने तत्कालीन भाषा में व्याकरण सम्बन्धी दोषों की ओर आलोचना द्वारा लेखकों का ध्यान आकृष्ट किया और उन्हें व्याकरण के अनुशासन में रहने के लिए बाध्य किया।

2. **गद्य शैली का संस्कार-** भाषा की भाँति द्विवेदीजी को शैली के परिमनार्जन में भी विशेष परिश्रम करना पड़ा। जब उन्होंने लेखनी उठायी थी तब गंभीर विषयों की शैलियाँ निश्चित नहीं हुई थीं। द्विवेदीजी ने समस्त त्रुटियों का परिमार्जन एवं संस्कार किया। उन्होंने विषय के अनुसार शैली की रूप-रेखा निर्धारित की और उसमें ओज, प्रसाद तथा माधुर्य की व्यवस्था की।

3. **सम्पादन कला का पुनरुद्धार-** उस समय समाचार पत्र थे, सम्पादक भी थे, पर उनमें सम्पादक की योग्यता नहीं थी। 'भारतेन्दु काल' से समाचार पत्रों की जो बंधी-बंधाई परम्परा चली आ रही थी उसी का निर्वाह हो रहा था। सम्पादकों का कोई आदर्श नहीं था और यदि कुछ था भी तो उसकी पूर्ति के साधनों से उनका परिचय नहीं था। ऐसी दशा में तत्कालीन हिन्दी जगत् को एक कुशल सम्पादक की भी आवश्यकता थी। द्विवेदीजी ने इसकी भी पूर्ति की।

5. **साहित्य के अन्य अंगों का प्रसार-** भाषा तथा शैली के संस्कार के साथ-साथ द्विवेदीजी का ध्यान विषय-संग्रह की ओर भी गया। उनके पूर्व साहित्य के कतिपय महत्वपूर्ण अंग रिक्त थे। 'सरस्वती' का कार्य भार ग्रहण करते ही उन्होंने हिन्दी का विषयवार-निरीक्षण किया। इसमें उन्हें यह ज्ञात हो गया कि हिन्दी को 'क्या ' चाहिए और उसकी 'कैसे' पूर्ति की जाय। इस प्रकार 'क्या' ने उन्हें 'कैसे' की ओर उत्प्रेरित किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि द्विवेदीजी ने अपने साहित्यिक जीवन के पन्द्रह वर्षों में सम्पादन, कला-जीवन चरित्र, यात्रा, समालोचना, व्याकरण, कोश, अर्थ, शास्त्रज्ञ विज्ञान, समाजशास्त्र, दर्शन शास्त्र, धर्म, साहित्य, भूगोल तथा इतिहास आदि कई विषयों को हिन्दी-साहित्य में स्थान दिया और उन विषयों पर लिखने के लिए अन्य लेखकों का ध्यान आकृष्ट किया। इससे हिन्दी का स्तर बहुत ऊँचा हो गया।

द्विवेदीजी की शैली मुख्यत: तीन रूपों में हमारे सामने आती है- (1)परिचयात्मक, (2) आलोचनात्मक और (3) गवेषणात्मक। इन तीनों रूपों में द्विवेदीजी अपनी शैली के स्वयं निर्माता हैं। उन पर किसी का प्रभाव नहीं है। उन्होंने अपने शब्दों और वाक्यों को पहले अपनी मानसिक तुला पर तौलकर भाव और विचारों के साँचे में ढाला और तब उन्हें व्यक्त किया है। उनकी भिन्न-भिन्न शैलियाँ इस प्रकार हैं-

(1) **परिचयात्मक शैली-** इस शैली का प्रयोग द्विवेदीजी ने अपने उन निबन्धों में किया है जो समय की दृष्टि से ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी होते थे। ऐसे विषयों पर पहले-पहल उन्होंने ही लिखना आरंभ किया। वह खोज- खोजकर नवीन विषयों का ज्ञान संचय करते रहते थे और उन्हें साधारण जनता तक पहुँचाने के लिए सरल से -सरल भाषा का प्रयोग करते थे। उनके ऐसे लेख अंग्रेजी, बंगला, मराठी गुजराती आदि भाषाओं के पत्रों में प्रकाशित होने वाले लेखों का सारांश हुआ करते थे, पर इनमें उनकी मौलिकता बराबर बनी रहती थी।

2. **आलोचनात्मक शैली**- इस शैली में द्विवेदीजी के तीन उद्देश्य निहित थे- (1) भाषा और साहित्य में प्रचलित कुरीतियों को दूर करना, (2) अन्य भाषा-प्रेमियों के हृदय में हिन्दी के प्रति अनुराग उत्पन्न करना और (3) हिन्दी के क्षेत्र में स्वतंत्र बुद्धि से काम लेने वाले लेखकों को मुँह तोड़ उत्तर देना। इन तीनों उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उन्होंने आलोचनात्मक शैली के अन्तर्गत तीन शैलियों का आश्रय लिया। (1) आदेशपूर्ण आलोचनात्मक शैली में उनके लेख प्रथम उद्देश्य की पूर्ति करने वाले होते थे। इस शैली में उनका अध्यापक का सा व्यक्तित्व होता था। भाषा और साहित्य के विषय में मनमानी करने वालों का वह इसी शैली द्वारा पथ-प्रदर्शन करते थे। इसलिए उनकी यह शैली परिचयात्मक शैली की अपेक्षा गंभीर और ओजपूर्ण होती थी। इसमें वह शक्तिशाली शब्दों द्वारा अपने विषय का स्थिरतापूर्वक प्रतिपादन करते थे। भाषा की दृष्टि से इसमें वह संस्कृत तथा उर्दू के प्रचलित शब्दों का अपनी विचारधारा के अनुकूल खुलकर प्रयोग करते थे, पर वाक्य-विन्यास हिन्दी का ही होता था। यही द्विवेदीजी की प्रधान शैली थी। (2) ओजपूर्ण आलोचनात्मक शैली में उनके उन निबन्धों की गणना की जाती है, जिनमें उनका तथ्यातथ्य निरूपक रूप नहीं रहता था। इस शैली में लिखे गए उनके लेख प्राय: साहित्यिक होते थे। इसलिए इसमें उनकी भाषा की चुस्ती देखने योग्य होती थी। (3) व्यंगपूर्ण आलोचनात्मक शैली- द्वारा उन्होंने अपने तीसरे उद्देश्य की पूर्ति की थी। हिन्दी-साहित्य तथा तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन में मनमानी करने वालों पर जब उनकी आदेशपूर्ण शैली का प्रभाव नहीं पड़ता था तब वह इस शैली का प्रयोग करते थे। इस शैली में उनकी भाषा व्यावहारिक होती थी। इसमें उछल-कूद, वाक्य-सरलता और लघुता के साथ-साथ भाव व्यंजना की प्रणाली भी सरल थी। व्यंग्य, कटाक्ष, फटकार, हास्य, और विनोद से यह शैली परिपूर्ण थी।

(3) **गवेषणात्मक शैली**- इस शैली में उन्होंने गवेषणात्मक लेख लिखे हैं। इसमें न तो परिचयात्मक शैली की सरलता और बोधगम्यता है और न आलोचनात्मक शैली का आदर्श, ओज तथा व्यंग्य । इसमें उनकी चिन्तनशील तथा दार्शनिक बुद्धि और प्रतिभा का चमत्कार अवश्य है।

साहित्य में स्थान

हिन्दी साहित्य में आचार्य द्विवेदीजी का स्थान निश्चित करते समय हमें उनके दो रूपों पर विचार करना पड़ता है। उनका प्रथम और प्रमुख रूप 'पथ प्रदर्शक'का और दूसरा विशुद्ध 'साहित्य रचनाकार' का है। अपने इन दोनों रूपों में वह महान् हैं। पथ-प्रदर्शक की दृष्टि से वह भाषा के कुशल अध्यापक, ठोस आलोचक और आदर्श निरंकुश शासक थे। जिस प्रकार एक कुशल अध्यापक अपने देश के भावी नागरिकों के अव्यवस्थित जीवन को काट-छाँट कर उसे सुरुचिपूर्ण रूप-रेखा प्रदान करने में अपने कर्तव्य का भार सहर्ष वहन करता है उसी प्रकार द्विवेदी जी ने भावी लेखकों और कवियों को जन्म देने और उनकी कला एवं प्रतिभा को चमकाने में अकथनीय परिश्रम किया है। विशुद्ध साहित्य-रचनाकार की दृष्टि से द्विवेदीजी सम्पादक, आलोचक, निबन्धकार, कवि और शैली-निर्माता थे। अपने इन विविध रूपों में उन्होंने हिन्दी की जो सेवा की वह बेजोड़ है। वह उच्चकोटि के पत्रकार थे। हिन्दी में सबसे पहले उन्होंने सम्पादन कला का स्तर ऊँचा किया और उसमें नवीन शैलियों का प्रादुर्भाव किया। लेखों की काट-छाँट और उसे क्रम देने में उनका परिश्रम अत्यंत श्लाघनीय था। अपने इसी प्रकार के परिश्रम से उन्होंने कई सम्पादकों, कवियों और निबन्धकारों को जन्म दिया। आलोचना उनका नित्य का कर्तव्य कर्म था। वस्तुत: यदि देखा जाय तो उनका समस्त जीवन आलोचनामय था। इसमें सन्देह नहीं कि जैसी संयत, सुव्यवस्थित और मनोवैज्ञानिक आलोचना आज हम पसन्द करते हैं,वैसी उनकी आलोचना नहीं होती थी, पर वह थी समय की आवश्यकता के अनुसार।

निबन्धकार के रूप में उन्होंने हिन्दी को विविध विषयों से विभूषित किया। उन्होंने ऐतिहासिक,सामाजिक, वैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक निबन्धों द्वारा हिन्दी निबन्ध साहित्य को नयी दिशा की ओर अग्रसर किया और उनके द्वारा नयी शैलियों को प्रतिस्थापित किया। उनके इस प्रकार के निबन्धों में भाषा, भाव और विषय की नवीनता के साथ-साथ भारत के प्राचीन गौरव की स्पष्ट झलक दृष्टिगोचर होती है। उनके निबन्ध अधिकतर सामायिक समस्याओं के सम्बन्ध में होते थे। इसलिए साहित्य की दृष्टि से उनमें स्थायित्व का अभाव होता था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि द्विवेदी जी अपने दोनों रूपों में महान् थे। वह एक में अनेक और अनेक में एक थे। उनकी कार्य शैली संतुलित, उनका अध्ययन गंभीर, उनकी योग्यता बेजोड़ और उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में उनका आविर्भाव सामयिक और क्रमिक था। हिन्दी के वह 'जान्सन'थे। दोनों के व्यक्तित्व समान थे। अंग्रेजी साहित्य यदि डॉ. जान्सन की सेवाओं से ऊँचा उठा है तो हिन्दी-साहित्य द्विवेदीजी की नि:स्वार्थ सेवा विश्व की भाषाओं में अपना गौरवपूर्ण स्थान बना सका है।

हिंदी निबन्ध-साहित्य में शुक्लजी का स्थान

हिंदी निबन्ध साहित्य के इतिहास में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एक युगान्तकारी व्यक्तित्व लिए प्रकट हुए। उनसे पूर्व प्राय: सभी विषयों पर निबन्ध लिखे जा चुके थे, परन्तु जिस प्रकार के निबंधों की रचना शुक्लजी ने की, उस प्रकार के निबंध उनके पूर्ववर्ती निबंधकार न लिख पाये। शुक्लजी ने निबन्ध के स्वरूप, शैली और आदर्श को दिशाबोध दिया। उनके द्वारा लिखे गये निबंधों का संग्रह 'चिन्तामणि' तक निबंधकारों पर दृष्टिपात किया जाये तो यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि उनके जैसे मौलिक चिन्तक और निबन्धकार एक दो ही थे, किन्तु निबंध लेखन की मात्रा की दृष्टि से उनके समकक्ष कम ही आते हैं। बाबू गुलाबराय ने लिखा है-

"आचार्य शुक्ल के निबन्ध क्षेत्र में पदार्पण करने से निबन्ध साहित्य में एक नया जीवन आया। द्विवेदी युग में विषय विकार और परिमार्जन तो पर्याप्त मात्रा में हुआ किन्तु उस काल में उतना विश्लेषण और गहराई में जाने वाली प्रवृत्ति उत्पन्न न हो सकी।"

शुक्लजी के भावों और मनोविकारों पर लिखे निबंध हिंदी निबंध साहित्य की अनुपम भेंट है। उनसे पूर्व बालकृष्ण भट्ट ने आत्मनिर्भरता, प्रतापनारायण मिश्र ने मनोयोग तथा माधव प्रसाद मिश्र ने घृति और क्षमा जैसे विषयों पर निबन्ध लिखे थे। जहाँ तक इन लोगों के द्वारा विषय के प्रतिपादन का प्रश्न है ये लोग भावों पर दृष्टिपात करके रह गये। उन भावों की गहराई में नहीं गए। इसके विपरीत शुक्लजी ने भावों तथा मनोविकारों के व्यावहारिक और सामाजिक दोनों पक्षों को समान महत्व देकर समाज पर हुई प्रतिक्रिया का भी सूक्ष्म विवेचन किया। इस प्रकार मनोविज्ञान की एक नई मान्यता को साहित्य के निकट ला दिया। इन भावों का सूक्ष्म एवं मनोहारी वर्णन उनसे पूर्ववर्ती निबन्धकार करने में असमर्थ रहे।

भारतेन्दु युग के निबन्धकारों में निबन्धोचित स्वच्छन्दता तो है पर वे एकांगी है। मिश्र जी के निबन्धों में स्वच्छन्दता है तो गुप्तजी की शैली व्यंग्य-प्रधान हो गई है और भट्ट जी की शैली तो उपदेशक वाली बन जाती है। द्विवेदी युग के निबन्धकारों में अध्यापक पूर्णसिह सर्वाधिक प्रसिद्ध रहे। वे एक सहृदय और भावुक निबन्धकार हैं तथा उन्होंने एक नई लय और गति के साथ निबन्धों की परम्परा को नवीन मानवतावादी पथ की ओर धकेल दिया। उनमें भावों को मूर्त और सजीव रूप देने की अद्‌भुत क्षमता थी।

शुक्लजी के परवर्ती युग में विषय-वैविध्य का प्रभाव रहते हुए भी उसमें समालोचना-साहित्य की बहुलता रही। प्रगतिवादी लेखकों में डॉ. रामविलास शर्मा आदि के निबंधों में तीखे व्यंग्य तथा अत्यधिक स्पष्टवादिता का समावेश मिलता है। नन्ददुलारे वाजपेयी तथा डॉ. नगेन्द्र के साहित्यिक

निबंध समालोचनात्मक निबंधों के अधिक निकट लगते हैं। शान्तिप्रिय द्विवेदी के निबंधों में भावुकता का आग्रह दिखाई पड़ता है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का निबंध साहित्य उत्कृष्ट है। उनकी भाषा शैली में औदात्य का गुण है। उनके निबन्ध समीक्षात्मक तथा व्यक्तित्व प्रधान कोटि के हैं। उनमें शास्त्रीयता और विनोदप्रियता का अद्‌भुत मणिकांचन का संयोग दिखलाई पड़ता है। उनकी शैली समर्थ है और वह शुक्लजी के अधिक निकट है। इनके चिंतन पर समन्वयवाद की छाप है, इस कारण शुक्लजी की शैली के विचार गाम्भीर्य तथा सजग दृष्टा वाली बात नहीं आ पाई। जहाँ आचार्य वाजपेयी का प्रश्न है वे आलोचक पहले हैं निबन्धकार बाद में। उन्होंने अपने निबन्धों में काव्य-कृतियों की समालोचना लिखी है या साहित्यिक-समस्या पर विचार किया है। डॉ. नगेन्द्र का साहित्य भी उनकी बहुमुखी प्रतिभा, विचारों के औदात्य तथा शैली के परिष्कार की दृष्टि से शुक्ल जी के निकट आ सकता है। नगेन्द्र जी के बारे में लोगों का विचार है कि वे पाश्चात्य साहित्य का अवलम्ब ले अपनी विद्वता से पाठक को आतंकित करना चाहते हैं। इन सब बातों के होते हुए भी एक सबसे बड़ी बात यह है कि आचार्य शुक्ल ने हिन्दी निबन्ध साहित्य रूपी जिस राजमार्ग को प्रशस्त किया उस पर धड़ल्ले से परवर्ती निबंध लेखक बढ़ रहे हैं। आचार्य शुक्ल ने अपने प्रयत्नों से हिंदी निबंध साहित्य को जिस शीर्षस्थ पर पहुँचा दिया है वहाँ तक अन्य लोग नहीं पहुँचे हैं। इस दृष्टि से शुक्लजी का हिन्दी निबंध साहित्य में स्थान अप्रतिम है।

शुक्ल जी का निबंधकार रूप निश्चय ही एक गम्भीर विचारक, सशक्त शैलीकार तथा सूक्ष्म विश्लेषण का मिला-जुला रूप है। उनकी अद्‌भुत प्रतिभा के रूप में हिंदी साहित्य को एक आदर्श निबंध लेखक मिला। उनके निबन्धों में विषय और भाषा शैली की दृष्टि से कुछ ऐसी विशेषताएं निहित हैं जो हिंदी निबन्ध साहित्य में उन्हें शीर्षस्थ स्थान पर स्थापित करने में सहायक होती हैं। ये विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

1. शुक्लजी ने विचारात्मक निबन्ध लिखे हैं। इसके अर्न्तगत सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों ही प्रकार के निबंध आ जाते हैं। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि "शुद्ध विचारात्मक निबंधों का चरम उत्कर्ष वही कहा जा सकता है, जहाँ एक-एक वाक्य किसी सम्बद्ध विचार खण्ड के लिए हो। शुक्लजी ने स्वयं इस विवादास्पद प्रश्न को विद्वानों के लिए खुला छोड़ा। उन्होंने चिंतामणि के निवेदन के अर्न्तगत स्वयं लिखा है- "इस बात का निर्णय में विज्ञ पाठकों पर छोड़ता हूं कि निबंध विषय प्रधान है या व्यक्ति प्रधान "कालान्तर में सभी अनुसंधान कर्त्ताओं तथा विचारों ने शुक्लजी के निबन्धों को विचारात्मक कोटि का माना है।

2. भाव और विचार सम्बन्धी शुक्लजी के निबंध विश्व निबंध साहित्य की महत्तम उपलब्धि हैं। भारतेंदु युगीन लेखक तथा पाश्चात्य निबंध लेखकों के निबंध उनके ऊपर नहीं हैं। कारण, प्रतिपाद्य विषय की तह तक पहुँचने की प्रवृत्ति, सूक्ष्म निरीक्षण, दार्शनिक चिंतन तथा पूर्व पश्चिम के विचारों का अद्‌भुत संयोग, इनके मननशील व्यक्तित्व का अंग रही है।

3. इन निबन्धों में व्यक्तित्व और विषय वस्तु का अद्‌भुत समन्वय दृष्टिगोचर होता है। डॉ. जयचन्द्रराय के विचार अवलोकनीय हैं इनमें लेखक का व्यक्तित्व भले ही उद्‌भासित हो गया हो, किंतु उसका प्रक्षेपण इतना अधिक नहीं हुआ कि विषय विवेचन को गौणता प्राप्त हो गई है। पाठक को प्रस्तुत विषय की विचारणा में ही डूबे रहने का अवसर मिलता है। लेखक के अप्रत्यक्ष व्यक्तित्व के साथ घनिष्ठता बढ़ाने का संयोग उसे कम ही मिल पाता है।

4. निबंधों का संघटित विचार, परम्परा, भाषा में कसावट तथा विचारों में गाम्भीर्य, औदात्य तथा प्रौढ़ता है।

5. निबंधों में सामाजिक आदर्श, लोक मंगल की भावना, नीति तत्व, मानवतावादी सिद्धांतों की व्याख्या मिलती है। इनमें शुक्लजी दृढता, आत्मविश्वास तथा निर्भीकता के साथ समाज विरोधी घातक तत्वों की भर्त्सना करते दिखाई पड़ते हैं।

6. शुक्लजी का अभिव्यंजना पक्ष अपूर्व है, उसमें मौलिकता और नवीनता भी है। जायसी को लोगों ने तभी जाना जबकि उन्होंने जायसी ग्रंथावली प्रकाशित करवाई।

7. शुक्लजी के निबंधों में हास्य-व्यंग्य एवं विनोद का समावेश हुआ है।

8. निबंध में भाषा-शैली का गाम्भीर्य औदित्य और परिष्कार देखते ही बनता है। कहीं शब्द भंडार की वृद्धि करने के लिए अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी पर्याय घड़े हैं तो कहीं अंग्रेजी, उर्दू के शब्दों ने भाव और भाषा में अक्रता उत्पन्न की है। भाषा में यथास्थान मुहावरों और लोकोक्तियों का भी प्रयोग किया है।

9. शुक्लजी ने अपने निबंधों में विश्व-साहित्य की विभिन्न समस्याओं पर विचार किया है और यथास्थान भारतीय काव्य शास्त्र से उसकी तुलना की है। उन्होंने जिस विषय को भी लिया उस पर अन्तिम निर्णय दे दिया। कविता क्या है जैसे विषय पर भारतीय और पाश्चात्य साहित्यकार अनेक बार लिख चुके थे पर शुक्लजी ने लेखनी उठाई और उसे नवीन बना दिया।

10. शुक्लजी के निबंधों पर गम्भीरता का आरोप लगाया जाता है किंतु इस पर विचार किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका दृष्टिकोण वस्तुवादी है। वे तर्कशील एवं चिंतनशील हैं। उनका दृष्टिकोण सामाजिक है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उनके बारे में लिखा था- शुक्लजी प्रभावित करते हैं, नया लेखक इनसे डरता है, पुराना घबराता है, पंडित सिर हिलाता है।

आचार्य शुक्ल के निबंध हिंदी साहित्य की चिर-सम्पत्ति हैं। बाबू गुलाबराय के शब्दों में "यह बात निर्विवाद है कि गद्य साहित्य की और विशेषकर निबंध साहित्य की प्रतिष्ठा बढ़ाने में शुक्लजी अद्वितीय हैं। इस नाते हम उनको युग का निर्माता भी कहें तो कुछ अनुचित न होगा।"अपनी मौलिक उद्भावनाओं और बलवती शैली के कारण शुक्लजी निबंध-क्षेत्र के एकमात्र अधिपति हैं। इसमें संदेह नहीं है कि हिंदी साहित्य को अभी तक शुक्ल जैसा दूसरा श्रेष्ठ निबंधकार नहीं मिल सका है। अपने मौलिक चिंतन और विवेचना शक्ति के कारण शुक्लजी आज भी हिंदी साहित्य में मूर्धन्य स्थान पर हैं।

'काव्य में लोक-मंगल की साधनावस्था'

आलोच्य निबन्ध में शुक्लजी ने काव्य में लोक-मंगल की साधनावस्था और सिद्धावस्था का विवेचन किया है। सत्, चित् और आनन्द-तीन स्वरूपों में काव्य भक्ति के ही समान आनन्द स्वरूप को लेकर चलता है। इस आनन्द की अभिव्यक्ति की भी साधनावस्था और सिद्धावस्था दो अवस्थाएं होती हैं। जिस प्रकार शिशिर प्रताड़ित वनस्थली में बसन्तश्री और माधुरी प्रकट होती है, उसी प्रकार लोक की पीड़ा के मध्य में लोक-मंगल की आनन्द-विधायिनी कला प्रकाशित होती है। काव्य में कुछ कवि अपनी रुचि के अनुसार सिद्धावस्था को ग्रहण कर हर्षोल्लास, माधुर्य, सुषमा आदि का चित्रण करते हैं, जैसा कि सूरदास ने किया है। कुछ कवि साधनावस्था को ग्रहण कर पीड़ा, अन्याय व अत्याचार के दमन की ओर उन्मुख शक्ति को काव्य का आश्रय बनाते हैं, जैसाकि गोस्वामी तुलसीदास ने अपने काव्य में किया है। इस प्रकार काव्यों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) *आनन्द की साधनावस्था के काव्य।*

(2) *आनन्द की सिद्धावस्था अर्थात् उपभोग पक्ष को लेकर चलने वाले काव्य।*

आनन्द की साधनावस्था को लेकर चलने वाले काव्यों में भक्ति-काव्य आता है। यथार्थ में कला की आवश्यता दोनों ही प्रकार के काव्यों में होती है। साधनावस्था को लेकर चलने वाला काव्य भी यदि कला-विहीन है, तो वह हृदय पर स्थायी प्रभाव डालने में सक्षम नहीं होगा। वह न तो पाठकों को रसानुभूति करा सकेगा और न साधारणीकरण ही कर सकेगा। रामायण, महाभारत, रघुवंश, शिशुपाल वधि, किरातार्जुनीयम् , रामचरितमानस, उत्तर-रामचरित, पृथ्वीराज रासो, हम्मीर रासो, छत्रप्रकाश, आल्हा, भूषण का वीररसपूर्ण काव्य इसी क्षेत्र में आता है। सिद्धावस्था अथवा उपभोग पक्ष को लेकर चलने वाले काव्य में भी कवि माधुर्य-सुषमा और आनन्दोल्लास का ही चित्रण करते हैं। आर्यासप्तशती, अमरुकशतक, गीत-गोविन्द, सूरसागर, बिहारी सतसई आदि आनन्द की सिद्धावस्था के काव्य हैं।

जब धर्म और मंगल की ज्योति अधर्म और अमंगल की घटा फाड़ती हुई निकलती है, तो जन-जन का हृदय उसकी ओर आकर्षित हो जाता है। उस ज्योति में जहाँ कुलिश की कठोरता होती है, वहाँ कुसुम की कोमलता भी। कवि जिस अन्याय, अत्याचार और उत्पीड़न का चित्रण करता है, उसके भीतर लोक-मंगल की आनन्द-विधायिनी आभा प्रतिबिम्बित होती है। अन्याय; अत्याचार और अधर्म के विनाश के लिए जो प्रयत्न होता है, उस प्रयत्न का एक विशिष्ट सौन्दर्य है। यह प्रयत्न अन्त में सफल हो चाहे असफल, परन्तु उसमें विशेष सौन्दर्य प्रस्फुटित होता है।

प्राय: कवियों ने मंगल और अमंगल के द्वन्द्व में मंगल की, धर्म और अधर्म के द्वन्द्व में धर्म की एवं न्याय और अन्याय के द्वन्द्व में न्याय की विजय दिखाई है, कुछ विद्वानों की दृष्टि में यह प्रवृत्ति उपदेशात्मक और अस्वाभाविक है। यथार्थ में कवि उपदेशक नहीं होता। वह तो अच्छे कर्म का अच्छा और बुरे कर्म का बुरा परिणाम सामने लाकर मानव-वृत्तियों का परिष्कार करता है। इस प्रकार बुरे कर्मों का पराभव देखकर मनुष्य की वृत्ति सत्य, धर्म और न्याय की ओर स्वयं ही उन्मुख हो जाती है। सत्पात्र का कर्म-सौन्दर्य मनुष्य को प्रभावित करता है और वह उसे देखकर आनन्द-विभोर हो जाता है।

काव्य में मंगल-विधायिनी शक्ति को कर्म-सौन्दर्य के साथ रूप-सौन्दर्य भी प्रदान किया जाता है। राम और कृष्ण हमारे यहाँ युग-युग से अपने कर्म-सौन्दर्य से जन-मानस को मुग्ध करते रहे हैं। महाकवि इस कर्म-सौन्दर्य और रूप-सौन्दर्य का सन्तुलित समन्वय अपने काव्य में करते हैं।

मनुष्य में कोमलता के साथ कठोरता, मृदुलता के साथ तीक्ष्णता रहती है। परन्तु यह कठोरता और तीक्ष्णता आनन्दकारी ही होती है, जिसके मूल में लोकमंगल का पुनीत आदर्श रहता है। पाठक राम को रावण के प्रति क्रोध प्रकट करते देखकर स्वयं भी क्रोध में अभिभूत हो जाता है। परन्तु राम के प्रति रावण के अभिव्यक्त क्रोध में विरक्ति और घृणा का अनुभव करता है। इस प्रकार लोक-मंगल में प्रदत्त सत्पात्र का क्रोध और घृणा भी रसानुभूति का स्रोत बन जाती है, क्योंकि उसके मूल में धर्म और मंगल होता है।

लोक-मंगल का विधान करने वाले मानव हृदय के अनन्त भावों में से केवल दो ही भाव हैं और वे हैं-'करुणा' और 'प्रेम'। करुणा का भाव जहाँ बाह्य रक्षा की ओर ले जाता है, वहाँ प्रेम रंजन की ओर अग्रसर करता है। प्रेम में प्रधानता करुणा की ही है। राम रावण का वध केवल प्रेम के वशीभूत होकर ही नहीं करते, अपितु वे तो मुनि-अस्थि-समूह देखकर करुणार्द होकर पहले ही 'निसिचर-हीन करौं मही' की प्रतिज्ञा कर चुके हैं। राम द्वारा ताड़का, मारीच और रावण वध में करुणा प्रेरित लोक-मंगल की भावना है। शुक्लजी ने करुणा को लोक-मंगल का कारण मानते हुए कहा है-"भावों की छान-बीन करने पर मंगल का विधान करने वाले दो भाव ठहरते हैं-करुणा और प्रेम। करुणा की गति रक्षा की ओर होती है और प्रेम की रंजन की ओर। लोक में प्रथम साध्य रक्षा है।

रंजन का अवसर उसके पीछे आता है। साधनावस्था या प्रत्यक्ष पक्ष को लेकर चलने वाले काव्य का बीज भाव करुणा ही ठहरता है।"

काव्य में कोमल और मधुर भावों का तो महत्त्व है ही, परन्तु उग्र और प्रचण्ड भावों का भी महत्त्व कम नहीं है। शुक्लजी का कथन है-"मनुष्य के शरीर में जैसे दक्षिण और वाम दो पक्ष हैं, वैसे ही उसके हृदय के भी कोमल और कठोर, मधुर और तीक्ष्ण-दो पक्ष हैं और बराबर रहेंगे। काव्य-कला की रमणीयता इन दोनों पक्षों के समन्वय के बीच मंगल या सौन्दर्य के विधान में दिखाई पड़ती है।"

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आलोच्य निबन्ध में शुक्लजी ने लोकमंगल की विविध विधियों पर व्यावहारिक प्रकाश डाला है।

शुक्लजी ने 'काव्य में लोक-मंगल की साधनावस्था' शीर्षक निबन्ध में आनन्द की साधनावस्था और सिद्धावस्था के काव्य के अन्तर का जो निरूपण किया है और उसमें माधुर्य की जो उद्भावना की है,

आलोच्य निबन्ध में शुक्लजी ने लोक-मंगल की विविध विधियों, उनमें सर्वश्रेष्ठ विधि, काव्य में लोक-मंगल एवं माधुर्य की प्रतिष्ठा आदि का सम्यक और व्यावहारिक निरूपण किया है। शुक्लजी की अभिव्यक्ति सूत्रात्मक शैली में है।

काव्य का आदर्श आनन्द और माधुर्य है-हृदय दृश्य-जगत के बीच जिस आनन्द मंगल की विभूति का साक्षात्कार करता है, उसी का प्रकाश राम-राज्य कहलाता है। भारतीय भक्ति-मार्ग में नारायण की इसी दिव्य कला का सम्यक दर्शन हुआ है। ब्रह्म के सत् , चित् और आनन्द-तीन स्वरूप हैं। इनमें काव्य और भक्ति-मार्ग 'आनन्द' स्वरूप को लेकर चले हैं। लोक में इस आनन्द की साधनावस्था और सिद्धावस्था-दो अवस्थाएं पाई जाती हैं। काव्य में सृजन इन दोनों अवस्थाओं को लेकर ही होता है। कुछ कवि ऐसे भी होते हैं, जिनका मन सिद्धावस्था या उपभोग पक्ष की ओर नहीं जाता, जैसे भूषण और कुछ लोग सिद्धावस्था के आनन्द में ही काव्य-सृजन में लगे रहते हैं। रामायण, महाभारत, रघुवंश, रामचरितमानस आदि साधनावस्था को लेकर चलने वाले काव्य हैं। आर्या-सप्तशती, गीत-गोविन्द, सूरसागर, बिहारी सतसई आदि सिद्धावस्था के काव्य हैं। इस प्रकार काव्य के निम्नलिखित दो भाग हो जाते हैं-

1. *आनन्द की साधनावस्था या प्रयत्न को लेकर चलने वाले काव्य।*
2. *आनन्द की सिद्धावस्था या उपभोग पक्ष को लेकर चलने वाले काव्य।*

डण्टन ने जिसे शक्ति-काव्य कहा है, वह प्रथम प्रकार के काव्य के अन्तर्गत आता है।

आनन्द की साधनावस्था- ब्रह्म की जो आनन्द-कला शक्तिमय रूप धारण करती है, उसकी भीषणता में भी अद्भुत मनोहरता और प्रचण्डता में भी आर्दता दिखाई पड़ती है-भीषणता और सरसता, कोमलता और कठोरता, कटुता और मधुरता और मृदुता का सामंजस्य ही लोक-धर्म का सौन्दर्य, अमंगल, अत्याचार, क्लेश इत्यादि भी रखते हैं, शेष, हाहाकार और ध्वंस का दृश्य भी लाते हैं परन्तु सारे रूप, भाव और व्यापार भीतर ही भीतर आनन्द कला के विकास में ही योग देते देखे

जाते हैं। आनन्द कला के प्रकाश की ओर बढ़ती हुई गति की विफलता में भी सौन्दर्य का दर्शन कराने वाले अनेक कवि हुए हैं। शैली के 'इस्लाम का विप्लव' महाकाव्य में नायक-नायिका मंगल शक्ति के अपूर्व प्रकाश की छटा दिखाकर अन्त में विफलता के विषाद की छाया से आवृत्त देखे जाते हैं।

कवि स्वयं सौन्दर्य से प्रभावित होता है और दूसरों को भी प्रभावित करना चाहता है। तुलसी के राम जैसे पराक्रमशाली हैं, उनका रूप माधुर्य भी वैसा ही लोकोत्तर है। प्रयत्नावस्था को लेकर चलने वाले कवि सौन्दर्य के साथ में रूप-सौन्दर्य का समन्वय करते हैं। कर्म-सौन्दर्य के जिए स्वरूप पर मुग्ध होना मनुष्य के लिए स्वाभाविक है और जिसका विधान कवि परम्परा बराबर करती चली आ रही है, उसके प्रति हम उपेक्षा सहन नहीं कर सकते। मानव हृदय में कोमल और कठोर, मधुर और तीक्ष्ण, दो पक्ष बराबर रहते हैं, अत: काव्य-कला की पूरी रमणीयता इन दोनों पक्षों में समन्वय के बीच मंगल या सौन्दर्य के विधान में दिखाई पड़ती है।

मंगल का विधान करने वाले करुणा और प्रेम-दो भाग ही ठहरते हैं। करुणा जहाँ रक्षा करती है, वहाँ प्रेम रंजन करता है। परन्तु लोक में प्रथम साध्य रक्षा है। रंजन का अवसर रक्षा के पीछे ही आता है। भवभूति ने अपने नाटकों में करुण रस की को प्रधानता दी है। आदिकवि वाल्मीकि का हृदय व्याध द्वारा क्रोंच-वध देखकर करुणा से आर्द हो उठा और यही करुणा रामायण की रचना का कारण बनी। राम रावण का वध दाम्पत्य-प्रेम के कारण सीता ही के लिए नहीं करते, अपितु अस्थि-समूह देखकर करुणा से अभिभूत होकर वे पहले ही 'निसिचरहीन करौं मही' की प्रतिज्ञा कर चुके थे।

आनन्द की सिद्धावस्था लेकर चलने वाले कवियों का ही 'प्रेम' बीज-भाव मानना ठीक है, आनन्द की साधनावस्था लेकर चलने वालों का नहीं। परन्तु आनन्द की साधनावस्था को लेकर चलने वाले यूरोपीय लोक-मंगलवादियों का एक दल, जिसके अनुयायी हमारे यहाँ रवीन्द्रनाथ टैगोर भी हैं, साधना और कोमलता के बाहर नहीं जाना चाहते। ये काल के कोमल और मधुर पक्ष में ही लीन रहते हैं। काव्य के सिद्धावस्था के आनन्द में रंजन का पूर्ण प्रसार दिखाई पड़ता है। आनन्द काव्य के सिद्धावस्था या उपयोग पक्ष का प्रदर्शन करने वाली काव्य-भूमि दीप्ति, प्रेम का पूरा शासन स्वीकार करके सुखात्मक हो जाते हैं। रवीन्द्रनाथ का लक्ष्य आनन्द की सिद्धावस्था या उपभोग-पक्ष को भाषित करने वाली भूमि की ओर है। निम्न उदाहरण में आनन्द का उल्लास है-

'बाहर जिस अखण्ड आकाश में ग्रह-ताराओं का मेला लगा रहता है, उसकी असीमता का आनन्द सिर्फ हमारे अनुभव में ही है।'

शोभा और दीप्ति की लोकोत्तर कल्पना हमारे यहाँ के भक्तों में भी भगवान की विभूतिमयी भावना ही मानी जाती है।

माधुर्य- माधुर्य का आकर्षण असामान्यता, दीप्ति, चमत्कार इत्यादि से सर्वथा भिन्न है। सामान्य से सामान्य और तुच्छ से तुच्छ वस्तुओं और दृश्यों में भी माधुर्य का पूरा आकर्षण रहता है। शुक्लजी ने लिखा है-

"हृदय की पूरी व्यापकता हम दीप्ति और माधुर्य, असामान्य और सामान्य दोनों पक्षों के रसात्मक ग्रहण में मानते हैं।"

प्रत्येक देश के सच्चे कवियों ने सीधे-सीधे और सामान्य में भी बराबर माधुर्य का अनुभव किया है। राग-सौन्दर्य के अन्तर्गत दीप्ति और माधुर्य दोनों ही मिले रहते हैं। शुक्लजी कविता को भाव-योग की साधना मानते हैं-

"भाव-धारा के भीतर-भीतर चलने वाली, जो भाव-धारा है, वह माधुर्य की है। 'कविता क्या है' नामक प्रबन्ध में काव्य को हमने भाव-योग कहा है। इस भाव-योग की चरम साधना से हृदय को जो मुक्तावस्था प्राप्त होती है, वह इसी माधुर्य की अनुभूति के सहारे। भेद में अभेद की रसात्मक प्रतीति इस माधुर्य का स्वाद है, जिसे हमारे यहाँ के भक्तों ने भगवान का प्रसाद बताया है।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्धों की विशेषताएं

हिन्दी निबंध के क्षेत्र में शुक्लजी का योगदान महत्वपूर्ण है। शुक्लजी से पूर्व निबंध लिखे जा चुके थे किन्तु उनके विषय वही घिसे-घिसाए, पिटे-पिटाए थे। उनमें कोई नवीनता नहीं थी। शुक्लजी ने इस क्षेत्र में क्रांति उपस्थित की। आपने नूतन विषयों पर निबंध लिखे और नई प्रणाली पर विषय को आगे बढ़ाने का उदाहरण प्रस्तुत किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्धों की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं-

1. **संगठित विचार-परम्परा-** शुक्लजी के निबंधों में विषय और विचार दोनों की 'कसावट' है। भाव और विचार एक दूसरे से इस प्रकार से गुम्फित रहते हैं कि उसकी एक कड़ी-सी बन जाती है और पाठक सरलता से एक के बाद दूसरे विचार पर पहुँच जाता है।

2. **विषय प्रधान या व्यक्ति प्रधान-** शुक्लजी के निबंधों में इन दोनों तत्वों का सम्मिश्रण है। उन्होंने सिद्ध कर दिया है कि निबंध एक साथ ही विषय प्रधान भी हो सकता है और व्यक्ति-प्रधान भी। दोनों में कोई विशेष विरोध नहीं है। शुक्ल जी के निबंधों में भावों व विचारों की कसावट, संगठित विचार-परम्परा, प्रौढ़ता सब कुछ है, साथ ही लेखक की वैयक्तिता भी और विषयानुसार प्रासंगिक विषयान्तर भी। यही वजह है कि वे एक साथ विषय प्रधान भी हैं और व्यक्ति-प्रधान भी।

3. **भावात्मकता-** शुक्लजी का हृदय भावुकता से भरा हुआ है। वे रूखे आलोचक और एक निबंध-लेखक मात्र ही नहीं थे, अपितु प्रकृति के उन्मुक्त प्रांगण में विचरण करने वाले थे। प्रेम के अन्तर्गत देश प्रेम पर विचार करते हुये शुक्ल जी ने लिखा है- "रसखान तो किसी की 'लकुटी और कामरिया' पर तीनों पुरों का राजसिंहासन तक त्यागने को तैयार थे, पर देश प्रेम की दुहाई देने वालों में से कितने अपने थके माँदे, फटे-पुराने और धूल से भरे पैरों पर रीझकर, या कम से कम न खीझकर बिना मन मैला किये कमरे की फर्श भी मैली होने देंगे ?"

ये भावात्मक स्थल शुक्ल जी की भावुकता का परिचय देने में समर्थ हैं।

4. **विषय-प्रतिपादन तथा भाषा-शैली में भव्यता और विशालता-** आचार्य शुक्ल के निबंधों में विषय का प्रतिपादन बड़े सुन्दर ढंग से हुआ है। शुक्ल जी के कथन में अस्पष्टता नहीं आने पाती और प्रत्येक बात स्पष्ट हो जाती है। वे न कभी अनावश्यक भूमिकाएं ही बाँधते हैं और न बे-मतलब की चर्चा ही करते हैं। वे थोड़े से शब्दों में बहुत से भाव भर देते हैं। कुछ लोग शुक्ल जी के निबंधों पर शुष्कता का दोष मढ़ते हैं परन्तु यह उचित नहीं है। शुक्ल जी के निबंधों में गम्भीरता ओर पैढ़ता अवश्य है, शुष्कता नहीं है। अपने विषय के जटिल होने के कारण उनमें गम्भीरता आ जाना स्वाभाविक ही था। फिर हास्य, व्यंग्य और विनोद के सम्मिश्रण ने शुक्ल जी के निबन्धों को पर्याप्त रोचक बना दिया है।

5. **निबन्धों में लोकवाद-** जागरुक व्यक्ति के नाते शुक्ल जी का ध्यान समाज ओर लोक की ओर सदैव रहा, उन्होंने किसी वस्तु को लोक और समाज से अलग करके नहीं देखा। भावों और मनोविकारों पर लिखे गये अपने निबन्धों में उन्होंने सर्वत्र लोक और समाज का ध्यान रखा है। ऐसे व्यक्तियों के प्रति उन्होंने तीव्र व्यंग्य किया है जो समाज व लोक के लिये घातक हैं। 'श्रद्धा-भक्ति' तथा 'भय' निबंध शुक्लजी के इस लोकवाद के विशेष उदाहरण देते हैं।

6. **नए ढंग की आत्माभिव्यक्ति-** शुक्लजी के निबंधों में आत्माभिव्यक्ति स्थान-स्थान पर मिलती है। परन्तु इस आत्माभिव्यक्ति का रूप अत्यन्त संयत है। वह प्रसंग में ठीक बैठ जाती है। इस प्रकार के न जाने कितने उदाहरण शुक्लजी के निबन्धों में हैं उदाहरणार्थ उनका सारनाथ से लौटते समय रात में काशी की गलियों में दीपकों को जलता देख उज्जयिनी का भ्रम करना, फिर ठठेरों की आवाज से उनका भ्रम टूटना, साँची का स्तूप देखने जाना, महुओं की सुगन्ध से मस्त हो जाना और लखनवी महाशय का, जो हिन्दी के पुराने लेखक श्री पुत्तू लाल विद्यार्थी हैं, शुक्लजी को महुए का नाम लेते देखकर टोकना कि 'कोई सुन लेगा तो लोग देहाती समझेंगे' आदि। इस प्रकार की आत्माभिव्यक्ति अंग्रेजी निबंधों में नहीं पायी जाती।

7. **निबंधों में निगमन शैली-** आचार्य शुक्लजी के वे निबंध विचारात्मक हैं, जो निगमन शैली में लिखे गये हैं। वे पहले अपनी बात सूत्र रूप में कह देते हैं और बाद में उसे स्पष्ट करते हैं। उनके सूत्र में कहे हुए कथन मस्तिष्क पर सीधा प्रभाव डालते है। जैसे बैर क्रोध का अचार या मुरब्बा है। अथवा यदि प्रेम स्वप्न है तो श्रद्धा जागरण है। ये वाक्य इस प्रकार के हैं, जिनमें थोड़े में बहुत कह दिया गया है।

शुक्लजी ने तुलनात्मक शैली का भी प्रयोग किया है। इस शैली को उन्होंने विषय को स्पष्ट करने के लिये अपनाया है। किसी भाव या मनोविकार का वर्णन करते हुए शुक्ल जी ने दूसरे भाव या मनोविकार से उसकी तुलना अवश्य की है। उत्साह के साथ 'भय', श्रद्धा के साथ 'प्रेम' के विवेचन द्वारा विषय को और अधिक स्पष्ट कर दिया है।

शुक्लजी ने शैली की रम्यता बढ़ाने के लिए समान सन्तुलन के शब्दों और वाक्यों का भी प्रयोग किया है। जैसे- 'इधर हम हाथ जोड़ेंगे, उधर वे हाथ जोडेंगे।' सारांश यह है कि- वाक्यांश को शुक्लजी ने यथा-अवसर प्रयुक्त करके अपनी शैली को सरल और सुबोध बना दिया है। जहाँ भी उन्होंने किसी स्थल के विवेचन को कुछ दुरुह देखा, वही उन्होंने 'सारांश यह है कि' कहकर सारे विवेचन की दुरुहता दूर कर दी।

8. **अनेक प्रकार की कथाओं का समावेश-** शुक्ल जी ने जहाँ भी उचित अवसर मिला, वहीं पर रोचकता लाने के लिए उन्होंने किसी पौराणिक, ऐतिहासिक, लोक प्रसिद्धि अथवा स्वयं की अनुभव की हुई घटना का उल्लेख कर दिया है। इससे विवेचन में रोचकता तो आ ही गई, साथ ही विषय बोधगम्य भी बन गया।

'अशोक के फूल'

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने अशोक के फूल की सांस्कृतिक परम्परा का विघटन किया है। द्विवेदी जी को इस बात का क्षोभ है कि यह फूल आज नहीं मिलता है, क्योंकि इस फूल का किसी समय में काफी साहित्यिक महत्त्व रहा है। लेखक ने इस फूल की हजारों वर्ष की साधना को वर्णित किया है तथा प्रत्येक के हाथों में उसकी प्रशंसा को प्रतिष्ठित करने के लिए तथा न्यौछावर करने के लिए फूल भी प्रदान किये हैं-

(1) **फूल का मनोहारी रूप-** अशोक के छोटे-छोटे लाल-लाल फूल बहुत ही मनोहारी होते हैं। इस फूल की मनोहारिता पर रीझकर, कामदेव ने अपने शरीर में भी इस फूल को स्थान दिया है। अशोक का यह फूल इतना मनोहारी होता है कि इसको देखकर मन उल्लासित हो जाता है।

(2) **फूल का साहित्यिक रूप-** अशोक के इस पुष्प का बहुत ही साहित्यिक महत्त्व है। संस्कृत साहित्य में कालिदास ऐसे विद्वान हुए हैं, जिन्होंने इस फूल का सर्वप्रथम साहित्यिक वर्णन

किया है। यह फूल कालिदास के ग्रन्थों में सौकुमार्य का भार लेकर नववधू के नव प्रवेश की भाँति शोभित है।

भारत में, जब मुस्लिम शासन प्रारम्भ हुआ तब इस फूल से सुशोभित साहित्य भी लुप्त हो गया। कालिदास ने, इस फूल को, इतना कोमल बताया है कि यह फूल सुन्दरियों के कोमल आघात से ही फूलने लगता है और उसके कपोलों पर सुशोभित होकर आभूषणों की तरह शोभा बढ़ाता है। यह फूल तो भगवान शिव के हृदय में तथा भगवान राम के हृदय में भी भ्रम पैदा कर देता है। कवियों ने अपने काव्य में कामदेव के बाणों का वर्णन किया है, लेकिन अशोक का फूल ऐसा फूल है, जिसको प्राय: सभी कवियों ने भुला दिया है। कवियों में अरविन्द, आम तथा नीलोत्पल को प्राय: सभी ने याद किया है, लेकिन नवमल्लिका को कभी नहीं पूछा गया और अशोक को तो प्राय: सभी के द्वारा बिल्कुल ही भुला दिया गया है।

(3) **फूल का भारतीय साहित्य में प्रवेश-** अशोक के फूल का भारतीय धर्म एवं साहित्य में प्रवेश एक (ईस्वी) के प्रारंभ में हुआ था, क्योंकि यक्षों और गंधर्वों के द्वारा भारतीय धर्म साधना में परिवर्तन कर दिया गया। कंदर्प और गंधर्व के उच्चारण में भी विद्वानों द्वारा भेद किया गया है। फूल आर्येत्तर भारत की देन माना जाता है। इसलिए कंदर्प द्वारा अशोक को अपनाया गया था। इसका कारण यह भी था कि इन जातियों द्वारा विभिन्न देवताओं की पूजा की गई थी। यद्यपि कंदर्प शिव-विष्णु आदि देवताओं से पराजित हो गया था, फिर भी वह झुका नहीं और उसने फूल के बल पर समस्त शक्ति साधना को झुका दिया था।

(4) **भारतवर्ष का आकार एवं फूल की स्थिति-** भारतवर्ष का आकार इतना विस्तृत एवं व्यापक था कि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ जी ने भारत को महामानव का समुद्र कहकर पुकारा है, क्योंकि यहाँ पर असुर, आर्य, शक, हूण, नाग, यक्ष, गंधर्व जातियाँ आकर बस गईं और एक समन्वित भारत का निर्माण किया गया। आर्यों तथा आर्येत्तर उपादानों का अद्‌भुत सम्मिश्रण ही हिन्दू जाति कहलाती है। समस्त पुष्पों तथा पशु-पक्षियों की अपनी परम्परा रही है। वामन पुराण में यह दृष्टान्त आता है कि, "कामदेव ने शिव पर प्रहार किया और वह स्वयं भस्म हो गया, उसका धनुष पृथ्वी पर गिरकर टूट गया। मूठ का स्थान चम्पा के फूल ने, हीरे के बने नाहा का स्थान मौलश्री के फूल ने, इन्द्र नीलमणि से बना, कोटि देश सुन्दर पाटल पुष्प, चन्द्रकांत मणियों से बने भाग से चमेली और विद्रुम से बनी कोटि बेला बन गई।"

(5) **फूलों की साहित्यिक चर्चा-** एक निश्चित अवधि से पूर्व, हमारे साहित्य में फूलों की चर्चा नहीं होती थी। गन्धर्व ही सोमरस का विक्रय करते थे। ऐसा विवरण ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है, क्योंकि ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ की विधि का भी उल्लेख मिलता है, जबकि बौद्ध साहित्य में इसको बुद्ध को बाधा देने वाला कहा गया है। फूलों की चर्चा महाभारत की कथाओं में भी वर्णित है। इस सम्बन्ध में महाभारत में लिखा गया है कि, "सन्तान की इच्छुक स्त्रियाँ वृक्षों के देवताओं के पास जाती रही हैं, जो विलासिता का प्रतीक है। यह कहा जाता है कि चैत्र शुक्ल अष्टमी को सन्तान की कामना रखने वाली स्त्रियाँ इनके पास जाती थीं। महारानियों के पद-प्रहार से यह खिलता था। कहा जाता है कि इसकी आठ पत्तियाँ चबाने मात्र से ही सन्तान की प्राप्ति स्त्री को हो जाती थी।" इसलिए बौद्ध, गया, साँची आदि में ऐसे वृक्षों के साथ, नग्न स्त्रियों की भी मूर्ति देखने को मिलती हैं। ये औरतें कटि प्रदेश में मेखला पहनती हैं। अशोक के फूल प्राय: दो प्रकार के पाये जाते हैं-प्रथम, लाल तथा द्वितीय, सफेद। सफेद फूल से तान्त्रिक क्रियाएं तथा लाल फूल से कामवर्द्धन होता है।

(6) **अशोक के फूल की रहस्यता-** विद्वानों ने इस फूल को रहस्यमय माना है। कामदेव के रूप में वृक्षों की पूजा यक्षों द्वारा की गई। इस पूजा को ही मदनोत्सव का नाम दिया गया। प्राचीनकाल के सुप्रसिद्ध शासक महाराजा भोज ने सरस्वती संस्करण में इस पूजा की तिथि त्रयोदशी

बताई है। भारत के इतिहास के स्वर्णयुग में, रानियाँ अपने चरणों के प्रहार से ही इस पुष्प को पुष्पित करती थीं, जो कि विशाल सामंती सभ्यता की परिष्कृत रुचि का प्रतीक माना गया है। सामंती सभ्यता की नींव सदैव धनहीनों व निर्बलों की ठठरियों पर ही रखी गई। जब मुस्लिम शासन भारत में आया तब मदनोत्सव के स्थान पर काली पूजा, पीरों, भूत-भैरवों की पूजा ने ले लिये।

(7) **फूल के सम्बन्ध में लेखक का विचार-** मानव शक्ति वास्तव में निर्मम है। इसलिए द्विवेदी जी ने मानव शक्ति की निर्ममता के हजारों वर्ष के ऐतिहासिक रूप पर अपनी दृष्टि डाली है और निष्कर्ष निकाला है कि मानव शक्ति ही संस्कृति और सभ्यता के वृथामोह को रौंदती रही है। इस मानव शक्ति ने ही धर्माचारों, विश्वासों, उत्सवों और व्रतों को नष्ट किया है। समाज में सामूहिक रूप से मनाये जाने वाले इन सांस्कृतिक उत्सवों को अतीत के गर्त में पहुँचाने वाले मनुष्य के विषय में लेखक का विचार है कि मनुष्य का जन्म स्वयं संघर्षों की ही देन है। आधुनिक काल में हमारा समाज त्याग और प्राप्ति का ही फल है। मनुष्य की इच्छा सदैव जीवित रहने की रही है। इस जीवन-धारा में बाधा सभ्यता एवं संस्कृति का मोह ही उत्पन्न करती है। महाकाल के द्वारा कभी मनुष्य की इस इच्छा की परवाह नहीं की गई। उसके द्वारा कामदेव का मानमर्दन व धर्मराज के कारागार में क्रान्ति मचाई गई, लेकिन मनुष्य की जीवन-धारा को महाकाल ने प्रभावित नहीं किया वह पहले की तरह निरन्तर प्रवाहित रही।

लेकिन अशोक के फूल को देखकर लेखक का मन उदास हो जाता है। जो वस्तु आज विद्यमान है, वह कल नष्ट हो जायेगी। जिस संस्कृति को हम आज बहुमूल्य मान रहे हैं उसमें भी कुछ समय पश्चात् परिवर्तन आयेगा। इस बदलाव से ही नवीनता का संचार होगा तथा अशोक के फूल को समुचित आदर।

आज से कोई दो हजार वर्ष पूर्व अशोक की जो स्थिति थी, वही आज है, केवल मनुष्य की मनोवृत्ति में ही बदलाव आया है। यदि मनोवृत्ति नहीं बदलती तो मनुष्य प्रगति नहीं कर सकता था। अशोक आज भी उतनी मस्ती से झूम रहा है जितना पहले झूमता था। इसलिए उदास होना व्यर्थ है, क्योंकि इसका जो आनन्द कालिदास द्वारा उठाया गया, उसे आप भी महसूस कर सकते हैं।

(8) **निबन्ध का अनूठापन-** लेखक द्वारा अपनी भावनाओं को, निबन्धों में स्पष्ट किया जाता है। लेखक का मन अशोक के फूल को देखकर उदास हो जाता है। इसलिए अशोक का फूल अपने ऊपर गौरवान्वित होता हुआ ऐसे स्थान पर पहुँच जाता है जहाँ से उसका उल्लेख प्रारम्भ होता है। मदनोत्सव, यक्षों और गन्धर्वों का उल्लेख कालिदास ने अपने काव्य में किया है। लेखक ने इस निबन्ध में भावावेग को भी दर्शाया है। इस भावावेग से यह स्पष्ट होता है कि, "अशोक के फूल की क्या स्थिति थी? और आज क्या हो गई? लेखक ने इस निबन्ध में हास्य, गम्भीरता तथा रोचकता का भरपूर वर्णन किया है। यह निबन्ध निबन्ध-संग्रह का एक व्यक्तिगत निबन्ध है। यही इस निबन्ध का अनूठापन है।"

(9) **निबन्ध का उद्देश्य-** भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के उत्तम तथा ग्रहण योग्य फूल का न करना ही इस निबन्ध का मूल उद्देश्य रहा है। लेखक ने यक्ष, गंधर्व, नाग, शक, हूण, असुर, दानव आदि जातियों का वर्णन अपने इस निबन्ध में किया है, जो समय के साथ भारतीय संस्कृति में विलुप्त हो गई थी। अशोक के वृक्ष का सीधा सम्बन्ध शास्त्रों में गन्धर्व संस्कृति से रहा है।

जीवन की तरह सभ्यता और संस्कृति भी परिवर्तनशील मानी गयी है। इसलिए जो सभ्यताएं मूल रूप से मजबूत होती हैं, वही निरन्तर जारी रहती हैं और शेष सभ्यताएं समयोगी में विलीन हो जाती हैं। आधुनिक जीवन में कोई भी सामन्ती व्यवस्था को याद नहीं करता। इसलिए यह सभ्यता स्वयं ही विलुप्त हो गई। आधुनिक काल में अशोक के फूल को पूर्णरूप से भुला दिया गया, क्योंकि

उस पर कालीदासीय दृष्टि का प्रभाव है। इसलिए कोई भी प्राकृतिक उपादानों का भरपूर रसास्वादन नहीं कर पाता है। यही इस फूल की विडम्बना रही है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी की निबन्ध कला की विशेषतायें

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी हिन्दी के अत्यन्त सम्मानित वयोवृद्ध साहित्यकार हैं। "आचार्य" पद उनके नाम से जुड़ा हुआ है। द्विवेदी जी उच्चकोटी के निबन्धकार, उपन्यासकार, आलोचक, चिन्तक तथा शोधकर्ता थे। निबन्ध रचना के क्षेत्र में उनके तीन निबन्ध-संग्रह प्रमुख हैं- "अशोक के फूल","विचार और वितर्क",तथा "कल्पलता"। द्विवेदी जी के निबन्धों में शास्त्रीय-विवेचन और बौद्धिक चिंतन के साथ-साथ उनके व्यक्तित्व और भावुकता के दर्शन होते हैं। उनकी निबन्ध-कला की विशेषतायें इस प्रकार हैं-

1. **असाधारण क्षमता-** द्विवेदीजी के निबंध लेखन में असाधारण क्षमता है। वे जहाँ विद्वत्तापरक अनुसन्धानात्मक निबन्ध लिख सकते हैं वहाँ श्रेष्ठ कलात्मक निबन्धों की भी सृष्टि करते पाये जाते हैं।

2. **साहित्यिक सन्दर्भ-**उनके निबन्धों में सांस्कृतिक साहित्यिक सन्दर्भ स्थल-स्थल पर बिखरे हुये मिलते हैं। इन सन्दर्भों में उनकी ऐतिहासिक चेतना प्रतिबिम्बित होती है।

3. **भावात्मकता-** द्विवेदीजी का जीवन के प्रति दृष्टिकोण बड़ा ही स्वस्थ है। उन्होंने मनुष्य और उसके लक्ष्य को केन्द्र मानकर ही निबन्धों की रचना की है। उनके निबन्धों में भावात्मक तथा विचार-प्रधान दोनों ही प्रकार के निबन्ध मिलते हैं। किन्तु भावात्मकता उनकी सार्वत्रिक विशेषता है।

4. **रोचकता-**आचार्य द्विवेदी जी के कथन के ढंग में भावुकता और सरसता के साथ-साथ निजीपन और वैयक्तिकता का गुण इस प्रकार परिव्याप्त है कि उससे बहुत अधिक रोचकता उत्पन्न हो गई है। स्थान-स्थान पर अलंकारों के प्रयोग से रोचकता और भी बढ़ती है।

5. **सरसता और प्रवाहमयता-** जब वे किसी कवि के भावपक्ष का विश्लेषण करने लगते हैं अथवा किसी राय या भाव सम्बन्धी बात की व्याख्या करने लगते हैं उस समय उनकी शैली में आश्चर्यजनक सरसता एवं प्रवाहमयता आ जाती है और आत्म-विभोर पाठक को भावधारा में दूर तक बहा ले जाती है। ऐसे स्थलों पर उनकी भाषा में कोमलकान्त पदावली का सुन्दर समावेश रहता है।

6. **आत्मीयता-**द्विवेदीजी जिन निबन्धों में अपने सम्बन्ध में या अपने अनुभवों के सम्बन्ध में लिखते हैं उनमें उनकी शैली में ऐसी आत्मीयता और हर्षोत्फुल्लता झलकती है कि पाठक को प्रतीत होने लगता है मानो वह लेखक के सामने बैठा हुआ सुन रहा है। उदाहरण के लिये उनके निबन्ध "मेरी जन्मभूमि" को लिया जा सकता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति की उदात्त और व्यापक पृष्ठभूमि, भौतिक दृष्टिकोण, तर्कपूर्ण विवेचन, गम्भीर चिन्तन तथा आत्मीयता ने उनकी शैली को नई उंचाईयाँ प्रदान की हैं।

'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है।' निबन्ध का विश्लेषण करते हुए मिश्रजी की भाषा

विद्यानिवास मिश्र ने आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की परम्परा को भोजपुरी लोक संस्कृति और साहित्य की मिठास से रिक्त कर हिन्दी ललित निबन्ध को एक नया क्षितिज प्रदान किया। इनके निबन्धों में पर्याप्त प्रसंग गर्भत्व है, दूसरी ओर लोक जीवन की सरसता और लोक संस्कृति की तरलता अंतवर्तिनी धारा के रूप में प्रवत्यमान है। विषय, जीवन-दृष्टि, शैली, भंगिमा और स्वर इन

सभी दृष्टियों से आधुनिक हिन्दी साहित्य में अनूठे निबन्ध हैं। पर-प्रतीति, शिवत्व, आत्मपरकता और मानव-धर्मिता इनके निबन्धों की मूल विशेषताएं हैं।

मेरे राम का मुकुट भीग रहा है निबन्ध मिश्रजी की भारतीय भावना और चिन्तना को व्यक्त किया है। इस निबन्ध में भारतीय सांस्कृतिक बोध ही जिसमें सद्गृहस्थ की भारतीयता, मानवीयता भावना और ममत्व चेतना को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

1. **समकालीन परिवेश और जीवन-** लेखक ने निबन्ध के आरम्भ से ही समकालीन परिवेश से उत्पन्न मानवीय जीवन की संघर्षमय परिस्थिति का वर्णन किया है। लेखक कह रहा है कि समूचा परिवेश ही तनाव और उदास है। व्यक्ति केवल उदास ही नहीं बल्कि परेशान संघर्षरत तथा विभिन्न अकल्पनीय प्रश्नों से लड़ रहा है। यानि कि व्यक्ति का सुख और आत्माभिव्यक्ति को भी प्रकट करने में व्यथित महसूस करता है। जो सहज प्रक्रिया होनी चाहिए, वो भयंकर चिन्ता का कारण बनती है तथा जिससे बाधा की शंका को वह निःशेष रहती है।

चिन्ता का मुख्य श्रेय लेखक ने आत्मिक सम्बन्धों को माना है। इसी स्नेह और आत्मिक सम्बन्धों के परिणामस्वरूप लेखक स्वयं की उद्विग्नता को स्पष्ट करता है। संगीत कार्यक्रम से जब लेखक का पुत्र और मेहमान महानगरीय वातावरण से निकली कन्या जब बहुत रात गये तक नहीं लौटने पर लेखक का मानस चिन्ताओं से घिर जाता है।

2. **प्रतीक्षा ही पीड़ा की जन्मदात्री-** मेहमान कन्या और पुत्र के बहुत रात बीत जाने पर भी नहीं लौटने पर लेखक के मन में अनेक शंकाओं का सागर उछाले खाने लगता है। यही पीड़ा ही प्रतीक्षा के फलस्वरूप हो रही थी। लेखक का कहना है कि पुरानी पीढ़ी सन्तान की हमेशा मनोकामना को पूर्ण करने के लिए तत्पर रहती है। परन्तु यह नयी पीढ़ी है कि पिछली पीढ़ी की ममता की पीड़ा को नहीं समझ पाती, जबकि पिछली पीढ़ी अपनी सन्तान के सम्भावित संकट की कल्पना मात्र से उद्विग्न हो जाती है। पुरानी पीढ़ी यह कतई नहीं मानती कि सन्तान बड़े से बड़ा कष्ट झेलने में समर्थ है। इस तरह लेखक के मन में अनेक अकल्पनीय घटनाओं के तूफान ने घोर पीड़ा को पैदा कर रहा था तथा लेखक इसी प्रेमाधिक्य के कारण चिन्ताग्रस्त है।

3. **कौशल्या और लेखक की चिन्ता समकक्ष-** कौशल्या के राम का वन गमन की चिन्ता का तादात्म्य लेखक अपने प्रतीक्षा रत मन से कर लेता है। लेखक कह रहा है कि कौशल्या के राम जब वन में गये थे, तब भी राम के सिर पर मुकुट था और कौशल्या को भी उनके राम की बजाय मुकुट के भीगने की अधिक चिन्ता है। अर्थात् अनेक कौशल्याओं के राम घर से बाहर हैं, वे सभी अपने पुत्र के कल्याण की कामना करती है। कष्ट की परवाह नहीं है, पर राम के रामत्व की चिन्ता है। यही लेखक की मान्यता है कि आज भी लोक मानस में हर माँ कौशल्या है और हर बेटा राम है। चाहे युग कितना ही बदले। यह मुकुट राम की श्रेष्ठता का प्रतीक है। लेखक को भी पुत्र की श्रेष्ठता की ही चिन्ता है।

4. **लेखक की मानवता और विश्व प्रेम का संकेत-** निबन्ध के इन शब्दों में लेखक की मानवता ही विश्व प्रेम और बन्धुत्व से पूर्ण होकर प्रकट हुई है-"सोचते-सोचते लगा कि इस देश की ही नहीं, पूरे विश्व की एक कौशल्या है ! जो हर बारिश में विसूर रही है-'मारे राम के भीजै मुकुटवा'-मेरी संतान, ऐश्वर्य की अधिकारिणी संतान वन में घूम रही है, उसका मुकुट, उसका ऐश्वर्य भीग रहा है, मेरे राम कब घर लौटेंगे ! राम के सेवक का दुपट्टा भीग रहा है, पहरुये का कमर बन्द भीग रहा है, उसका जागरण भीग रहा है।" मनुष्य की यह कैसी नियति है कि ऐश्वर्य और निर्वासन दोनों साथ-साथ चलते हैं।

5. **राम का निर्वासन-** अयोध्या में राम के अभिषेक के समय ही वनवास का संकट आया। उत्कर्ष की मनुष्य की ऊर्ध्वोमुख चेतना की यही कीमत सनातन काल से अदा की जाती रही है। ऐसी स्थिति में यह चिन्ता स्वाभाविक है कि उत्कर्ष कम से कम सुरक्षित रहे। यही उत्कर्ष की चिन्ता लेखक को अपने पुत्र की है, जो किसी कन्या के साथ संगीत देखकर काफी रात जाने तक भी नहीं लौटे थे।

6. **सीता की स्थिति-** राम चौदह वर्ष वनवास रहकर लौट आये। पर सीता को पुन: निर्वासन मिला। उसे अपार कष्ट भोगना पड़ रहा है। परन्तु संतान की खुशियाँ देखकर ही सीता जीवन बिताती रहती है। राम राजमुकुट में जड़े हीरों की चमक जो एकदम कठोर, तीखे और निर्मम थे। उसके बोझ से कराह उठते हैं और इस वेदना के चीत्कार में सीता के माथे का सिन्दूर और दमक उठता है। सीता का वर्चस्व और प्रखर हो उठता है।

7. **वसुधैव कुटुम्बकम-** निबन्ध का अन्त अपने-पराये के भेद की समाप्ति से होता है। मेहमान कन्या के प्रति चिन्ता आत्मीयता का रस लेकर विश्व मानवतावाद का मन्त्र फूँकने लगती है। कन्या अपनी हो या पराई सदा पराई रहती है का भाव ही लेख को सीता के माध्यम से जिस आदर्श शिखर की ओर ले जाता है, उसी शिखर में बन्धुता मानवता और अपनेपन की भावना है।

भाषा-शैली- डॉ. मिश्र ने अपने निबन्धों में भाषा के अनेक रूप और रंग प्रस्तुत किए हैं। मिश्रजी की भाषा शैली के विविध रूप मिलते हैं, भावात्मक या ललित निबन्धों में उनकी भाषा का बनाव-सिंगार अधिक है। अनुप्रासिकता की ओर रुझान अधिक है डॉ. शिवप्रसादसिंह के शब्दों में, "इनकी भाषा में आपको भोजपुरी संस्कारिता राप्ती की प्रखर धारा, हिमालय की तलहटी में रहने वाले व्यक्तित्व के उत्तुंग श्रंग और संस्कृत में पले एक खांटी ब्राह्मण की वदान्यता से पुष्ट वैदुष्य और सबके ऊपर एक आधुनिक बुद्धिवादी की अपने ही भीतर के देवता और दैत्य से निरन्तर युद्धरत रहने की सरगर्मी भी मिलेगी।

मूलत: मिश्रजी की भाषा संस्कृतनिष्ठ है। समस्त और संधि शब्दों का विपुल प्रयोग मिश्र ने किया है। अभिव्याप्त, उच्छ्वासित, पुलक स्पर्श, अयुग्मच्छदता, विषयैषणा, भवाम्बुधि, उत्पाटित, अपमिश्रित जैसे अनेक शब्द हैं। प्रत्यय लगाकर प्रयोग किए गए शब्द भी हैं यथा-विनियोजित, सुछापित, विकथित, परितृप्त आदि।

उर्दू-फारसी- यथा खुदी, मौत, इंतजार, बेशुमार, पैमाइश, पेशतर, फौरन, इलहाम, साजिश, खतरा, जिन्दगी, सलामत, ख्याल, खातिमाँ, बरकरार आदि।

अंग्रेजी- कम्पोजिट, कल्चर, कोटा, आर्केस्ट्रा, टेकनीक, गारन्टी, केबिनेट, मीटिंग स्लेट, आदि।

देशज- चुगेल, लाख्यो, भोर, सामटी, ललौह इत्यादि।

वाक्य रचना दीर्घ है फिर भी कसाव, लय एवं क्षिप्रता रहती है। सामासिक शब्दावली से युक्त है। आत्मीयता का भाव बनाये रखने के लिए बीच-बीच में लो, देखिए अरे भाई आदि पदावलियों का भी प्रयोग मिलता है। भाषा, सदा अलंकृत ही रहती है और शैली साधन होते हुए भी अपना विशेष स्थान बनाये रखी है। विशेष पदावलियों पर बल प्रदान करना उनकी विशेष टेकनिक है। भाषा में अन्त: संगीत, लय बद्धता और विरोधाभास का चमत्कार है। भाषा की अत्यधिक संसकारशीलता के कारण प्रबुद्ध पाठक के चिन्तन-मनन की वस्तु बन गये हैं।

निबन्ध शैलियाँ- मिश्रजी के निबन्धों में मुख्य रूप से ललित शैली के अतिरिक्त, धारा शैली विक्षेप शैली है। निबन्धों में प्रयुक्त शैलियों का विवेचन इस प्रकार किया जा सकता है-

1. **ललित शैली-** राष्ट्र प्रेम एक ऊर्जस्थल धारा इन्हीं निबन्धों में प्रवाह मान है। खरी व स्पष्टवादिता तथा स्वाधीन चिन्तन मिश्र की ललित शैली के विषय बने हैं-यथा-'चीन से संघर्ष' है,

इसको यह कह करके टालना कि यह चीन के नेताओं से संघर्ष है, बहुत बड़ी भूल है, क्योंकि चीन की जनता चीन के नेताओं से भिन्न नहीं है।"

2. **भावात्मक शैली-** भावात्मक शैली में चिन्तन की अन्तर्धारा निरन्तर प्रवाहमान है। वे वर्णित विषयों को अनेक माध्यमों से देखते हैं अनेक कोणों से परखते हैं-यथा 'गऊ, चोरी' में चितचोरी से लेकर साहित्य चोरी तक का वर्णन मिलेगा। 'दिया टिमटिमा रहा' में उजागर हो जाता है, इस देश का ह्रासोन्मुख इतिहास आँगन की गोरैया लेखक के लिए केवल एक पंछी रह जाती है।

3. **विचारात्मक शैली-** मिश्रजी की यह शैली स्वच्छ, मार्जित एवं अत्यन्त परिष्कृत रूप में है। इस शैली में आत्मविश्वास, उनका स्पष्ट चिन्तन, मौलिक स्थापनाएं एवं गहन अध्ययन सर्वत्र मुखर है। दो टूक बात कहने का साहस है। इस शैली में श्रद्धा का यह आस्थावान स्तर सतत् मुखरित है, यथा-"रस सिद्धान्त न तो अपने रूढ़ में अनादि है, न सर्वथा सिद्ध और शाश्वत मानदण्ड ही। व्यास, वाल्मीकि, कालिदास और अश्वघोष ने कम से कम रस सिद्धान्त को जाने या अनजाने ध्यान में नहीं रखा महाभारत काव्यत्व धर्म की व्यापक प्रजा के मूल किरण में केन्द्रित है, कालिदास का काव्य-दर्शन पर्युत्सुकी भवति यत्सुखितोपि जन्तु: कोई भी रस परिपाक के चक्कर में पड़ा।"

4. **विवरणात्मक-** इस शैली में चित्रांकन कुशलता है, व्यापक और पुष्ट व्यंजना है। यात्रा खण्ड के निबन्धों में कथात्मकता का आश्रय जहाँ लिया है, वहाँ इस शैली की प्रधानता है-"एक दिन वही मीमाँसा करते-करते सोया तो मैंने सपने में एक विचित्र बात देखी।" महती देवात होषा नर रूपेण तिष्ठति।

5. **वर्णनात्मक-** इस शैली में केवल स्थलों एवं व्यक्तियों के सौन्दर्य का वर्णन ही नहीं किया, बल्कि उस अंचल में पलने वाली धार्मिक एवं सामाजिक आस्थाओं एवं विश्वासों का भी संकेत करती रहती है। इन सभी वर्णनों में केवल वर्णन नहीं रहते, वे एक-एक गीत बन जाते हैं। ये वर्णन सांस्कृतिक, सटीक, संदर्भ प्रचुर प्रमाण में उपलब्ध है। प्रकृति मिश्र के लिए वह शक्ति है, जो कार्य भार से दबे हुए मृतक समान व्यक्तित्व में भी प्राण फूंक देने की क्षमता है। यथा-"उसी का नाम प्रकृति है कि जिसका पतन भी मनुष्य का उत्थान कराता है।"

6. **हास्य-व्यंग्य शैली-** मिश्र जी के निबन्धों में व्यंग्य अधिक है हास्य कम। व्यंग्य के भीतर से उभरते हुए उपहास की निर्ममता एवं कटुता को जीवन के विभिन्न पक्षों के खोखलेपन को इतनी यथार्थता एवं मार्मिकता के साथ प्रस्तुत करती है कि मन सिहर उठता है यथा-बाबागिरी के धन्धे में बड़ा तगड़ा कंपटीशन है। अनेक सम्प्रदाय बन गए हैं, गली-गली विहार खुल गये हैं। अब बाबा समूह का नाम नहीं, व्यक्ति का बाना है, इसलिए अब बाबागिरी साइड बिजनेस बन गया है। आजकल साहित्यिक बाबागिरी की सबसे अधिक प्रतिष्ठा है, बशर्ते कि यह बाबागिरी हो साइड बिजनेस ही, नहीं तो पूँजी टूटने का भी डर है।"

7. **निक्षेप शैली-** भाषा काव्यमय है, यथा-"राम भीगे तो भीगे राम के उत्कर्ष की कल्पना न भीगे, वह डर बारिश में सुरक्षित रहे।"

8. **लाक्षणिक शैली-** भाषा में आकर्षक और रमणीयता लाने के लिए लेखक ने इस शैली का प्रयोग किया है-"कैसे मंगलमय प्रभात की कल्पना थी? और कैसी अन्धेरी कालीन रात्रि आ गई? एक-दूसरे को देखने पर डर लगता है। घर मसान हो गया है।"

निष्कर्ष- उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन को हम डॉ. गणेश खरे के शब्दों में स्पष्ट कर सकते हैं-"पार प्रतीति, शिवत्व आत्मपरकता और मानव धर्मिता आपके निबन्धों की मूलभूत विशेषताएं हैं। आपके प्राय: सभी निबन्धों में निर्माणात्मक तथा लोकमंगल की पृष्ठभूमि में भारत का नवीन सांस्कृतिक

पुनर्निर्माण झाँक रहा है। भारत के पीड़ित, शोषित वर्ग के प्रति अपार सहानुभूति और संवेदना आपके निबन्धों में पूरी तरह लक्षित होती है।"

भाषा-शैली के विविध रूप मिलते हैं। भावात्मक या ललित निबन्धों में उनकी भाषा का बनाव सिंगार अधिक है। शैली को साधन मानते हुए भी इनके निबन्धों में शैली ही सिर पर चढ़कर बोलती हुई है। शब्दों की लयकारी, अनुप्रास की झंकार आदि मिलती है।

श्री हरिशंकर परसाई का संक्षिप्त साहित्यिक परिचय देते हुये उनकी भाषा शैली

श्री हरिशंकर परसाई जी का जीवन परिचय एवं साहित्यिक विशेषताएं निम्न हैं -

(1) **जीवन परिचय-** श्री हरिशंकर परसाई का जन्म मध्यप्रदेश में इटारसी के निकट स्थित जमानी नामक स्थान पर 22 अगस्त, सन् 1924 को हुआ था। आपकी प्रारम्भ से लेकर स्नातक-स्तर तक की शिक्षा मध्यप्रदेश में ही हुई और नागपुर विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम.ए. किया। कुछ वर्षों तक आपने अध्यापन कार्य किया। अध्यापन कार्य में ये कुशल थे किन्तु आस्था के विपरीत अनेक बातों का अध्यापन आपको यदा-कदा खटक जाता था।

(2) **साहित्यिक-साधना-**साहित्य में आपकी रुचि प्रारम्भ से ही थी। अध्यापन कार्य के साथ-साथ आप साहित्य- सृजन की ओर मुड़े और जब यह देखा कि आपकी नौकरी आपके साहित्यिक कार्य में बाधा पहुँचा रही है तो आपने नौकरी को तिलांजलि दे दी और स्वतंत्र लेखन को ही अपने जीवन का उद्देश्य निश्चित करके साहित्य- साधना में जुट गये। आपने जबलपुर से "वसुधा" नामक एक साहित्यिक मासिक पत्रिका भी निकाली जिसके प्रकाशक व सम्पादक आप स्वयं थे। वर्षों तक विषम आथिक परिस्थिति में भी पत्रिका का प्रकाशन होता रहा और बाद में बहुत घाटा हो जाने पर इसे बंद कर देना पड़ा। बाद में आप हिन्दी की प्रायः सभी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं से स्तम्भ-लेखक के रूप में जुड़े रहे। अगस्त 1995 में आप परलोक वासी हुए।

(3) **रचनायें-**परसाई जी की प्रमुख रचनायें इस प्रकार हैं-

(क) कहानी-संग्रह-1. हँसते हैं रोते हैं, 2. जैसे उनके दिन फिरे।

(ख) उपन्यास- 1. रानी नागफनी की कहानी, 2. तट की खोज।

(ग) निबन्ध-संग्रह-1.ठिठुरता हुआ गणतंत्र, 2.तब की बात और थी, 3.भूत के पाँव पीछे, 4.बेईमानी की परत, 5.पगडंडियों का जमाना, 6.सदाचार का ताबीज, 7. शिकायत मुझे भी है, 8.और अन्त में, 9.काग भगोड़ा आदि।

(4) **हास्य व्यंग्य के प्रसिद्ध रचनाकार-** वर्तमान हास्य व्यंग्य के रचनाकारों में परसाई जी का महत्वपूर्ण स्थान है। उनका हास्य केवल हास्य के लिए न होकर सोद्धेश्य होता है। उनकी शैली ही हास्य-शैली बन गई है। अपनी इस शैली में उन्होंने बड़ी सफलता से सामाजिक कुरूपता और दोषों का निदान खोजा है। वे बड़े चुटीले ढंग से समाज के अनाचार का पर्दाफाश कर देते हैं। पाठक उनके विचारों और अभिव्यक्ति को सरलता और सहजता से आत्मसात् करता चला जाता है। व्यंग्य-लेखक परसाई जी का हिन्दी साहित्य में अनूठा स्थान है। आधुनिक युग के हास्यकारों में पं. हरिशंकर शर्मा, अन्नपूर्णानन्द, बेढब बनारसी आदि कुछ-एक कथाकार ही दृष्टि में आते हैं। परन्तु इनमें से कोई भी ऐसा लेखक नहीं है, जो परसाई जी की तरह कुरीति, अनाचार और भ्रष्टाचार की चुभन का अनुभव गहराई से करा सका हो।

परसाई जी का हास्य न तो शब्दों की तोड़-मरोड़ पर आधारित है और न वे शैली में किसी का भद्दा उपहास ही करते हैं। उनकी अनूठी शैली ही हास्य की सृष्टि कर देती है। वे चलते-फिरते, जीते-जागते, रोते-जागते, रोते-हँसते पात्रों के भीतर छिपी जीवन-विरोधी अभद्रता को अपने शैली-शिल्प से बाहर ले आते हैं। वे इस प्रकार पीड़ाओं की घुटन समाप्त कर पीड़ा-युक्त अधरों पर हँसी ला देते हैं।

(5) **भाषा-शैली-** परसाई जी की भाषा सरल, सुबोध, प्रवाहयुक्त और व्यावहारिक शब्दों से पूर्ण है। विषयानुसार उसमें मुहावरे, विदेशी शब्द तथा लोकोक्तियों का प्रयोग हुआ है। आपका शब्द-चयन अद्वितीय है। आपका व्यंग्य शिष्ट एवं संयत है। व्यंग्य में हास्य के छींटे अनोखी छटा प्रदान करते हैं।

परसाई जी की शैली व्यंग्य-प्रधान है। एक प्रकार से परसाई जी व्यंग्य-लेखक ही हैं। आजकल व्यंग्य का नाम आते ही परसाई जी का नाम अपने आप सफल व्यंग्य-लेखकों में आ जाता है। आपके व्यंग्य के विषय सामाजिक एवं राजनीतिक हैं। समय की कमजोरियों एवं राजनीति के फरेबों पर करारे व्यंग्य लिखने में आप सिद्धहस्त हैं। भाषा में बोलचाल के शब्दों, तत्सम और विदेशी शब्दों का चुनाव उत्तम है। कहाँ कौन-सा शब्द अधिक चोट करेगा, कौन-सा शब्द बात को अधिक अर्थवत्ता प्रदान करेगा, इसका ध्यान परसाई जी को सदा रहता है।

आपकी भाषा-शैली का अधोलिखित उदाहरण दृष्टव्य है- "निन्दा कुछ लोगों की पूंजी होती है। बड़ा लम्बा-चौड़ा व्यापार फैलाते हैं वे इस पूंजी से। कई लोगों की प्रतिष्ठा ही दूसरों की कलंक कथाओं के पारायण पर आधारित होती है। बड़े रस-विभोर होकर वे जिस-तिस की सत्य-कल्पित कलंक कथा सुनाते हैं और पूर्ण सन्त समझने की तुष्टि का अनुभव करते हैं।"

परसाई जी की शैली में विविधता और अनूठापन है। कभी वह रामायण से 'लंका विजय के बाद' की कथा चुनती है और कभी वह 'बेताल की तीन कथाओं' के रूप में प्राचीन कथा साहित्य में दौड़ लगाती है। उनकी शैली में कहीं भी एकरसता और एकरूपता नहीं आने पाई है। वह निरन्तर परिवर्तनशील और विकासशील रही है।

निष्कर्ष

परसाई जी की रचनाओं का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। उनकी रचनायें आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि विविध प्रकार की घुटन को अपने में समेटे हुये हैं। वे पीड़ाओं को सामने लाती हैं, निदान प्रस्तुत करती हैं और साथ ही नवजीवन प्रदान करती हैं।

पगडण्डियों का जमाना निबन्ध में हरिशंकर परसाई के विचारों का विवेचन

हरिशंकर परसाई व्यंग्यकार हैं अत: लोगों द्वारा बिना मेहनत के फल चाहने वालों या शॉर्ट कट मारने वालों पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि अब लोग बड़ी चौड़ी सड़क के स्थान पर पगडण्डियों का आश्रय लेते हैं-वे अपनी बात को एक उदाहरण के माध्यम से इस भाँति कहते हैं-

मैंने फिर ईमानदार बनने की कोशिश की और फिर नाकामयाब रहा।

एक सज्जन ने मुझसे कहा कि एक परिचित अध्यापक से कहकर मैं उनके लड़के के नम्बर बढ़वा दूँ। यों मैं उनका काम कर देता, पर बहुत अरसे बाद उसी दिन मुझे ईमान की याद आयी थी और मैंने पूरी तरह ईमानदार बन जाने की प्रतिज्ञा कर ली थी। सज्जन की बात सुनकर मुझे पुरानी कथाएं याद आ गईं और मैंने सोचा कि प्रतिज्ञा करते मुझे देर नहीं हुई कि ये इन्द्र या विष्णु मेरी परीक्षा लेने आ पहुँचे। उन्हे विश्वास नहीं है कि कोई इस जमाने में लम्बी तपस्या करेगा। चार

कहानियाँ लिखकर लोकर युग-प्रवर्तक की लिस्ट में नाम खोजने लगते हैं। इसलिए ये देवता अब तपस्या शुरू होते ही परीक्षा लेने आ पहुँचते हैं।

मैंने उन्हें मन-ही मन प्रणाम किया और प्रकट कहा, "मैं इसे अनुचित और अनैतिक मानता हूँ। मैं यह काम नहीं करूँगा।"

मुझे आशा थी कि अब ये अपने मौलिक देव-रूप में प्रकट होंगे और कहेंगे-'वत्स, तू परीक्षा में खरा उतरा। बोल, तुझे क्या चाहिए? हम वर देने के 'मूड' में हैं। बोल, हिन्दी-साहित्य के इतिहास में तेरे ऊपर एक अध्याय लिखवा दूँ? या कहे तो, किसी समीक्षक की तेरे घर में पानी भरने की ड्यूटी लगा दूँ?'

वे मौलिक रूप में तो आये, पर वह प्रसन्नता का न होकर रोष का था। वे भुनभुनाकर चले गये। मैंने सुना, वे लोगों से मेरे बोर में कह रहे थे-'आजकल वह साला बड़ा ईमानदार बन गया है।'

परसाई आगे विचार व्यक्त करते हैं कि मैंने जिसे देवता समझा थां वह तो सामान्य आदमी निकला-तब मैंने आत्मा से पूछा कि गाली खाकर सत्यनिष्ठा बनना उचित है आत्मा ने कहा कतई नहीं और मैंने बेईमानी करना एवं लोगों का कार्य कराना प्रारम्भ कर दिया। वे कहते हैं अब मनुष्य की आत्मा सुअर और कुत्ते में रहने लगी है अर्थात् उनके चरित्र इस प्रकार बन गये हैं-वे एक अन्य प्रसंग बताते हैं कि राधेश्याम ने दुकान खोल कर सच्चा हिसाब रखा पर आयकर वालों ने उस पर विश्वास नहीं किया फलस्वरूप घूँस या रिश्वत देकर उन्होंने पीछा छुड़ाया, उसे बेईमानी सस्ती पड़ी। वे एक अन्य प्रसंग को इस भाँति व्यक्त करते हैं-

एक स्त्री नौकरी के सिलसिले में एक बड़े आदमी के पास सच्चरित्रता का प्रमाणपत्र लेने गई थी। बड़े आदमी ने उसे पहले अपने शयन-कक्ष में ले जाना चाहा और बाद में सच्चरित्रता का प्रमाणपत्र देना चाहा। पहले देवता आदमी बनकर ठगते थे, अब आदमी देवता बनकर ठगते हैं।

देखता हूँ कि हर सत्य के हाथ में झूठ का प्रमाण-पत्र है। ईमान के पास बेईमानी की सिफारिशी चिट्ठी न हो, तो कोई उसे दो कौड़ी को न पूछे। यही सब सोचकर मैं ढीला हो गया। अब मैं बड़े खुले मन से नम्बर बढ़वाता हूँ।

इन दिनों मुझे बहुत स्नेही मिलते हैं। जो कभी-कभी ही मिलते हैं, साल में एक-दो बार, उन्हें आते देखते ही समझ जाता हूँ कि वे किस काम से आये हैं। मैं मौसम देखकर ऐसे आने वाले का काम बता सकता हूँ। जुलाई के पहले हफते में, जब घटा छाई हो, धरा ने हरी चूनर ओढ़ रखी हो, आसमान मोर-पपीहा बोल रहे हों, बिजली नीग्रो सुन्दरी के दाँतों की तरह चमक रही हो, ऐसे सुहावनें समय में कोई कई महीनों बाद आता दिखे, तो समझा जाता हूँ कि वह गीत गाने नहीं आया, बच्चों को स्कूल-कॉलेज में भर्ती कराने में मदद लेने आया है।

वे आगे लिखते हैं मार्च का माह आते ही नम्बर बढ़वाने एवं पेपर आउट करने वाले वालों का ताँता लगता है जो प्रतिभाशाली होते हैं वे स्वयं कार्य कर लेते हैं अन्य दूसरों की सहायता लेते हैं। वे लिखते हैं-

अध्यापकों से सम्बन्ध होने के कारण मेरे पास दोनों पक्षों वाले काफी आते हैं 'कल जो आये थे, वे मुझे बारात में दो साल पहले पहली और अन्तिम बार मिले थे। मुझे यह पता नहीं था कि उस छोटी मुलाकात में ही उन्होंने इतनी आत्मीयता पैदा कर ली थी कि भाई परीक्षा में बैठने लगा, तो उन्हें मेरी याद सताने लगी। सुना है, विरहिन को बरसात में प्रिय की बड़ी याद सताती है। परीक्षा के मौसम में भी कुछ लोगों का विरह जाग उठता है और उन्हें किन्हीं विशेष परिचितों की याद सताने लगती है वे कहने लगे-'अमुक प्रोफेसर आपके मित्र हैं। उन्होंने एक पर्चा निकाला है।

कुछ 'हिण्ट' दिला दीजिए न !' मैंने सोचा, किसी से मित्रता है, तो इसका कुल इतना उपयोग है कि जब जरूरत पड़े, उससे गलत काम करा लिया जाये। कोई यह तो कहता नहीं है कि अमुक से आपकी मित्रता है, तो उन्हें समझाइए न कि ऐसा गलत काम न करें। न कोई यह कहता है कि अमुक आपका दुश्मन है तो उससे पेपर आउट करवाकर उस साले का ईमान बिगाड़ दीजिए। नहीं, दुश्मन सब सुरक्षित हैं। ईमान तो हमेशा मित्र का बिगाड़ा जायेगा। किसी दिन कोई आकर मुझसे कहेगा-'अमुक पुलिस अफसर से आपके अच्छे सम्बन्ध हैं। उनसे कहिए न कि घर में हमें सेंध लगा देने दें।'

उनका विचार है कि पेपर आउट कराने वाले एवं अंक बढ़वाने वाले दया के पात्र हैं क्योंकि ये बहुत परेशान एवं दुःखी लोग हैं। सभी चाहते हैं कि उनका पुत्र पास होकर नौकरी पा जाये पुत्र फेल न हो कोई चाहता है कन्या पास हो जाये तो उसका विवाह अच्छी जगह हो जाये ये तो बड़े दीन लोग हैं। वे लिखते हैं-

मेरी परेशानी का कारण दूसरा है। ये अब बेझिझक, निस्संकोच और निर्लज्जता से काम करने लगे हैं। दस साल पहले भी मैं यह काम करा देता था। तब देखता था, नम्बर बढ़वाने वाला, बड़ी झिझक, लज्जा और संकोच से कहता था। लोग खुलकर नहीं कहते थे। तब ऐसी दबी-छिपी चिट्ठी आती थी-'लोग संकेत में' अंक बढ़ाने की बात लिखते थे किन्तु अब लोग डंके की चोट पर चिट्ठी या खुले कार्ड पर लिखते हैं, मेरे पुत्र का पर्चा बिगड़ गया है सिन्हा साहब उसे जाँच रहे हैं उसे 40 प्रतिशत अंक दिलवा दीजिए वे अपनी बात इस प्रकार समाप्त करते हैं। तब नम्बर बढ़वाने वाला बड़ी देर संकोच से बैठा रहता था, दुविधा में पड़ा रहता था, यहाँ-वहाँ की बातें करता था और तब कहीं शरमाकर बंगले झाँकता हुआ नम्बर बढ़वाने की बात कहता था। अब नम्बर बढ़वाने वाला इस तरह आता है, जैसे बाजार में सब्जी खरीदने जाता है। सीधा मेरी आँखों में देखता है और अधिकार पूर्वक कहता है कि नम्बर बढ़वाने हैं।

दस सालों में यह जो प्रगति हो गयी है, यह मुझे परेशान करती है। भयंकर संकोचहीनता है। यह साहस मुझे डराता है। मैं इन्तजार करता हूँ कि कोई तो थोड़ा संकोच लेकर आये, कि मैं कुछ आश्वस्त हो जाऊँ।

कोई नहीं आता। मुझे लगता है, हम सबने मान लिया है कि आम सड़कें सब बन्द हो गयी हैं। उन पर तख्ती टँग गयी है-'सड़क मरम्मत के लिए बन्द है।' सालों से ये सड़कें बन्द हैं और सब पगडण्डियों से जा रहे हैं। चलते-चलते पगडण्डियों के काँटे और झाड़ियाँ साफ हो गयी हैं और वे सड़कों जैसी चिकनी और चौड़ी हो गयी हैं। बेझिझक, नंगे पाँव इन पर लोग चल रहे हैं। आम सड़क पर चलने वाला अब बेवकूफ या पागल समझा जायेगा। अब आम सड़कें खुल भी जायें, तो लोग उन पर चलने में झिझकेंगे। मरम्मत वाले भी इसलिए ढीले पड़ गये हैं। मगर उपयोग न होने से आम सड़कों पर झाड़ियाँ और जंगली पौधे उगेंगे और वे ढक जायेंगी। तब किसी को आभास भी न होगा कि इस देश में कहीं आम सड़कें भी हैं।

लगता है, आम सड़कें अब भविष्य के पुरातत्त्ववेत्ता को ही मिलेंगी। वही इन्हें खोजेगा। वह निष्कर्ष निकालकर बतायेगा कि उस जमाने में इस देश में आम सड़कें तो थीं, पर कोई उन पर चलता नहीं था। सब पगडण्डी पकड़ते थे। अनुप्रयोग के कारण सड़कें दब गयी थीं।

सफलता के महल का सामने का आम दरवाजा बन्द हो गया है। कई लोग भीतर घुस गए है और उन्होंने कुण्डी लगा दी। जिसे उसमें घुसना है, वह रूमाल नाक पर रखकर नाबदान में से घुस जाता है। आसपास सुगन्धित रूमालों की दुकानें लगी हैं। लोग रूमाल खरीदकर उसे नाक पर रखकर नाबदान में से घुस रहे हैं।

जिन्हें बदबू ज्यादा आती है जो सिर्फ मुख्य द्वार से घुसना चाहते हैं, वे खड़े दरवाजे पर सिर मार रहे हैं और उनके कपालों से खून बह रहा है।

कहानी तत्वों के आधार पर 'उसने कहा था' की समीक्षा

श्री नंददुलारे वाजपेयी के शब्दों में-"गुलरीजी की 'उसने कहा था' कहानी बहुत अधिक स्थान और समय घेरती है और कहानी के वर्णन प्रतिमानों को देखते हुए विराट या महा कथा कही जा सकती है।" यदि इस कहानी को विस्तार दे दिया जाए तो इसका कथानक उपन्यास के रूप में परिवर्तित हो सकता है। इस कहानी के आधार पर चलचित्र भी बन चुका है। 'उसने कहा था' कहानी संसार की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में अपना स्थान रखती है। इसमें गुलेरीजी की कहानी-कला चरमोत्कर्ष पर पहुँची हुई है।

इस कहानी की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं-

(1) **कथावस्तु-संगठन में जिज्ञासा-** कहानी का शीर्षक पढ़ते ही पाठक के हृदय में जिज्ञासा जागृत हो जाती है। उसके मन में प्रश्न उपस्थित हो जाते हैं-किसने कहा था? किससे कहा था? क्यों कहा था? कब कहा था? आदि। उसकी जिज्ञासा कहानी के अंत में ही समाप्त होती है। कथानक का प्रारंभ अमृतसर के बाजार में बम्बूकार्ट के बीच में एक पंजाबी बालक लहनासिंह और पंजाबी लड़की के मिलन से होता है। प्रारंभ अत्यंत स्वाभाविक है। बालक प्रश्न करता है-'तेरी कुड़माई हो गई', लड़की 'धत्' कहकर चली जाती है। एक दिन पुनः वही प्रश्न पूछे जाने पर लहना को आशा के विरुद्ध उत्तर मिलता है-"हाँ, देखते नहीं यह रेशम से कढ़ा हुआ रेशमी शालू।" लड़की का उत्तर लहना के हृदय में हलचल मचा देता है। वह रास्ते में दूसरों से टकराता हुआ घर पहुँचता है। बालक व बालिका का यह व्यवहार हृदय का पवित्र प्रेम प्रकट करता है।

'विस्मृति' के सहारे कहानीकार 25 वर्ष की लंबी छलांग लेकर फ्रांस के मैदान में पहुँच जाता है, जहाँ लहनासिंह सूबेदार हजारासिंह के नेतृत्व में जमादार है। लहनासिंह के भारत में अपने मुकदमे की पैरवी करने के लिए आने पर उसकी भेंट संयोगवश बचपन में अमृतसर के बाजार में परिचित बालिका से हो जाती है। वह उस सूबेदार की सूबेदारिन है। वह लहनासिंह से आँचल पसार कर माँगती है कि तुमने तांगे के घोड़े से मेरे प्राण बचाए थे, अब मैं अपने पति-पुत्र को तुम्हें सौंप रही हूं। इनकी रक्षा करना। लहना इस कर्तव्य को अपने सिर चढ़ा लेता है। समस्त घटनाक्रम और कथानक का विकास लहना की स्मृति के चित्र के रूप में उपस्थित होता है। मोर्चे पर सूबेदार और उनके पुत्र बोधासिंह की रक्षा करता हुआ लहनासिंह घायल हो जाता है। मृत्यु के पूर्व उसकी स्मृति सद्य हो जाती है। कहानी 'चरम सीमा' पर पहुँच जाती है। वह बजीरा की गोद में पड़ा-'बजीरा पानी पिला दे' बार-बार कहता है। उसके ये शब्द पाठकों के हृदय पर चोट करते हैं। इसी समय लहना 'उसने कहा था' का रहस्य भी स्पष्ट करता है। वह कहना है सूबेदारिनी से कह देना कि जो 'उसने कहा था' उसे लहना ने पूरा कर दिया। उसके पति-पुत्र की रक्षा अपने प्राणों का विसर्जन करके भी की। इस प्रकार 'उसने कहा था' का रहस्य कहानी के अंत में खुलता है। इस प्रकार कथावस्तु-संगठन में स्वाभाविकता है। एक के पश्चात् दूसरी घटना चलचित्र की तरह आती-जाती है।

कहानी में प्रस्तावना भाग को अधिक महत्व नहीं दिया गया। अमृतसर की सड़कों पर इक्के-तांगे वालों के चित्रण के साथ कथानक प्रारंभ हो जाता है। इक्के-तांगे वालों के द्वारा प्रयुक्त शब्दावली सफल वातावरण का निर्माण कर देती है।

(2) **चरित्र-चित्रण-** चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'उसने कहा था' कहानी एक महान आदर्श प्रस्तुत करती है। लहनासिंह के बाल्यकाल और युवाकाल का यथार्थ जीवन सामने आता है। लहनासिंह

का चरित्र यथार्थ की पृष्ठभूमि पर आदर्श का प्रतिनिधित्व करता है। उसके प्रेम में वासना का लेश मात्र भी नहीं है। वह अपने वचन का पालन प्राणों को देकर भी करता है। वह मधुर प्रेम की पवित्र स्मृति में अपने को सहर्ष बलिदान कर देता है।

सूबेदार हजारासिंह का चरित्र-चित्रण भी बहुत कुशलता के साथ किया गया है। उसमें वीरता, धीरता, निर्भयता आदि सभी गुण हैं। अपने अफसर की आज्ञा का पालन करना वह अपना धर्म समझता है और उसके लिए अपने प्राण तक देने को तैयार है। सूबेदारिन के बाल्य-जीवन और युवाकाल के जीवन पर प्रकाश पड़ता है।

कहानी के सभी पात्रों का परिचय संवाद के द्वारा ही हुआ है। लेखक अपनी ओर से परिचयात्मक एक शब्द भी नहीं लिखता। उस प्रकार कथोपकथनों में नाटकीयता आ गई है।

लहनासिंह और लेफ्टीनेंट साहब का वार्तालाप भी बहुत आकर्षक है। मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए लहनासिंह का वजीरासिंह से संवाद बहुत ही मर्मभेदक है। प्रस्तुत कहानी के कथोपकथन कथावस्तु को विकसित करने एवं पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालने में विशेष सहायक हुए हैं। सभी कथोपकथन सजीव और नाटकीय शैली में हैं।

(3) **हास्य का पुट-** प्रस्तुत कहानी में हास्य का पुट भी है। उनका हास्य विनोद की ही सीमा तक रहता है। लहनासिंह और नकली लेफ्टिनेंट के साथ हुई बातचीत में जो विनोद की फुलझड़ियां छूटती हैं, वे पाठक को रस-मग्न कर देती हैं। संपूर्ण कहानी में ममत्व, हास्य और करुणा के समन्वय से जो रस का परिपाक होता है, वह हृदय की तन्मयता प्रदान करता है।

(4) **भाषा-** 'उसने कहा था' कहानी की भाषा तत्सम शब्द-प्रधान होते हुए भी व्यावहारिक है। वह सरल और प्रसंगानुकूल है। प्रादेशिक भाषा के शब्दों के प्रयोग से भाषा आकर्षणमयी हो गई है। उर्दू, पंजाबी और अंग्रेजी के शब्दों के प्रयोग के साथ-साथ संस्कृत और पंजाबी के कुछ अंश ज्यों-के-त्यों उद्धृत करने से और उसके पश्चात तात्पर्यार्थ देने से शैली साहित्यिक हो गई है। भाषा में समास-प्रधान शैली का अनुभव होने लगता है। बीच में आए हुए मुहावरे भाषा का श्रृंगार करते हैं। मृत्यु-शय्या पर पड़े लहनासिंह के मुख्य से प्रयुक्त भाषा में काव्यात्मकता है।

निष्कर्ष

पावन प्रेम में अपना सर्वस्व दूसरे के लिए बलिदान कर देना और उसका किंचित मात्र भी विज्ञापन न करना ही इस कहानी की मुख्य संवेदना है। एक असफल प्रेमी लहनासिंह पूर्व प्रेम की मधुर स्मृति के आधार पर प्रेमिका के लिए उसके पति-पुत्र की रक्षा करने में अपना बलिदान करते हुए गौरव का अनुभव करता है। इसमें वासना लेशमात्र भी नहीं है। प्रेम का सात्विक प्रभाव छलक रहा है।

प्रेमचंद की कहानी कला की विशेषताएँ

प्रेमचन्द भाव और कला दोनों ही दृष्टियों से बहुत महान हैं। हिन्दी कहानी कला के सच्चे तत्व पहली बार उनके कथा साहित्य में अंकुरित हुए हैं। वे निश्चय ही हमारे पहले मौलिक कलाकार हैं। उनकी कहानी कला की विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं -

(i) **कथानक** - कथानक की दृष्टि से प्रेमचंद का कथा साहित्य बड़ी व्यापकता लिए हुए है। ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक सभी क्षेत्रों से उन्होंने अपनी कहानियों के कथानक लिए हैं। सामाजिक कहानियों में उन्होंने समाज सुधार, ग्रामीण नागरिक और नारी जीवन की अनेक प्रकार की समस्याओं का चित्रण किया है।

जिन घटनाओं को प्रेमचन्दजी ने अपनी कहानी में स्थान दिया है उन्हें बड़े कलात्मक ढंग से हमारे सामने रखा है। तिलस्मी कहानी की भाँति वे केवल वैचित्र्य और कुतूहल प्रधान नहीं हैं, उनका कार्य केवल मनोरंजन करना ही नहीं है, बल्कि वे एक निश्चित उद्देश्य और सिद्धांत को लेकर चली हैं।

(ii) **पात्र-योजना एवं चरित्र चित्रण** - प्रेमचन्दजी की कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता वस्तुत: मानव चरित्र की व्याख्या है। प्रेमचंद के पहले का हिन्दी कहानी साहित्य, कहानी के इस मूल तत्व से सर्वथा अछूता था। प्रेमचंद ने पहली बार चरित्र प्रधान कहानियों को जन्म दिया।

(iii) **संवाद एवं कथोपकथन** - प्रेमचंद जी की कहानियों के कथोपकथन भी बड़े स्वाभाविक और सजीव हैं। वे सर्वत्र पात्र, देश काल, परिस्थिति, स्वभाव, रुचि के अनुकूल हैं। वह शिक्षित, राजा-रंक, सेठ मजदूर सबके मुँह से मर्यादानुकूल उसी की भाषा में बातचीत कराते हैं। इसके साथ ही वह कथोपकथन की सुसम्बद्धता, उसकी श्रृंखला और नियंत्रित स्वरूप का भी ध्यान रखते हैं।

(iv) **देशकाल एवं वातावरण योजना**- प्रेमचन्द जी ने अपनी कहानियों में परिस्थितियों एवं वातावरण का चित्रण बड़े कौशल से किया है। उनके सभी वर्णन सजीव और कथानक के विषय में सहायक हुए हैं। घटनाओं के वर्णन में, घटनाओं की पृष्ठ भूमि के चित्रण में, पात्रों के चरित्र को प्रस्तुत करने में सचमुच प्रेमचन्द जी सिद्धहस्त हैं।

(v) **भाषा शैली** - प्रेमचंद जी की कहानी कला की उत्कृष्टता का बहुत श्रेय उनकी भाषा को है। भाषा के प्रेमचंद सम्राट हैं। उच्च साहित्यिक हिन्दी, बोलचाल की हिन्दी, उर्दू-हिन्दी के संयोग से बनी हिन्दुस्तानी सभी प्रकार की भाषा उनकी चेरी थी और अपने स्वामी के पीछे हाथ जोड़े फिरती थी। शब्दों का तो उनके पास अटूट खजाना था। भाषा की भाँति शैली के भी अनेक रूप हमें देखने को मिलते हैं। वह वर्णनात्मक, संकेतात्मक, चित्रात्मक, नाटकीय और हास्य व्यंग्य प्रधान सभी कुछ है। शिल्प विधान की दृष्टि से प्रेमचंद जी ने ऐतिहासिक, नाटकीय, आत्मचरित्रात्मक, पत्रात्मक, डायरी, शैली आदि सभी शैलियों में अपनी कहानियाँ लिखी हैं। ऐतिहासिक शैली को अवश्य उन्होंने अधिक प्रधानता दी है। इस प्रकार की शैली में लिखी गई कहानियों में उन्हें सफलता भी खूब मिली है।

(vi) **उद्देश्य** - प्रेमचंद जी का सभी कथा साहित्य सोद्देश्य है वह मनोरंजन के लिए नहीं लिखा गया है। वह किसी न किसी निश्चित उद्देश्य का प्रतिपादन करता हुआ चला है। प्रेमचंद जी का अपना जीवन दर्शन है, अपनी विचारधारा है। इसी ने उनके कथा साहित्य के घटना चक्र को जन्म दिया है और पात्रों की सृष्टि की है।

(vii) **हिन्दी कथा साहित्य में स्थान** - हिन्दी कथा साहित्य के इतिहास पर दृष्टि डालने से यह बात सर्वथा स्पष्ट है कि प्रेमचंद आधुनिक हिन्दी तथा साहित्य के जन्म दाता हैं। उनका कथा साहित्य इतना विशाल और व्यापक है कि उसमें पूरा एक युग समा गया है। एक तरह से वे अपने में स्वयं एक कहानी युग थे, जिसमें हिन्दी कहानियों के सच्चे तत्व अंकुरित हुए, विकसित हुए और उनसे भारतीय साहित्य में सुगन्ध आई। बंगला कहानी साहित्य में टैगोर की भाँति उन्होंने हिन्दी कहानी को प्रेरणा दी और उसके भाव क्षेत्र को अधिक से अधिक सम्पन्न बनाया।

'पूस की रात' कहानी की कलात्मक समीक्षा

'पूस की रात' कहानी का प्रारंभ, हल्कू के दैनिक जीवन के एक प्रसंग से होता है। वह कंबल खरीदने के लिए तीन रुपये जोड़कर रखता है क्योंकि ठंड का पूस महीना आने वाला है, इस महीने में अपने खेत में तैयार खड़ी फसल की रखवाली करने के लिए उसे खेत की मड़ैया में सोना पड़ेगा? नहीं तो साल भर की कमाई उसकी खेती चौपट हो जायेगी। लेकिन सहसा महाजन आ

धमकता है और हल्कू उन तीनों रुपयों को उसे देकर अपना गला छुड़ाता है, पत्नी विरोध करती है लेकिन वह उसे मना लेता है। कम्बल उसकी एक आवश्यकता है लेकिन वह उसे नजर अंदाज करके अपने ऊपर तत्काल आई हुई विपत्ति से पिंड छुड़ाता है। कथा की यह प्रस्तावना भाग हल्कू की पारिवारिक स्थिति का सटीक परिचय पात्रों को देती है। कर्ज के एक प्रसंग को लेकर कहानीकार कथावस्तु के संचालक को परिचय देता है। कहानी का शीर्षक और प्रस्तावना भाग में ही, पूस की रात के लिए कंबल खरीदने के लिए तीन रुपये का प्रसंग, कथा का सूत्र है जिसे लेकर कथा वस्तु का विकास किया जाता है।

'पूस की रात' कहानी का कथानक संतुलित और सुगठित है। उसमें रोचकता माछंत रक्षक है। कथावस्तु को तीन चरणों में विकसित किया गया है। पहला परिचय भाग, दूसरा पूस की रात की ठंड से युद्ध करता हुआ हल्कू और उसका कुत्ता, तीसरा सोया हुआ हल्कू और खेत की फसल का नीलगायों द्वारा सत्यानाश। संक्षिप्त कथावस्तु के तीनों चरण अत्यंत गतिशील और रोचक लगते हैं। वस्तु चित्रण के शिल्प में कुछ नवीनता है। संयोग, घटना और स्थितियां इस कथा के विकास में विशेष सहायक नहीं हुई हैं। एक छोटे से प्रसंग में कहानीकार ने ठंड से युद्ध करते हुए हल्कू और उसके कुत्ते का चित्रण बड़े मार्मिक ढंग से किया है और कथा को विकास आयाम स्वाभाविक रूप से प्राप्त हुआ है। उसी प्रकार बगीचे में पत्तियां इकट्ठा कर अलाव जलाने, ठंड भगाने के उपक्रम का वर्णन भी ऐसा सूत्र है, जिनका आधार लेकर कथा विकसित हुई है। कथा भाग में चित्रण भी अत्यंत यथार्थ रूप से किया गया है जिससे कथानक को सप्राणता हासिल होती है। बगीचे में बैठा हुआ हल्कू, नील गायों द्वारा खेत के सत्यानाश को पूरा-पूरा अहसास कर रहा है, लेकिन ठंड का ऐसा वह भुक्तभोगी है कि वह बगीचे से निकलने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहा है। खेत के सत्यानाश से खेत में सोने का उसका काम ही बंद हो जाता है। यही उसे संतोष है। इस कहानी का कथानक सशक्त और प्रभावशाली है और उसका कौशलपूर्ण विकास हुआ है।

चरित्र-चित्रण- 'पूस की रात' कहानी में पात्रों की संख्या केवल दो है-हल्कू और मुन्नी। हल्कू एक किसान है। मुन्नी उसकी पत्नी है। कहानी हल्कू के ही जीवंन की पूस की एक ठंडी रात की कथा है जिसमें गरीब हल्कू कम्बल के अभाव में ठंड का सामना नहीं कर पाता है। भाग कर बगीचे में आकर अलाव जलाता है और ठंड से थोड़ा छुटकारा पाता है। उसका खेत नीलगायों द्वारा चरा जा रहा है। इसकी स्पष्ट आवाज बगीचे में उसके कानों तक पहुँच रही है। लेकिन बगीचे के बाहर खेत की मड़ैया से ठंड का कटु आस्वाद लेकर वह अभी-अभी लौटा है। खेत उसका नष्ट हो जाए लेकिन इस ठंड में खेत तक जाने की हिम्मत उसमें नहीं है। निश्चिंत होकर वह सूर्योदय हो जाने के बाद तक सोता रहता है। उसकी पत्नी उसे आकर जगाती है और खेत के सत्यानाश का समाचार देती है। गरीब और लाचार हल्कू का चरित्र मार्मिक और प्रेरक है। उसकी पत्नी मुन्नी और उसका कुत्ता जबरा भी इस कहानी के दो अन्य पात्र हैं। मुन्नी पात्र कथा में दो स्थानों पर आई है। जब हल्कू को वह कम्बल के तीन रुपये सहना महाजन को देने से रोकती है और दूसरे वह हल्कू को खेत पर जाकर जगाती है। जबरा उसका ठंड का साथी है।

कथोपकथन- कहानी में 'कथोपकथन' भी एक महत्वपूर्ण तत्व है। कथाकार कथा वस्तु को गति प्रदान करने के लिए, चरित्र को उठाने के लिए तथा नाटकीय रोचकता प्रदान करने के लिए कहानियों में कथोपकथनों की योजना करते हैं। बहुत से कथाकार तो कथोपकथन के माध्यम से ही कथावस्तु को गति प्रसाद देते हैं। लेकिन जहाँ तक प्रेमचंद की कहानियों का प्रश्न है, उनमें कथोपकथनों की कोई अहम भूमिका नहीं है। समग्र रूप से देखने पर यह तथ्य मिलता है। कथोपकथन के स्थान पर, प्रेमचंद जी ने अपनी अभिव्यक्त शैली के विविध शिल्पों से काम लिया है। 'पूस की रात' कहानी में कथोपकथन बहुत थोड़े हैं, पर जो हैं वे छोटे, ठोस और सुगठित हैं। कथोपकथन जो भी आए हैं वे आवश्यक रूप से हैं और कथावस्तु को गति प्रदान करने के साथ ही चरित्र को भी अभिव्यक्त

करते हैं। इस कहानी में जबरा कुत्ते के साथ हल्कू के कुछ एक संवाद भी हैं जो कथावस्तु को अति रोचक बनाते हैं। इस कहानी की शैली वर्णनात्मक है, जिसके कारण कथोपकथन की सृष्टि कम हुई है।

वातावरण- 'पूस की रात' सामाजिक परिवेश से ली गई कहानी है। इसमें सामाजिक जीवन के एक वर्ग विशेष के वातावरण की झांकी देखने को मिलती है। किसानों की निर्यात, दीनता, उनकी दैनिक परिचर्या और समस्या आदि इस कहानी के देशकाल के मूल तत्व हैं। 'पूस की रात' कहानी में जिस वातावरण को चित्रित किया गया है वह आधुनिक भारत के किसानों की वर्तमान नियति को उजागर करता है-खेत की फसल के सत्यानास हो जाने के बाद मुन्नी की चिंता-कि अब मजदूरी करके मालगुजारी अदा करनी पड़ेगी, भारत के छोटे किसानों के एक बहुत बड़े वर्ग की परिस्थितियों को उजागर करती है। इसी प्रकार किसानों के कर्ज से लदे होने, अपनी आवश्यकता का सामान न खरीद पाने, साधनहीनता की स्थिति में कुछ भी न कर सकने की स्थिति में होने आदि कुछ ऐसे सूत्र और प्रसंग इस कहानी में हैं जो कथात्मक वातावरण के स्वरूप का बोध देते हैं।

'पूस की रात' कहानी में पूस की रात के प्राकृतिक वातावरण का भी चित्रण हुआ है। इस वातावरण की योजना को हम आँचलिक वातावरण की संज्ञा दे सकते हैं। 'पूस की रात' में भारत के जिन इलाकों में कड़ाके की ठंड पड़ती है, उसी आँचलिक प्राकृतिक वातावरण का परिचन इन प्रसंगों में मिलता है। इस कहानी में वर्णित कथावस्तु रात के वातावरण में घटित होती हैं।

भाषा-शैली- प्रेमचंद जी की कहानियों की भाषा अपना जोड़ नहीं रखती है। सहज प्रवाहपूर्ण चलती हुई मोहक हिन्दी भाषा का जो स्वरूप प्रेमचंद की कहानियों में मिलता है वही आगे आने वाली साहित्य रचनाओं के लिए आदर्श बना। प्रेमचंद जी की कहानियों की भाषा सरल, आम आदमी की भाषा है जो आम व्यवहार में प्रचलित उर्दू और लोकभाषाओं के शब्दों से मिश्रित है। पूस की रात कहानी की भाषा का स्वरूप वही है जो प्रेमचंद जी की अन्य श्रेष्ठ कहानियों की भाषा का है। इस कहानी की भाषा का एक स्वरूप दृष्टव्य है-

"हल्कू ने आग जमीन पर रख दी और पत्तियां बटोरने लगा। जरा देर में पत्तियों का एक ढेर लगाया। हाथ ठिठुरे जाते थे। नंगे पांव गले जाते थे और वह पत्तियों का पहार खड़ा कर रहा था। इसी अलाव में वह ठंड को जलाकर भस्म कर देगा।"

प्रेमचंद जी की कहानियों की सहज स्वाभाविक भाषा का सामान्य रूप है जो समग्र रूप में दिखाई देगा जिसमें संवेदना है, तीव्रता है और स्निग्धता के साथ एक मौलिक मनोहरता है। 'पूस की रात' कहानी की भाषा में उपर्युक्त स्वरूप के अतिरिक्त सांकेतिक, व्यंग्य प्रधान अर्धगर्भित भाषा का प्रांजल स्वरूप भी देखने को मिलेगा।

"वह अपनी दीनता से आहत न था, जिसने उसे आज इस दिशा में पहुँचा दिया। न ही इस अनोखी मैत्री से जैसे उसी आत्मा के सब द्वार खोल दिये थे और उसका एक अणु प्रकाश में चमक रहा था।"

'पूस की रात' कहानी की भाषा में साहित्यिक बोझिलता नहीं है। जटिल शब्दों अथवा बोझिल वाक्यों का प्रयोग बिल्कुल नहीं हुआ है। भाषा आम व्यवहार की है, जिसे साधारण से साधारण स्तर का पाठक भी आसानी से समझ सकता है। 'पूस की रात' कहानी की भाषा को व्यावहारिक भाषा भी कहा जा सकता है।

इस कहानी की कथा शैली भी विलक्षण एवं कौशलपूर्ण है। 'पूस की एक रात' के शीत और ठंड लगने के सूक्ष्म प्रसंग को लेकर कथाकार ने बड़ी कुशल अभिव्यक्ति प्रदान की है। भाव या कल्पना कितने भी ऊँचे स्तर की हो, यदि वे कलात्मक अभिव्यक्ति के अवसर नहीं कर पाते हैं

तो उनकी कोई सार्थकता नहीं है। पूस की रात में भयानक सर्दी एवं अंधकार हल्कू को एक क्रिया पर ठहराव देकर, कथाकार ने अपूर्व कौशल के साथ पिशाच की तरह बर्फीली हवा और भयंकर शीत का चित्रित किया है। कथा हल्कू की क्रियाओं से गति प्राप्त करती है। ऐसा लगता है कि धीरे-धीरे पूस की रात के बढ़ने के साथ ही शीत बढ़ने और कथा-विकास का चरमोत्कर्ष की ओर बढ़ने का क्रम एक साथ चलता है।

उद्देश्य- 'पूस की रात' कहानी हल्कू के विपन्न जीवन का चित्र है। हल्कू आधुनिक भारत के निचले स्तर के एक बहुत बड़े वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। 'पूस की रात' कहानी में हल्कू के माध्यम से कथाकार ने आधुनिक भारत के दीन कर्जदार किसानों की वास्तविक तस्वीर चित्रित करने का प्रयत्न किया है, जिसमें वह पूर्ण सफल हुआ है। टूटे और हारे हुए किसानों की समस्या को उठाकर कथाकार ने उनके समाप्त होते भविष्य की ओर आँख उठाने का संदेश इस कहानी से दिया है। हल्कू जैसे किसान क्या महाजनों के कर्जदार बनकर ही पीढ़ी दर पीढ़ी जीते और ठंड से कांपते रहेंगे ? यह कहानी सामाजिक चेतना और जागृति प्रदान करती है।

कहानी के तत्वों के आधार पर "गुंडा" कहानी की समीक्षा

कहानी के तत्व इस तरह हैं- (1) वर्गीकरण एवं कथावस्तु, (2) पात्र एवं चरित्र चित्रण, (3) भाषा एवं शैली, (4) उद्देश्य, (5) मनोरंजकता एवं समस्याएं, (6) देशकाल एवं वातावरण, (7) संवाद एवं कथोपकथन।

वर्गीकरण- वर्गीकरण की दृष्टि से गुंडा एक ऐतिहासिक कहानी है, जिसमें अंग्रेजों एवं काशी के राजा पर उनका आक्रमण इत्यादि की घटना है।

कथावस्तु- इस कहानी की कथावस्तु सन् 1881 की है, जब काशी के राजा चेतसिंह थे एवं उन्हें हिरासत में लेने के लिए अंग्रेजों ने उन्हें घेर लिया था।

कहानी संक्षेप में इस तरह है। नन्हकूसिंह एक प्रतिष्ठित जमींदार का पुत्र है, जो अपनी समस्त संपत्ति जुएं में हारकर तथा उसे दान देकर गुण्डा बन गया था। वह जीवन के प्रारंभ में राजधानी पन्ना से प्रेम करने लगा था, पर उस समय के राजा बलवंतसिंह ने पन्ना से बलात विवाह कर लिया और नन्हकूसिंह विद्रोही हो गया। नन्हकूसिंह जुआ खेलता तथा दुलारी वैश्या को कोठे के नीचे बैठकर उसका गाना सुनता था, वह कोठे पर कभी नहीं चढ़ा। एक बार कुबरा मौलवी दुलारी को बुलाने आया तो नन्हकूसिंह ने उसे झापड़ मार कर भगा दिया, वैसे कुबरा मौलवी दरोगा था तथा उसका बड़ा दबदबा था। एक समय बोधीसिंह के पुत्र की बरात आ रही थी-नन्हकू तथा बोधीसिंह की एक बार खटपट हो गई थी आज नन्हकू अड़ गया कि बरात नहीं जा पाएगी, इस पर बोधीसिंह ने कहा कि जब समधीजी (नन्हकूसिंह) यहाँ हैं तो बासत के साथ मुझे जाने की आवश्यकता नहीं है और वे लौट गए। नन्हकूसिंह ने पूरी बारात की व्यवस्था की बोधीसिंह के पुत्र का विवाह करवाया-जो खर्च हुआ उसे लगाया ब्याह कराकर दूसरे दिन इसी दुकान पर आकर रुक गए लड़के और उसकी बारात को घर भेज दिया।

अंग्रेजों ने धांधली मचा रखी थी तथा उन्होंने राजा चेतसिंह तथा रानी पन्ना को हिरासत में लेने के लिए घेर लिया। नन्हकूसिंह को जब पता चला तो वे अपने साथियों के साथ राजमहल पहुँच गये, उन्होंने पन्ना और चेतसिंह को कहा आप नाव से निकल जाइए मैं अंग्रेजों को रोकता हूं। नन्हकूसिंह ने डटकर अंग्रेज सैनिकों का सामना किया तथा राजा चेतसिंह एवं रानी पन्ना को वहाँ से पलायन करने में मदद ही नहीं की स्वयं को उत्सर्ग कर दिया। वह काशी का एक गुंडा था।

पात्र- कहानी में पात्र इस प्रकार हैं-(1) नन्हकूसिंह, (2) बंशी, (3) मन्नू तमोली, (4) दुलारी-वेश्या, (5) मलूकी, (6) बोधीसिंह, (7) बल्लू सारंगीवाला, (8) मौलवी अलाउद्दीन कुबरा,

(9) महाराजा चेतसिंह, (10) राजमाता पन्ना, (11) बलवंत सिंह, (12) निरंजनसिंह नन्हकू का पिता, (13) हिम्मतसिंह, (14) जनानी ड्योढ़ी का दरोगा, (15) इस्टाकर।

इनमें से अधिकतर पात्रों के नामों का उल्लेख है वे कहानी में सक्रिय नहीं हैं, विशिष्ट पात्रों में नन्हकूसिंह, दुलारी, राजमाता पन्ना, राजा चेतसिंह और मौलवी कुबरा हैं।

चरित्र-चित्रण- नन्हकूसिंह-कहानी का नायक है जो जमींदार निरंजनसिंह का पुत्र है। अपनी समस्त संपत्ति उड़ाकर गुंडा बन गया है। वह एक चरित्रवान वीर व्यक्ति है। दुलारी के कोठे के ऊपर कभी नहीं गया-वह नीचे से संगीत सुनता है। प्रसादजी के शब्दों में उसकी चारित्रिक विशेषताएं देखिए-

जीवन की किसी अलभ्य अभिलाषा से वंचित होकर जैसे प्राय: लोक विरक्त हो जाते हैं, ठीक उसी तरह किसी मानसिक चोट से घायल होकर, एक प्रतिष्ठित जमींदार का पुत्र होने पर भी, नन्हकूसिंह गुण्डा हो गया था। दोनों हाथ से उसने अपनी संपत्ति लुटाई। नन्हकूसिंह ने बहुत-सा रुपया खर्च करके जैसा स्वांग खेला था, उसे काशी वाले बहुत दिनों तक नहीं भूल सके। बसंत ऋतु में यह प्रहसनपूर्ण अभिनय खेलने के लिए उन दिनों प्रचुर धन, बल, निर्भीकता और उच्छृंखलता की आवश्यकता होती थी। एक बार नन्हकूसिंह ने भी एक पैर में नूपुर, एक हाथ में तोड़ा, एक आँख में काजल, एक कान में हजारों के मोती तथा दूसरे कान में फटे हुए जूतों का तल्ला लटकाकर, एक में जड़ाऊ मूड़ की तलवार, दूसरा हाथ आभूषणों से लदी हुई अभिनय करने वाली प्रेमिका के कंधे पर रखकर गया था-

'कहीं बैंगन वाली मिले तो बुला देना।'

वह पहले पन्ना से प्रेम करता है, पर उससे ब्याह नहीं कर पाता। वह आहत प्रेमी है और स्त्रियों से घृणा करने लगता है एवं मरने के लिए बहुत कुछ करता है, पर मर नहीं पाता, उसके चरित्र का उद्‌घाटन यह घटना कहती है-

स्थिर होकर उसने कहा-'दुलारी ! जीवन में आज यह पहला ही दिन है कि एकांत रात में एक स्त्री मेरे पलंग पर आकर बैठ गई है, मैं चिरकुमार ! अपनी एक प्रतिज्ञा का निर्वाह करने के लिए सैकड़ों असत्य, अपराध करता फिर रहा हूं। क्यों ? तुम जानती हो ? मैं स्त्रियों का घोर विद्रोही हूं और पन्ना !...पर उसका क्या अपराध ! अत्याचारी बलवंतसिंह के कलेजे में बिछुआ मैं न उतार सका। किन्तु पन्ना ! उसे पकड़कर गोरे कलकत्ते भेज देंगे ! वहीं ...।'

नन्हकूसिंह उन्मत्त हो उठा था। दलारी ने देखा, नन्हकू अंधकार में ही वह वटवृक्ष के नीचे पहुँचा और गंगा की उमड़ती हुई धारा में डोंगी खोल दी-उसी घने अंधकार में। दुलारी का हृदय कांप उठा।

वह अत्यंत दयालु भी है तथा वीर तथा साहसी भी है। राजा चेतसिंह एवं रानी पन्ना को बचाने के लिए मौलवी कुबरा एवं अंग्रेज एकाधिकारी ईस्टर का वध कर देता है। राजा चेतसिंह और रानी पन्ना को महल से बाहर पलायन करने में सहायता करता है एवं प्राणोत्सर्ग कर देता है। वह गुण्डा होते हुए भी महान है।

दुलारी-सामान्य वेश्या है जो मन में नन्हकूसिंह से प्रेम करती है तथा राजमाता पन्ना के यहाँ भजन गाती है। वह नन्हकू के संपर्क में आती है। नन्हकू वासना से दूर रहता है। उसे नन्हकू अपने मन की व्यथा सुनाता है। वह राजमाता पन्ना को नन्हकूसिंह के बारे में अवगत कराती है।

अन्य पात्र सामान्य हैं तथा अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं।

भाषा एवं शैली- प्रसादजी सामान्यत: क्लिष्ट भाषा का प्रयोग करते हैं, पर गुण्डा कहानी की भाषा एकदम सरल-सहज है। प्रसगान सार व्यंग्यात्मक, विक्टणस्मक हो जाती है। शब्दों में सबलता है वह अत्यंत प्रभावशाली है। उसमें संस्कृत के तत्सम तद्भव, देशज, विदेशी सभी प्रकार के शब्द हैं। वह कहीं चुटीली है तो कहीं मरहम लगाती है। भाषा में सरसता है, वह मार्मिक भी है। उसमें प्रसंगानुसार लोकोक्ति मुहावरों का प्रयोग भी है। वह अमिधा-लक्षणा और व्यंजना शब्द शक्ति से परिपूर्ण है।

शैली प्रसादजी की शैलियां इस तरह हैं-(1) वर्णनात्मक शैली, (2) विश्लेषणात्मक, (3) भावात्मक चित्रात्मक। इसके अतिरिक्त (4) ऐतिहासिक, (5) चरित्र प्रधान शैली का प्रयोग किया है। वह व्यंजक एवं मनोरंजक है, उनकी शैली का काव्यमय अलंकृत शैली है, उन्होंने नवीन शैली का प्रयोग किया है।

उद्देश्य- गुंडा कहानी में निम्नलिखित उद्देश्य निहित हैं-

(1) ऐतिहासिक घटना राजा चेतसिंह को हिरासत में लेने इत्यादि का प्रकाशन।

(2) उस समय की राजनीतिक, सामाजिक अवस्था का प्रकाशन।

(3) लोग जिसे गुण्डा कहते हैं, वे कितने चरित्रवान हैं एवं ऐसे विशिष्ट चरित्रों का उद्घाटन।

(4) स्वयं के अध्ययन की अभिव्यक्ति एवं मनोरंजन प्रदान करने की प्रवृत्ति का प्रकाशन।

मनोरंजकता एवं समस्याएं- गुण्डा कहानी अत्यंत रोचक है, उसकी भाषा अत्यंत सहज मधुर एवं मनमोहक है। घटना क्रम का वर्णन इतना रोचक है कि हमारे सामने चलचित्र की भांति दृश्य दिखलाई पड़ने लगते हैं। शैली अत्यंत मधुर एवं प्रभावोत्पादक है। कहानी पाठक को बाँध लेती है। पर्याप्त मनोरंजन के साथ ज्ञानवर्धक भी है। उसमें राजनीतिक तथा सामाजिक समस्याओं का निरूपण है। जिसे हम गुण्डा कहते हैं, उसकी समस्या न होकर अंग्रेजों की कुटिल चाल एवं तात्कालिक परिस्थिति समस्याओं का समावेश है।

देशकाल वातावरण- यह भारत के काशी नगर की कहानी है अत: भारतीय परिवेश की कहानी है। सन् 1881 की घटना पर आधारित है। कहानी में वातावरण का निर्वाह अत्यंत कुशलतापूर्वक किया गया है-नन्हकूसिंह का गुण्डा बनना, पन्ना से प्रेम, दुलारी का गीत सुनना, दुलारी का नन्हकू से प्रेम, बोधीसिंह के पुत्र का विवाह वर्णन, कुबरा मौलवी का आविर्भाव-राजा चेतसिंह के लिए उत्सर्ग इत्यादि घटनाओं के वातावरण का निर्माण अत्यंत सटीक तथा मनोहारी है।

संवाद- कहानी में प्रचुर संवाद हैं, वे छोटे-छोटे एवं प्रसंगानुकूल हैं। वे प्रभावोत्पादक एवं मार्मिक हैं। इनकी भाषा भी प्रसंग के अनुसार व्यंग्यात्मक, चुटीली या सामान्य है। एक मार्मिक संवाद देखें-

दुलारी ने कहा-'बाबू साहब, यह क्या? स्त्रियों पर भी तलवार चलाई जाती है।'

छोटे से दीपक के प्रकाश में वासना भरी रमणी का मुख देकर नन्हकू हंस पड़ा। उसने कहा-"क्यों बाईजी ! क्या इसी समय जाने की पड़ी है ! मौलवी ने फिर बुलाया है क्या?" दुलारी नन्हकू के पास बैठ गई। नन्हकू ने कहा-'क्या तुमको डर लग रहा है?'

'नहीं मैं कुछ पूछने आई हूं।'

'क्या?'

'क्या...यही कि...कभी तुम्हारे हृदय में...'

'उसे न पूछो दुलारी ! हृदय को बेकार ही समझकर तो उसे हाथ में लिए फिर रहा हूं। कोई कुछ कर देता है-कुचलता-चीरता-उछलता ! मर जाने के लिए सब कुछ तो करता हूं पर मरने नहीं पाता।'

छोटे संवादों का एक और उदाहरण देखें-

इसी समय किसी ने पुकारा-हिम्मतसिंह

खिड़की में से सिर निकालकर हिम्मतसिंह ने पूछा-कौन ?

'अच्छा, तुम अब तक बाहर ही हो ?'

'पागल ! राजा कैद हो गए हैं। छोड़ दो इन सब बहादुरों को ! हम एक बार इनको लेकर शिवालय घाट जाएंगे।'

'ठहरो'-कहकर हिम्मतसिंह ने कुछ आज्ञा दी, सिपाही, बाहर निकले। नन्हकू की तलवार चमक उठी। सिपाही भीतर भागे। नन्हकू ने कहा-'नमकहरामों, चूड़िया पहन लो।' लोगों को देखते-देखते नन्हकू चला गया। कोतवाली के सामने फिर सन्नाटा हो गया।

"अपना-अपना भाग्य"

लेखक अपने मित्र के साथ नैनीताल में बिना किसी उद्देश्य के घूम रहे थे। वे एक बैंच पर बैठ गए। संध्या धीरे-धीरे उतरती चली जा रही थी। तभी एक काली-सी मूर्ति उनकी तरफ आती दिखाई दी। वह एक लड़का था, जो अपने बड़े-बड़े बाल खुजलाता चला आ रहा था। उसके पैर तथा सिर नंगे थे और एक मैली-सी कमीज लटका रखी थी। वह कोई 10-12 साल का होगा। मित्र ने उसे आवाज देकर पूछा- दुनिया सो गई, तू ही क्यों घूम रहा है ? लड़का चुप रहा। अन्य प्रश्नों के उत्तर में उसने बताया कि वह यहीं-कहीं सोएगा, कल दुकान पर सोया था, आज नौकरी से हटा दिया गया है। सारा काम करने पर उसे एक रुपया और झूठा खाना मिलता था। आज वह भूखा है। उसके माँ-बाप हैं, जो पन्द्रह कोस दूर गाँव में रहते हैं। वह भूख से तंग होकर गाँव से भाग आया है। इतना जानकर वे उसे अपने साथ लेकर एक होटल पहुँचे, जहाँ उनका परिचित एक वकील ठहरा हुआ था। वकील के पूछने पर उन्होंने कहा- आपको नौकर की जरूरत थी, इस लड़के को रख लीजिए। वकील साहब बोले-"ये पहाड़ी बड़े शैतान होते हैं, आप भी क्या अजीब हैं, उठा लाए कहीं से, लो जी यह नौकर रख लो।" लेखक तथा उसके मित्र के बार-बार कहने पर भी वकील साहब ने उसे नौकर नहीं रखा।

लेखक तथा उसके मित्र को तेज सर्दी का अनुभव हुआ, पर वे संसार को स्वार्थी कह-कर अपने-अपने बिस्तर में गर्म होने चले गए। दूसरे दिन वह लड़का उनके 'होटल-डि-पब' में नहीं आया। मोटर में सवार होते ही यह समाचार मिला-"पिछली रात, एक पहाड़ी बालक, सड़क के किनारे-पेड़ के नीचे ठिठुरकर मर गया।" मरने के लिए उसे वही जगह, वही दस बरस की उम्र और वही काले चिथड़ों वाली कमीज मिली। उस गरीब के मुंह, छाती, मुट्ठियों और पैरों पर बर्फ की हल्की-सी चादर चिपक गई थी, मानो इस दुनिया की बेहयाई को ढकने के लिए प्रकृति ने सफेद और ठण्डे कफन का प्रबन्ध कर दिया हो। सबका अपना-अपना भाग्य है-यही सोचकर वे लोग रह गए।

अपना-अपना भाग्य' कहानी में समाज

अपना-अपना भाग्य' कहानी के माध्यम से लेखक ने समाज में व्याप्त स्वार्थ तथा साधन-सम्पन्न लोगों की हृदयहीनता की प्रवृत्ति को उजागर किया है। इस कहानी में लेखक ने बड़े ही मार्मिक ढंग से एक ऐसे गरीब लड़के का चित्रण किया है, जो नैनीताल की भयंकर सर्दी में भूख तथा ठंड से ठिठुर कर मर जाता है लेकिन समाज के सुख-सुविधा से सम्पन्न लोग उसकी कोई

सहायता नहीं करते। वकील साहब उसे नौकर रखने से इसलिए मना कर देते हैं कि उन्हें उसके चरित्र पर ही सन्देह होता है। लेखक भी अपने मित्र के साथ उस लड़के को नैनीताल की भयंकर ठंड में अकेला छोड़कर आ जाता है। यह उनकी स्वार्थी मनोवृत्ति की ही सूचक है।

दूसरे, समय पर तो समाज के साधन-सम्पन्न लोग मदद नहीं करते और बाद में उसके कारुणिक अन्त पर यह सोचकर अपने मन को सांत्वना देते हैं कि उनका भाग्य ही ऐसा था।

कथा तत्वों के आधार पर "राजा निरबंसिया" कहानी की समीक्षा

कथावस्तु- एक कहानी एक लोककथा पर आधारित है। इसमें मानवीय संवेदना को प्रकट किया गया है। आज का युवक जगपति अपनी पत्नी चंदा जो कि पतिता है, उसे अपना नहीं सकता है। जबकि युगों पूर्व चरित्रहीन रानी को राजा निरबंसिया ने लोक मर्यादा की परवाह न करते हुए अपना लिया था। चंदा एक सतीत्व को मानने वाली ग्रामीण नारी है, वह अपने पति जगपति के इलाज के लिए सारे कष्ट सहन करती है। जगपति की निर्धनता, उसके द्वारा बचनसिंह से आर्थिक सहायता प्राप्त करना, उसका नपुंसक होना तथा चंदा के मातृत्व पर प्रहार करना, चंदा को बचनसिंह से अनैतिक संबंध स्थापित करने हेतु बाध्य कर देता है-

बचनसिंह आवाक् ताकता रह गया तथा चंदा ऐसे वापस लौट पड़ी, जैसे किसी काले पिशाच के पंजों से मुक्ति मिली हो। बचनसिंह के सामने क्षण-भर में सारी परिस्थिति कौंध गई और उसने वहीं से बहुत संयत आवाज में जबान को दबाते हुए जैसे बड़ी धीमी आवाज में-'चंदा!' वह आवाज इतनी बेआवाज थी और निरर्थक होते हुए भी इतनी सार्थक थी कि उस खामोशी में अर्थ भर गया।

चंदा रुक गई।

बचनसिंह उसके पास जाकर रुक गया।

सामने का घना पेड़ स्तब्ध खड़ा था, उसकी काली परछाई की परिधि जैसे एक बार फैलकर उन्हें अपने वृत्त में समेट लेती और दूसरे ही क्षण मुक्त कर देती। दवाखाने का लैंप सहसा भभककर रुक गया और मरीजों के कमरे में से एक कराह की आवाज दूर मैदान के छोर तक जाकर डूब गई।

कथा में चंदा व्यभिचार के कारण बचनसिंह के पुत्र की माँ नहीं बनती वरन् जगपति की पौरुषहीनता, गरीबी, नारी का आहत मातृत्व उसे पुत्र की माँ बनने के लिए प्रेरित करते हैं। अंत में जगपति परिस्थितियों से समझौता नहीं कर पाता तथा आत्महत्या कर लेता है।

पात्र एवं चरित्र-चित्रण- प्रस्तुत कहानी में प्रमुख पात्र तीन हैं-जगपती, चंदा तथा बचनसिंह। सहायक पात्र हैं-मुंशीजी, जगपती की बेवा चाची आदि।

कथा जगपती के चरित्र को उजागर करती है। जगपती नपुंसक है। वह शादी के छह साल बाद भी बाप नहीं बन पाता है। इससे चंदा के मातृत्व को ठेस पहुँचती है। वह अपनी नपुंसकता न देख चंदा को ही उसका दोष देता रहता है। ऐसी स्थिति में चंदा बचनसिंह से संबंध स्थापित कर एक पुत्र को जन्म देती है। जगपती उसकी इस करतूत को सहन नहीं कर पाता है। अंत में वह आत्महत्या कर लेता है।

चंदा का चरित्र एक पतिव्रता नारी का है पर वह मातृत्व प्राप्त करने की इच्छा से कंपाउंडर बचनसिंह से संबंध बना बैठती है। यह उसके चरित्र की कमजोरी है। वह कथा के प्रारंभ में अपने पति की सेवा भी खूब करती है इससे उसके चरित्र की सेवा भावी होने की विशेषता भी प्रकट होती है। वह चरित्र की हीन नहीं थी पर उसे मातृत्व की चाह ने इस मार्ग पर चलने के लिए विवश कर दिया।

कथा के अन्य पात्र कथा को गति देने में अपनी भूमिका का निर्वाह करते हैं जिससे पाठक इस कहानी में स्वयं को उलझा हुआ पाता है। पात्र तथा चरित्र-चित्रण की दृष्टि से कहानी उत्कृष्ट है।

कथोपकथन- राजा निरबंसिया कहानी के कथोपकथन अत्यंत स्वाभाविक और यथार्थपूर्ण हैं। इसमें कहानीकार ने अत्यंत सीमित कथोपकथनों को प्रस्तुत किया है। दूसरे शब्दों में इस कहानी में कथाकार ने सिर्फ वर्णनात्मकता और चित्रात्मकता के माध्यम से संपूर्ण कथा-तत्व को प्रस्तुत कर दिया है। जो कुछ भी संवाद इसमें आए हैं वे सभी कुछ स्वाभाविक तथा प्रसंगत: आये हैं। उनमें कथाकार से किसी प्रकार से अस्वाभाविकता या अप्रासंगिकता नहीं आ पाई है। कुछ उदाहरण देखने योग्य हैं।

चंदा ने जगपती की कलाई दाबते-दाबते धीरे से कहा, "कंपाउंडर साहब कह रहे थे..." और इतना कहकर वह जगपती का ध्यान आकृष्ट करने के लिए चुप हो गई।

"क्या कह रहे थे?" जगपती अनमने स्वर में बोला।

"कुछ ताकत की दवाइयां तुम्हारे लिए जरूरी हैं।"

"मैं जानता हूं।"

"पर ..."

"देखो चंदा, चादर के बराबर ही पैर फैलाये जा सकते हैं। हमारी औकात इन दवाइयों की नहीं।"

"औकात आदमी की देखी जाती है कि पैसे की, तुम तो..."

"देखा जायेगा।"

"क्या कंपाउंडर साहब इंतजाम कर देंगे, उनसे कहूंगी मैं।"

"नहीं चंदा, उधारखाते से मेरा इलाज नहीं होगा...चाहे एक के चार दिन लग जाएं।"

"इसमें तो..."

"तुम नहीं जानती, कर्ज कोढ़ का रोग होता है, एक बार लगने से तन तो गलता ही है, मन भी रोगी हो जाता है।"

"लेकिन..." कहते-कहते वह रुक गई।

जगपती ने अपनी बात की टेक रखने के लिए दूसरी ओर मुंह घुमा लिया।

देशकाल या वातावरण- राजा निरबंसिया कहानी का देशकाल या वातावरण सामयिक है। यह लोककथा पर आधारित है अत: ग्रामीण परिवेश के दृश्य अधिक हैं; यथा-

कस्बे का अस्पताल था। कंपाउंडर ही मरीजों की देखभाल करते। बड़ा डॉक्टर तो नाम के लिए था या कस्बे के बड़े आदमियों के लिए। छोटे लोगों के लिए तो कंपाउंडर साहब ही ईश्वर के अवतार थे। मरीजों की देखभाल करने वाले रिश्तेदारों की खाने-पीने की मुश्किलों से लेकर मरीज की नबज तक संभालते थे। छोटी-सी इमारत में अस्पताल आबाद था। रोगियों के लिए सिर्फ छह-सात खाटें थीं। मरीजों के कमरे में लगा दवा बनाने का कमरा था, उसी में एक ओर एक आराम-कुर्सी थी और एक नीची-सी मेज। उसी कुर्सी पर बड़ा डॉक्टर आकर कभी-कभार बैठता, नहीं तो बचनसिंह कंपाउंडर ही जमा रहता। अस्पताल में या तो फौजदारी के शहीद आते या गिर-गिरा के हाथ-पैर तोड़ लेने वाले एक आध लोग। छटे छना से कोई औरत दिख गई, तो दिख गई, जैसे उन्हें कभी रोग घेरता ही नहीं था। कभी कोई बीमार पड़ती, तो घर वाले हाल बता के आठ-दस रोज की दवा एक साथ ले जाते और फिर उनके जीने-मरने की खबर तक न मिलती।

भाषा-शैली- राजा निरबंसिया कहानी की भाषा-शैली निम्न-मध्यमवर्गीय समाज की भाषा-शैली है। पात्रानुकूलता एवं घटनापूर्णता इस कहानी की भाषा की सबसे बड़ी पहचान है। उर्दू के वे ही शब्द प्रयोग हुए हैं जो सामान्य और साधारण पाठक वर्ग के अनुकूल हैं। इस तरह के बहुत से शब्द कहानी में दिखाई देते हैं। वाक्य विधान अधिक गठित तथा विस्तृत हैं। उदाहरण-

"अब आते ही होंगे, बैठिए न दो मिनट और !...अपनी आँख से देख लीजिए और उन्हें समझाते जाइए कि अभी तंदुरुस्ती इस लायक नहीं, जो दिन-दिन-भर घूमना बरदाश्त कर सकें।"

"हाँ...भई, कमजोरी इतनी जल्दी नहीं मिट सकती, ख्याल नहीं करेंगे, तो नुकसान उठायेंगे।" कोई पुरुष का स्वर था यह।

जगपती असमंजस में पड़ गया। वह एकदम भीतर घुस जाए? इसमें क्या हर्ज है? पर जब उसने पैर उठाये, तो वे बाहर को जा रहे थे। बाहर बरोठे में साइकिल को पकड़ते ही उसे सूझ आई, वहीं से जैसे अंजान बनता बड़े प्रयत्न से आवाज को खोलता चिल्लाया, "अरे चंदा ! यह साइकिल किसकी है? कौन मेहरबान..."

चंदा उसकी आवाज सुनकर कमरे से बाहर निकलकर जैसे खुशखबरी सुना रही थी, "अपने कंपाउंडर साहब आये हैं, खोजते-खोजते आज घर का पता लगा पाये हैं, तुम्हारे इंतजार में बैठे हैं।"

"कौन बचनसिंह?...अच्छा, अच्छा...वही तो मैं कहूं, भला कौन..." कहता जगपती पास पहुँचा और बातों में इस तरह उलझ गया, जैसे सारी परिस्थिति उसने स्वीकार कर ली हो।

उद्देश्य- नई कहानी को नया रूप प्रदान करने में कमलेश्वर का विशिष्ट योगदान है। कमलेश्वर ने मध्यवर्गीय जीवन के यथार्थ को अपनी कहानियों में अभिव्यक्त किया है। समसामयिक 'युग-सत्य' को उनकी सजग जीवन दृष्टि ने सहजता से पहचानकर, मध्यम वर्ग की कुंठाओं, वर्जनाओं, हताशाओं, आर्थिक विषमताओं, संक्रमण की स्थितियों को मानवीय संवेदना के स्तर पर अभिव्यक्त किया है। समकालीन युगबोध के विभिन्न आयामों को स्पष्ट करने में, उन्होंने अपने अदम्य साहस से एक नवीन दिशा, अपनी लेखकीय प्रतिबद्धता को प्रदान की है। दुष्यंत कुमार की दृष्टि में-"प्रगति में परिवर्तन का बोध निहित है तथा कमलेश्वर की प्रगति इसी परिवर्तन की प्रतिक्रिया को समझने का परिणाम है। उसकी कहानियां, भाषा और कथ्य समाज के बदलते हुए भिन्न-भिन्न परिवेशों की देन है। उसका स्टैमिना परिवर्तन की तेज से तेज रफ्तार में उसका सहायक होता है, इसलिए कमलेश्वर कभी पिछड़ता नहीं और न प्रयत्न शिथिल होता है।" 'राजा निरबंसिया' से 'कस्बे का आदमी' के बाद 'नीली झील' से लेकर 'खोई हुई दिशाएं' तक की उसकी कहानियां मध्यवर्गीय जीवन की सादगी से शुरू होकर महानगर की आधुनिकतम संचेतनाओं तथा संश्लिष्टताओं का प्रतिनिधित्व करती हैं।"

कहानी के तत्वों के आधार पर "सिक्का बदल गया" नामक कहानी की समीक्षा

1. **वर्गीकरण एवं कथावस्तु-** सिक्का बदल गया एक सामाजिक कहानी है। जो समस्या प्रधान कहानी है तथा वह देश के विभाजन पर आधारित है। कहानी का सारांश इस प्रकार है-

पाकिस्तान स्थित एक ग्राम की स्वामिनी शाहनी है उसके पति का बड़ा मान था एवं उसकी मृत्यु के बाद शाहनी ग्राम का कार्य देखती है। भारत विभाजन के कारण लोगों की स्थितियां बदल गईं। पाकिस्तान में रहने वाले हिन्दू भारत की ओर चल पड़े उनकी संपत्तियां लूट ली गई। इस ग्राम के लोगों ने श्री शाहनी की हत्या एवं उसकी संपत्ति को लूटने की योजना बनाई किन्तु शोरा जो शाहनी का सेवक था तथा कई हत्याएं कर चुका था शाहनी की हत्या के लिए तैयार नहीं हुआ।

निर्णय यह रहा कि शाहनी अन्य लोगों के साथ ट्रक में बैठकर भारत चली जावेगी। उसके पड़ोसी तथा उसके अधीन दु:खी हुए उन्होंने कभी ऐसा नहीं सोचा था। जाने की तैयारी हुई तो थानेदार ने कहा कुछ सोना-चांदी अपने साथ ले लो। वह चित्रण देखें-

"शाहनी !" ड्योढ़ी के निकट जाकर वह बोला, "देर हो रही है शाहनी। (धीरे से) कुछ साथ रखना हो तो रख लो। कुछ साथ बाँध लिया है? सोना-चांदी ..."

शाहनी अस्फुट स्वर में बोली, "सोना-चांदी ! जरा ठहरकर सादगी से कहा, "सोना-चांदी ! बच्चा, वह सब तुम लोगों के लिए है। मेरा सोना तो एक-एक जमीन में बिछा है।"

दाऊद खां लज्जित-सा हो गया-"शाहनी, तुम अकेली हो, अपने पास कुछ होना जरूरी है। कुछ नकदी ही रख लो। कान का कुछ पता नहीं..."

"वक्त ? शाहनी अपनी गीली आँखों से हंस पड़ी-"दाऊद खां, इससे अच्छा वक्त देखने के लिए क्या मैं जिंदा रहूंगी।" किसी गहरी वेदना और तिरस्कार से कह दिया शाहनी ने।

दाऊद खां निरुत्तर है। साहस कर बोला, "शाहनी ...कुछ नकदी जरूरी है।"

"नहीं बच्चा, मुझे इस घर से"-शाहनी का गला रुंध गया-"नकदी प्यारी नहीं। यहाँ की नकदी यहीं रहेगी।"

जब शाहनी चलने लगी तो उसके उपकार को याद कर सारा गांव रोने लगा सभी दु:खी हो गये।

चलते समय शाहनी ने धुंधली आँखों से हवेली को अंतिम बार देखा। कहानी का अंतिम दृश्य इस प्रकार है-

ट्रकें अब तक भर चुकी थीं। शाहनी अपने को खींच रही थी। गांव वालों के गलों में जैसे धुआँ उठ रहा है। शेरे, खूनी शेरे का दिल टूट रहा है। दाऊद खां ने आगे बढ़कर ट्रक का दरवाजा खोला। शाहनी बढ़ी। इस्माइल ने आगे बढ़कर भारी आवाज से कहा, "शाहनी, कुछ कह जाओ। तुम्हारे मुंह से निकली आसीस झूठी नहीं हो सकती !" और अपने साफे से आँखों का पानी पोंछ लिया। शाहनी ने उठती हुई हिचकी को रोककर रुंधे-रुंधे गले से कहा, "रब्ब तुम्हें सलामत रक्खे बच्चा, खुशियां बख्शे...।"

वह छोटा-सा जनसमूह रो दिया। जरा भी दिल में मेल नहीं शाहनी के। और हम-हम शाहनी को नहीं रख सके। शेरे ने बढ़कर शाहनी के पांव छुए-"शाहनी, कोई कुछ नहीं कर सका, राज ही पलट गया..." शाहनी ने कांपता हुआ हाथ मेरे शेरे के सिर पर रक्खा और रुक-रुककर कहा, "तुम्हें भाग लगे चन्ना।" दाऊद खां ने हाथ का संकेत किया। कुछ बड़ी-बूढ़ियां शाहनी के गले लगीं तथा ट्रक चल पड़ा।

अन्न-जल उठ गया। वह हवेली, नयी बैठक, ऊँचा चौबारा, बड़ा 'पसार', एक-एक करके घूम रहे हैं शाहनी की आँखों में ! कुछ पता नहीं, ट्रक चल रहा है या वह स्वयं चल रही है। आँखें बरस रही है। दाऊद खां विचलित होकर देख रहा है इस बूढ़ी शाहनी को। कहाँ जाएगी अब यह?

"शाहनी, मन में मैल न लाना। कुछ कर सकते तो उठा न रखते। वक्त ही ऐसा है। राज पलट गया है, सिक्का बदल गया है..."

रात को शाहनी जब कैंप में पहुँचकर जमीन पर पड़ी तो लेटे-लेटे आहत मन से सोचा-"राज पलट गया है...सिक्का क्या बदलेगा ? वह तो मैं वहीं छोड़ आयी... ।"

और शाहनी की आँखें और भी गीली हो गयीं ।

आसपास के हरे-हरे खेतों से घिरे गांवों में रात खून बरसा रही थी ।

शायद राज पलटा खा रहा था और सिक्का बदल रहा था..

2. **भाषा शैली-** कहानी की भाषा सामान्य खड़ी बोली है उसमें तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी शब्द हैं । उर्दू के शब्दों की बहुलता है । वह सरल सपाट भाषा है, मुहावरों का भी प्रयोग है जैसे आँखों का बरसना, राज पलटना, आँखें गीली होना इत्यादि । भाषा व्यंजक है उसमें लक्षणा व्यंजना का समावेश है । प्रसंगानुकूल एवं पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है । कहीं-कहीं अलंकृत भाषा का भी प्रयोग है । सारगर्भित भाषा कहानी का सौंदर्य बढ़ा देती है । एक उदाहरण प्रस्तुत है-

चेनाब का पानी आज भी पहले-सा सर्द था, लहरें लहरों को चूम रही थीं । वह दूर सामने कश्मीर की पहाड़ियों से बर्फ पिघल रही थी । उछल-उछल आते पानी के भंवरों से टकराकर कगारे गिर रहे थे, पर दूर-दूर तक बिछी रेत आज न जाने क्यों खामोश लगती थी । शाहनी ने कपड़े पहने, इधर-उधर देखा, कहीं किसी की परछाई न थी । पर नीचे रेत में अगणित पांवों के निशान थे । वह कुछ सहम-सी उठीं !

तात्पर्य यह है कि कहानी की भाषा समृद्ध तथा सशक्त है । कहानी में निम्नलिखित शैलियों का समावेश है-1. विवरणात्मक शैली, 2. भावात्मक शैली, 3. चित्रात्मक शैली, 4. व्यंग्यात्मक शैली ।

विवरणात्मक शैली का उदाहरण- हवेली आ गई । शाहनी ने शून्य मन से ड्योढ़ी में कदम रखा । शेरा कब लौट गया, उसका कुछ पता नहीं । दुर्बल-सी देह और अकेली, बिना किसी सहारे के ! न जाने कब तक वहीं पड़ी रही शाहनी । दुपहर आयी और चली गयी । हवेली खुली पड़ी है । आज शाहनी नहीं उठ पा रही । जैसे उसका अधिकार आज स्वयं ही उससे छूट रहा है । शाहजी के घर की मालकिन...लेकिन नहीं, आज मोह नहीं हो रहा । मानो पत्थर हो गयी है । पड़े-पड़े सांझ हो गयी, पर उठने की बात फिर भी नहीं सोच पा रही । अचानक रसूली की आवाज सुनकर चौंक उठी ।

चित्रात्मक शैली का उदाहरण- खद्दर की चादर ओढ़े, हाथ में माला लिये शाहनी जब दरिया के किनारे पहुँची तो पौ फट रही थी । दूर-दूर आसमान के परदे पर लालिमा फैलती जा रही थी । शाहनी ने कपड़े उतारकर एक तरफ रक्खे और, 'श्री...रम, श्री...राम' करती पानी में हो ली । अंजलि भरकर सूर्यदेवता को नमस्कार किया, अपनी उनींदी आँखों पर छींटे दिये और पानी से लिपट गयी !

भावात्मक शैली का उदाहरण- शाहनी ने दुपट्टे से सिर ढांपकर अपनी धुंधली आँखों में से हवेली को अंतिम बार देखा । शाहजी के मरने के बाद भी जिस कुल की अमानत को उसने सहेजकर रखा, आज वह उसे धोखा दे गयी । शाहनी ने दोनों हाथ जोड़ लिये-यही अंतिम दर्शन था, यही अंतिम प्रणाम था । शाहनी की आँखें फिर कभी इस ऊँची हवेली को न देख पायेंगी । प्यार ने जोर मारा-सोचा, एक बार घूम-फिरकर पूरा घर क्यों न देख आयी मैं ? जी छोटा हो रहा है, लेकिन जिनके सामने हमेशा बड़ी बनी रही हैं उनके सामने वह छोटी न होगी । इतना ही ठीक है । सब हो चुका है । सिर झुकाया । ड्योढ़ी के आगे कुलवधू की आँखों से निकलकर कुछ बूंदें चू पड़ीं । शाहनी चल दी- ऊँचा-सा भवन पीछे खड़ा रह गया । दाऊद खां, शेरा, पटवारी, जेलदार और बच्चे-बूढ़े, मर्द-औरतें सब पीछे-पीछे ।

3. **पात्र एवं चरित्र-चित्रण-** कहानी में निम्नलिखित पात्र हैं-शाहनी, शेरे, हुसैना लाह बीबी, नवाब बीबी, पटवारी बेग, जेलदार मुल्ला इस्माइल, थानेदार दाऊद खां एवं अन्य ग्रामीण। ये सभी पात्र अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। शाह बीवी नायिका है। वह गांव की मालकिन है, दयालु, सहृदय एवं त्यागमयी नारी है। वह अपने देश को प्यार करने वाली महिला है। बहुत कुछ धन दौलत होते हुए भी यह सबका त्याग कर भारत प्रस्थान करती है। अन्य पात्र सामान्य हैं।

4. **संवाद-** कहानी में संवाद छोटे-छोटे हैं, वे प्रसंगानुकूल हैं। उनकी भाषा मार्मिक, देश, काल एवं पात्रों के अनुकूल है। एक उदाहरण देखें-

"शाहनी चलो, तुम्हें घर तक छोड़ आऊँ।"

शाहनी उठ खड़ी हुई। किसी गहरे सोच में चलती हुई शाहनी के पीछे-पीछे मजबूत कदम उठाता शेरा चल रहा है। शंकित-सा इधर-उधर देखता जा रहा है। अपने साथियों की बातें उसके कानों में गूंज रही है। पर क्या होगा शाहनी को मारकर?

"शाहनी।"

"हाँ शेरे।"

शेरा चाहता है कि सिर पर आने वाले खतरे की बात कुछ तो शाहनी को बता दे, मगर वह कैसे कहे?

"शाहनी..."

शाहनी ने सिर ऊँचा किया। आसमान धुएं से भर गया था : "शेरे..."

5. **वातावरण, मनोरंजकता एवं उद्देश्य-** कहानी में विभाजन जन्य वातावरण है। उसकी शैली, भाषा इत्यादि के कारण वह मनोरंजक हो गई है। उसमें भावात्मकता है। कहानी का उद्देश्य विभाजन के कारण उत्पन्न व्यवस्था, संकट, उपद्रव इत्यादि का प्रभाव तथा परिणाम दर्शाना है। लेखिका इसमें सफल हुई है।

.कृष्णा सोबती की कहानी 'सिक्का बदल गया' के आधार पर शाहनी का चरित्र-चित्रण

प्रस्तुत कहानी एक चरित्र प्रधान कहानी है। इस कहानी की प्रमुख पात्र शाहनी है जिसे लेकर तत्कालीन भारत विभाजन की स्थिति को चित्रित किया गया है। शाहनी स्वर्गीय शाहजी की विधवा वृद्धा है। वह अपने पति तथा एकमात्र पढ़े-लिखे पुत्र की मृत्यु के बाद अकेली अपनी पुरखों की हवेली में रहती है। उसके चरित्र की प्राय: निम्नलिखित विशेषताएं देखने को मिलती हैं-

(1) **उदारता-** शाहनी के चरित्र की सर्वप्रमुख विशेषता उसकी उदारता है। गाँव के सभी आसामियों के साथ वह नाते-रिश्तेदारों सा प्यार करती है। उसमें साम्प्रदायिकता-संकीर्णता की भावना जरा भी नहीं है। इसलिए वह जैना की मृत्यु के बाद उसके पुत्र शेरा का पुत्रवत पालन करती है। उसे अपनी कोख से उत्पन्न पुत्र की भाँति प्यार करती है। इसलिए जब शेरा ने हुसैना को बुरा-भला कहा तो हुसैना भी बोल पड़ी। शाहनी ने उससे चुप रहने को कहा। इस पर हुसैना ने शिकायत भरे स्वर में कहा-शाहनी लड़का आखिर लड़का ही है। कभी शेरे से भी पूछा है कि मुँहू अंधेरे क्यों गालियाँ बरसाई हैं इसने? इस पर शाहनी ने प्यार भरे स्वर में हुसैना से कहा-पगली मुझे तो लड़के से बहू अधिक प्यारी है। इसी प्रकार जब वह ट्रक की ओर बढ़ी तो भसीन के मुल्ला इस्माइल ने आगे बढ़कर कहा, "शाहनी कुछ कह जाओ, तुम्हारे मुँह से निकली असीस झूठ नहीं निकलती।" उत्तर में शाहनी ने कहा-"रब्ब तूहानूँ सलामत रखे बच्चा, खुशियाँ बख्शे।"

(2) **ममतामयी नारी-** शाहनी एक ममतामयी नारी है। जब कभी शाहनी शेरा को डाँट देती थी तो शेरा हवेली में पड़ा रहता था तो शाहनी रात को लालटेन की रोशनी में उसके पास दूध से भरा कटोरा लेकर पहुँचती और कहती-शेरे-शेरे उठ दूध पी ले ! इतना ही नहीं वह शेरा की पत्नी हुसैना को प्यार करती है। उससे कहती है पगली मुझे तो लड़के से बहू अधिक प्यारी है। शेरे ने दाऊद खाँ के पास जाकर कहा खाँ साहब देर हो रही है। उस समय शाहनी ने सोचा घर में मुझे ही देर हो रही है। और वह तत्काल ही हवेली छोड़ने को तैयार हो गई। चलते समय जब उसी शेरा ने शाहनी के पाँव छुए तो उसके सिर पर काँपता हुआ हाथ रखा रुक-रुक कर कहा "तैनू भाग जगण चन्ना।"

(3) **स्वाभिमानी नारी-** शाहनी स्वाभिमानी नारी है। ट्रक के आ जाने पर सारा गाँव इकट्ठा हो गया। उस समय दाऊद खाँ शाहनी के पास आकर सोना-चाँदी नकदी ले जाने की बात कह रहा था पर शाहनी ने उसकी एक बात न मानी। शेरा ने जब कहा देर हो रही है खाँ साहब तो उसमें विद्रोह का भाव उभरा जिसको उसने वहीं दबा दिया। उसने अपने को सम्भाला और निर्णय लिया-पर नहीं शाहनी रो-रोकर नहीं शान से निकलेगी। इन पुरखों के घर की देहरी मान से लाँघेगी, जिस पर एक दिन रानी बनकर आ खड़ी हुई थी। ड्योढ़ी के आगे कुल-वधू की आँखों से निकलकर कुछ बूँदें टपक पड़ीं। शाहनी चल दी-ऊँचा सा भवन पीछे खड़ा रह गया।

(4) **व्यथित नारी-** शाहनी व्यथित नारी है, उसकी व्यथा का सबसे बड़ा कारण यह है कि आज शाहजी नहीं है। उसका पढ़ा-लिखा लड़का भी नहीं रहा। इस कारण आज वह निपट अकेली रहने के कारण व्यथित है। शाहनी जब चिनाब में सुबह-सुबह नहाकर आई, तो वहाँ पर उसने रेत पर अनगिनत पाँवों के निशान देखे। यह देखकर वह सहम गई। घर आते समय उसने कुएं पर रुककर शेरा को आवाज दी। उसने कहा-मालूम होता है, रात को कुल्लूवाल के लोग आये हैं यहाँ? यह कहते हुए शाहनी का गम्भीर स्वर हो गया। उसने चिन्तित स्वर में कहा-जो कुछ भी हो रहा है अच्छा नहीं। शेरे आज शाहजी होते तो शायद कुछ बीच-बचाव करते। यह बात कहते-कहते वह रुक गई। उसे लगा कि शाहनी का जैसे जी भर-भरकर आ रहा है। हालांकि शाहजी को बिछुड़े कई साल बीत गये, पर आज उसका मन पिघल रहा है। शायद उसे पिछली स्मृतियाँ आ रही हैं। आँसुओं के रोकने के प्रयत्न में उसने हुसैना को देखा और हँस पड़ी।

वह सोचती है कि कभी सारा गाँव उसके इशारे पर नाचता था। उसकी आसामियाँ हैं जिन्हें उसने अपने नाते-रिश्तेदारों से कभी कम नहीं समझा। लेकिन नहीं आज उसका कोई नहीं, आज वह अकेली है। क्योंकि ये सब मुसलमान हैं और साम्प्रदायिकता की भावना से ग्रसित हो चुके हैं। इसलिए शाहनी को लगा कि इनके बीच में यह अकेली हिन्दू है। वह अब यहाँ न रह सकेगी। इस बात का गहरा दुःख हुआ और वह व्यथित हो गई।

(5) **दूरदर्शी महिला-** शाहनी एक दूरदर्शी महिला है। प्रातः जब चिनाव नदी के किनारे कपड़े पहनते हुए उसने रेत पर अनगिनत पाँवों के निशान देखे तो वह समझ गई कि कुल्लूवाल के जाट यहाँ पर आ गये हैं जिनके कारण यहाँ के मुसलमानों में साम्प्रदायिकता भड़क जायेगी और हिन्दू सुरक्षित न रह पायेंगे। शाम को उसने भीड़ में इन लोगों को खड़ा भी पाया। इससे पता चलता है कि वह दूरदर्शी महिला है।

(6) **निस्वार्थी एवं निर्लोभी-** शाहनी के मन में किसी प्रकार के लोभ या स्वार्थ की भावना नहीं है। जब थानेदार दाऊद खाँ उससे कहता है कि कुछ रखा है, तो रख लो। तुम अकेली हो। अपने पास कुछ होना जरूरी है। कुछ साथ बाँध लिया है सोना-चाँदी? उसके उत्तर में शाहनी कहती है-सोना-चाँदी बच्चा तुम लोगों के लिए है। मेरा सोना तो एक-एक जमीन में बिछा है। इसी प्रकार

वह कहती है कि इस घर की नकदी इसी घर में रहेगी। शाहनी के इन कथनों से स्पष्ट है कि वह निर्लोभी है।

(7) **सच्ची कुलवधू**- शाहनी को अपने कुल की मर्यादा से लगाव व प्यार है। विवशतावश जब उसे हवेली छोड़नी पड़ती है, तो वह एक सच्चरित्र कुलवधू की भाँति दुपटटे से सिर ढाँपकर दोनों हाथ जोड़कर ड्योढ़ी पर सिर झुकाती है। वह कुलवधू होने के साथ-साथ उच्चकोटि की चारित्रिक शक्ति वाली महिला भी है। गाँव के हर व्यक्ति पर उसने उपकार किया है। वे सभी विवश हैं क्योंकि राज पलट गया है या सिक्का बदल गया है। वे चाहते हुए भी शाहनी को अपने साथ नहीं रख सकते।

इससे स्पष्ट होता कि प्रस्तुत कहानी के माध्यम से लेखिका ने शाहनी के चरित्र को बखूबी प्रस्तुत किया है जो उसके चरित्र की महत्ता को उजागर करता है।

महादेवी वर्मा द्वारा रचित रवीन्द्रनाथ ठाकुर नामक संस्मरण की व्याख्या

महादेवी वर्मा ने 'पथ के साथी' संस्मरण में रवीन्द्रनाथ ठाकुर के बारे में अपने विचार व्यक्त किये हैं। वह उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व से किसी न किसी रूप में प्रभावित हुई हैं। यहाँ उसी संस्मरणात्मक रेखाचित्रों की श्रृंखला की एक कड़ी रवीन्द्रनाथ ठाकुर की झलक को उन्होंने अपने शब्दों में जिस प्रकार अभिव्यक्त किया है, उसी का संक्षिप्त सार इस तरह है-

कवीन्द्र रवीन्द्र उन विरल साहित्यकारों में थे जिनके व्यक्तित्व और साहित्य में अद्‌भुत साम्य रहता है। जहाँ व्यक्ति को देखकर लगता है मानो काव्य की व्यापकता ही सिमटकर मूर्त हो गई है तथा काव्य से परिचित होकर जान पड़ता है मानो व्यक्ति ही तरल होकर फैल गया है।

उस व्यक्तित्व की, अनेक शाखाओं-उपशाखाओं में फैली हुई विशालता, सामर्थ्य में तथा अधिक सघन होकर किसी को उद्धत होने का अवकाश नहीं देती, उसकी सहज स्वीकृति किसी को उदासीन रहने का अधिकार नहीं सौंपती तथा उसकी रहस्यमयी स्पष्टता किसी को कृत्रिम बंधनों से नहीं घेरती। जिज्ञासु जब कभी साधारण कुतूहल में बिछलने लगता था तब वह स्नेह-तरलता हिम का दृढ़ स्तर बन जाने वाले जल के समान कठिन होकर उसे ठहरा लेना नहीं भूलती। इसी से उस असाधारण साधारणता के सम्मुख हमें यह समझते देर नहीं लगती थी कि मनुष्य मनुष्य को कुतूहल की संज्ञा देकर स्वयं भी अशोभन बन जाता है।

प्रशांत चेतना के बंधन के समान, मुख पर बिखरी रेखाओं के बीच में उठी हुई सुडौल नासिका को गर्व के प्रमाण-पत्र के अतिरिक्त कौन-सा नाम दिया जावे। लेकिन वह गर्व मानो मनुष्य होने का गर्व था, इतर अहंकार नहीं, इसी से उसके सामने मनुष्य, मनुष्य के नाते प्रसन्नता का अनुभव करता था, स्पर्धा या ईर्ष्या का नहीं।

दृढ़ता का लगातार परिचय देने वाले अधरों से जब हंसी का अजस्र प्रवाह बह चलता था तब अभ्यागत की स्थिति वैसी ही हो जाती थी जैसी अडिग और रंध्रहीन शिला से फूट निकलने वाली निर्झर के सामने सहज है। वह मुक्त हास स्वयं बहता, हमें बहाता तथा अपने हमारे बीच के विषम और रूखे अंतर को अपनी आर्द्रता से भरकर कम कर देता था। उसका थमना हमारे लिए एक संगीत-लहरी का टूट जानता था जो अपनी स्पर्शहीनता से ही हमारे भावों को छू-छूकर जगाती हुई बह जाती है। वाणी और हास के बीच की निस्तब्धता में हमें उस महान् जीवन के संघर्ष और श्रांति का एक अनिर्वचनीय बोध होने लगता था, लेकिन वह बोध, हार-जीत की न जाने किस रहस्यमय संधि में खड़े होकर दोहराने सिहराने लगता था..'तुम इसे हार न कहना, क्लांति न मानना।'

वे लिखती हैं कि हिमालय की तराई में रामगढ़ नामक स्थान पर ढाई एकड़ भूमि पर कवीन्द्र रवीन्द्र का एक छोटा सा बंगला (भवन) था जिसमें वे अपनी बीमार पुत्री के साथ रहते थे। वहीं

उनकी पुत्री का देहाँत हो गया अत: वह भवन व्यथा भरी स्मृतियों का साथी बन गया था। बाद में एक अंग्रेज अधिकारी उसमें रहने लगा। वहीं एक भवन में जहाँ महादेवी ठहरती थीं, को एक रवीन्द्रनाथ द्वारा प्रयुक्त आल्मारी मिली, उसके रंग एवं आकृति से ही महादेवी बहुत प्रभावित हुई। उन्होंने अनेक कल्पनाएं कर डालीं। बंगले के स्वामी ने रवीन्द्र का भवन अच्छी तरह महादेवी को दिखलाया। रवीन्द्र की सहृदयता का उल्लेख करते हुए महादेवी लिखती हैं कि एक वृहद पड़ोसी ने बताया कि रवीन्द्र के बिना उनके पुत्र की चिकित्सा असंभव थी-उस सहृदयता का वर्णन इस प्रकार है-

वृद्ध पड़ोसी ने सजल आँखों के साथ कहा कि उस महान् पड़ोसी के बिना उसके बीमार पुत्र की चिकित्सा असंभव थी। किसी वृद्ध ग्वालिन ने अपनी बूढ़ी गाय पर हाथ फेरते हुए तरल स्वर में बताया कि उनकी दवा के अभाव में उसकी गाय का जीवन कठिन था। किसी अछूत शिल्पकार ने कृतज्ञता से गद्‌गद् कंठ से स्वीकार किया कि उनकी मदद के बिना उनकी जली हुई झोपड़ी का फिर बन जाना कल्पना की बात थी।

संबलहीन मानव से लेकर खड्ड में गिरकर टांग तोड़ लेने वाले भूटिया कुत्ते तक के लिए उनकी चिंता स्वाभाविक तथा सहायता सुलभ रही, इस समाचार ने कल्पना-बिहारी कवि में सहृदय पड़ोसी और वात्सल्य भरे पिता की प्रतिष्ठा कर दी। इसी कल्पना-अनुमानात्मक परिचय की पृष्ठ-भूमि में मैंने अपने विद्यार्थी-जीवन में रवीन्द्र को देखा।

जैसे धृतराष्ट्र ने लौह-निर्मित भीम को अपने अंक में भरकर चूर-चूर कर दिया था-वैसे ही प्राय: पार्थिव व्यक्तित्व कल्पना-निर्मित व्यक्तित्व को खंड-खंड कर देता है। पर इसे मैं अपना सौभाग्य समझती हूं कि रवीन्द्र के प्रत्यक्ष दर्शन ने मेरी कल्पना-प्रतिमा को अधिक दीप्त सजीवता दी। उसे कहीं खंडित नहीं किया गया। लेकिन उस समय मन में कुतूहल का भाव ही अधिक था जो जीवन के शैशव का प्रमाण है।

दूसरी बार जब उन्हें 'शांति-निकेतन' में देखने का सुयोग्य प्राप्त हुआ तब मैं अपना कर्मक्षेत्र चुन चुकी थी। वे अपनी मिट्टी की कुटी श्यामली में बैठे हुए ऐसे जान पड़े मानो काली मिट्टी में अपनी उज्जवल कल्पना उतारने में लगा हुआ कोई अद्‌भुतकर्मा शिल्पी हो।

तीसरी बार उन्हें रंगमंच पर सूत्रधार की भूमिका में उपस्थित देखा। जीवन की संध्या बेला में 'शांति निकेतन' के लिए उन्हें अर्थ-संग्रह में प्रयत्नशील देखकर न कुतूहल हुआ न प्रसन्नता; केवल एक गंभीर विषाद की अनुभूति से हृदय भर आया। हिरण्यगर्भा धरतीवाला हमारा देश भी कैसा विचित्र है। जहाँ जीवन-शिल्प की वर्णमाला भी अज्ञात है वहाँ वह साधनों का हिमालय खड़ा कर देता है तथा जिसकी उंगलियों में सृजन स्वयं उतरकर पुकारता है उसे साधन-शून्य रेगिस्तान में निर्वासित कर जाता है। निर्माण की इससे बड़ी विडम्बना क्या हो सकती है कि शिल्पी तथा उपकरणों के बीच में आग्नेय रेखा खींचकर कहा जा कि कुछ नहीं बनता या सब कुछ बन चुका।

रवीन्द्र के बारे में वे लिखती हैं-अपनी कल्पना को जीवन के सब क्षेत्रों में अनंत अवतार देने की क्षमता रवीन्द्र की ऐसी विशेषता है जो अन्य कलाकारों में विरल है।

वे लिखती हैं-जो जीवन को सब ओर से एक साथ स्पर्श कर सकता है उस व्यक्ति को युग-जीवन अपनी संपूर्णता के लिए स्वीकार करने पर बाध्य हो जाता है तथा ऐसी, व्यापकता में मार्मिक स्पर्श साहित्य में जितना सुलभ है उतना अन्यत्र नहीं। इसी से मानवता की यात्रा में साहित्यकार जितना प्रिय तथा दूरगामी साथी होता है उतना सिर्फ दार्शनिक, वैज्ञानिक या सुधारक नहीं हो पाता है। कवीन्द्र में विश्व-जीवन ने ऐसा ही प्रियतम सहयात्री पहचाना, इसी से हर दिशा से उन पर

अभिनंदन के फूल बरसे, हर कोने से मानवता ने उन्हें अर्ध्य दिया तथा युग के श्रेष्ठतम कर्मनिष्ठ बलिदानी साधन ने उनके समक्ष स्वस्ति-वाचन किया।

महादेवी के अनुसार रवीन्द्र ने जो कुछ लिखा उसे पढ़कर मन में यह विचार उठता है कि उन्होंने क्या नहीं लिखा। रवीन्द्र ने जीवन के व्यापक विस्तार के बारे में सब कुछ लिख दिया है। महादेवी के अनुसार विशाल शिव और सुंदर पक्ष का सब समर्थन करते हैं। लेकिन विशालता, शिवता, सुंदरता व शुंद्र और अशिव तथा विरूप का दावा प्रमाणित कर उन्हें विशालता शिव और सुंदर में परिणित करना रवीन्द्र का ही काम है-अमृत और विषय को एक दूसरे में परिवर्तित करना किसी महान् वैद्य का ही कार्य हो सकता है।

वे लिखती हैं-कवीन्द्र में ऐसी क्षमता थी और उनकी इस सृजन-शक्ति की प्रखर विद्युत का आस्था की सजलता संभाले रहती थी। यह बादल भरी बिजली जब धर्म की सीमा छू गई तब हमारी दृष्टि के सामने फैले रूढ़ियों के रंध्रहीन कुहरे में विराट मानव-धर्म की रेखा उद्भासित हो उठी। जब वह साहित्य में स्पंदित हुई तब जीवन के मूल्यों की स्थापना हेतु तत्व सत्यमव, सत्य शिवमय और शिव सौंदर्यमय होकर मुखर हो उठा। जब चिंतन को उसका स्पर्श मिला तब दर्शन की भिन्न रेखाएं तरल होकर समीप आ गईं।

उन्होंने ऐसा कुछ नहीं कहा जो पहले नहीं कहा गया था, पर इस तरह सब कुछ कहा है जिस प्रकार किसी अन्य युग में नहीं कहा गया।

साहित्य को उसकी बाह्य रूपात्मकता में तौलना-नापना सहज है। किसने कितने उपन्यास लिखे, किसने कितने नाटक, किसने महाकाव्यों का परिमाण क्या है, किसके गीतों की संख्या कितनी है, किसी शैली कैसी है, किसका छंद कैसा है, आदि में जो तौल-नाप है वह साहित्य की आत्मा को नहीं तौलता-नापता। ऊँचे-नीचे कगार या सूखे-हरे तट नदी की सीमा बनते हैं, पर नदी नहीं बना सकते। इतना ही नहीं, साहित्यकार की सभी उपलब्धियां भी समान नहीं होतीं। गोताखोर समुद्र के अतल गर्भ से न जाने कितने शंख, सीप, सेवार आदि लाकर तट पर ऊँचा पहाड़ बना देता है। यह भी उसकी उपलब्धि ही कही जाएगी, पर उसके कई प्रयासों का एक मूल्यांकन मोती की उपलब्धि मात्र है।

संस्मरण के अंत में महादेवीजी लिखती हैं-

इसी बीच कलकते में एक बंधु आए। मौन भाव से उन्होंने मिट्टी के पात्र में संग्रहित, कवीन्द्र के पार्थिव अवशेष की भस्म मुझे भेंट की।

भीड़, आँधी, पानी से संघर्ष कर इसे उन्होंने मेरे लिए प्राप्त किया है, सोच कर हृदय भर आया। मानस-पट पर 'शांति निकेतन' का प्रार्थना-भवन उदय हो आया। उसके चारों ओर लगे रंग-बिरंगे शीशों से छनकर आता हुआ आलोक भीतर इंद्रधनुषी ताना-बाना बुन देता था। संगमरमर की चौकी पर रखे हुए चंपक-फूलों पर धूप-धूप भ्रमरों के समान मंडराता था। उसके पीछे बैठे कवीन्द्र की स्थिर दिव्य आकृति तथा उससे सब ओर फैलती हुई स्वर की निस्तब्ध तरंग-माला।

तो क्या यह उसी वीणा का भस्म-शेष है जिसके तारों पर दीपकराग लहराता था?

जान पड़ा, जैसे उस साहित्यकार-अग्रज ने हमारे अनजान में ही हमारे छोर में अपना उत्तराधिकार बाँधकर विदा ली है। दीपक चाहे छोटा हो चाहे बड़ा, सूर्य जब अपना आलोकवादी कर्तव्य उसे सौंपकर चुपचाप डूब जाता है तो तब जल उठना ही उसके अस्तित्व की शपथ है-

जल उठना ही उसके जाने वाले को प्रणाम है।

'पथ के साथी' में वर्णित कवि मैथिलीशरण गुप्त नामक संस्मरण की साहित्यिक व्याख्या

महादेवी वर्मा ने मैथिलीशरण गुप्त की महान् साहित्यिक प्रतिभाओं का वर्णनात्मक तथा भावात्मक विवरण दिया है। उन्होंने उनके गुणों की अवधारणा, उनसे भेंट आदि के बारे में लिखा है। इस संस्मरण का संक्षिप्त वर्णन इस तरह है-

मैं गुप्तजी को कब से जानती हूं, इस सीधे-से प्रश्न का मुझसे आज तक कोई सीधा-सा उत्तर नहीं बन पड़ा। प्रश्न के साथ ही मेरी स्मृति अतीत के एक धूमिल पृष्ठ पर उंगली रख देती है जिस पर न वर्ष, तिथि आदि की रेखाएं हैं तथा न परिस्थितियों के रंग। केवल कवि बनने के प्रयास में बेसुध एक बालिका का छायाचित्र उभर आता है।

महादेवी के सामने एक समस्या पूर्ति का विषय था 'मेघ बिन जल वृष्टि भई है'। वे इसमें उलझी हुई थीं, उसी प्रसंग में लिखती हैं इस अष्ट प्रात: निष्कर्ष को सवैया में कैसे उतारा जाए-

इसी प्रश्न में कई दिन बीत गए। उन्हीं दिनों सरस्वती पत्रिका तथा उसमें प्रकाशित गुप्तजी की रचना से मेरा नया-नया परिचय हुआ था। बोलने की भाषा में कविता लिखने की सुविधा मुझे बार-बार खड़ी बोली की कविता की तरफ आकर्षित करती थी। इसके अतिरिक्त रचनाओं से ऐसा आभास नहीं मिलता था कि उनके निर्माताओं ने मेरी तरह समस्यापूर्ति का कष्ट झेला है। उन कविताओं के छंदबंध भी सवैया छंदों से सहज जान पड़ते थे और अहो कहो आदि तुक तो मानो मेरे मन के अनुरूप ही गढ़े हुए थे।

अंत में मैंने 'मेघ बिना जल-वृष्टि भई है' का निम्न पंक्तियों में काया-कल्प किया-

हाथी न अपनी सूंड में यदि नीर भर लाता अहो,
तो किस तरह बादल बिना जल वृष्टि हो सकती कहो !

समस्या पूर्ति के स्थान में जब मैंने यह विचित्र तुकबंदी पंडितजी के सामने रखी तब वे विस्मय से बोल उठे, "अरे यह यहाँ भी पहुँच गये।" उनका लक्ष्य खड़ी बोली के कवि थे अथवा काव्य, यह आज बताना संभव नहीं। पर उस दिन खड़ी बोली की तुकबंदी से मेरा जो परिचय हुआ उसे मैं गुप्तजी का परिचय भी मानती हूं।

वे लिखती हैं कि गुप्तजी की रचनाओं से जितना दीर्घकालीन परिचय हुआ उतना उनसे नहीं। वे उनके बारे में लिखती हैं कि गुप्तजी के बाध्य दर्शन में ऐसा कुछ भी नहीं है जो उन्हें असाधारण सिद्ध कर सके।

उनके चौड़े ललाट पर क्रोध तथा दुश्चिताओं की क्रूर लिखावट नहीं है, सीधी भृकुटियों में सहिष्णुता का कूंचन नहीं है, ऊँची नाक पर दंभ का उतार-चढ़ाव नहीं है और ओठों में निष्ठुरता की वक्रता नहीं है। जो विशेषताएं उन्हें सबसे भिन्न कर देती हैं वे हैं उनकी बंधी दृष्टि और मुक्त हंसी। जब हमारी दृष्टि में प्रसार अधिक रहता है, तब हम किसी एक में उसे केन्द्रित नहीं कर सकते। प्रत्युत्त हमारी विहंगम दृष्टि एक ही क्षेत्र में एक साथ अनेक स्पर्श कर सकती है।

गुप्तजी की दृष्टि तथा हंसी उन्हें किसी के निकट अपरिचित नहीं रहने देती। कभी-कभी तो उनका देखना तथा हंसना इस तरह साथ चलता है कि दृष्टि हंसती-सी लगती है और हंसी से दृष्टि का आलोक बरसता जान पड़ता है। वे स्वभाव से प्रसन्न तथा विनोदी हैं लेकिन इस प्रसन्नता और विनोद की चंचल सतह दृष्टि नहीं जाती।

गुप्तजी स्वभाव से लोकसंग्रही कवि हैं, अत: उनके स्वभाव के तल में ऐसी गंभीरता आवश्यक है जिस पर हास तथा विनोद की सौ-सौ चंचल लहरें बनने के लिए सिद्ध हो सकें।

महादेवी आगे लिखती हैं-गुप्तजी कवि भी हैं और भक्त भी, अत: निर्माण भी उनके स्वभाव में है और निर्मित के प्रति आत्म-समर्पण भी। साहित्य में उन्हें ऐसी ही कथाएं चाहिए जो लोक-हृदय में प्रतिष्ठा पा चुकी हों, पर उस परिधि के भीतर हर चरित्र का कुछ नया निर्माण उनका अपना है। वे रामायण को नहीं भूलते, पर रामायणकार जिन्हें भूल गया उन चरित्रों को अपने ढंग से स्मरण करते हैं। वे महाभारत के स्थान में कोई अन्य कथा नहीं खोजेंगे, पर महाभारत के भीतर खोये किसी साधारण पात्र को खोज लेंगे। वे कथाएं कई युगों की लंबी यात्राओं का आँधी-पानी, धूप-छाया सहते-सहते धूमिल हो गई हैं, पर जिन्हें ये वहन कर के लाई हैं वे पात्र गुप्तजी के आँसुओं में धुल-धुलकर नये रंगों में उद्भासित आज के प्राणी बन चुके हैं। उनके साहित्य में जो नया है उसका मेरुदंड पुराना है तथा जो पुराना है उस पर रंग नया है। जीवन में जो कुछ गुप्त जी ने लिखा है वह पुराने संस्कारों पर आधारित है।

वे लिखती हैं-वे नम्र हैं, लेकिन यह विनय उनकी वैष्णवता का ऐसा पानी है जो बड़े-बड़े जहाजों को संभाल सकता है, पर छोटे-से पत्थर का भी भार सहन नहीं कर सकता। इस प्रशांत सतह वाले सागर के तल में किसी अव्यक्त ज्वालामुखी की चोटियां भी हैं जो ठेस से विस्फोट बन सकती हैं। जीवन के पिछले पहर में उन्हें ऋण से जो मुक्ति मिली है उस तक पहुँचने हेतु उन्हें अर्थ-संकट की अनेक दुर्गम घाटियां पार करनी पड़ी हैं। उन दिनों की स्मृति मात्र से उनकी आँखों में जो पानी छलक आता है उसी ने उनके स्वाभिमान पर शान चढ़ाई है। वे जिस सीमा तक साधनहीन के प्रति विनीत हैं उसी सीमा तक अर्थ दंभी के प्रति असहिष्णु।

किसी परिचित के साधारण द्वार पर उपस्थित होकर वे अकुंठित भाव से कह सकते हैं-महाराज ! हम तो हाजिरी देने आये हैं। पर संपन्नता के संकेत पट जैसे द्वार पर यह हाजिरी कितनी महंगी पड़ सकती है इसे न वे बता सकते हैं न उनके परिचित।

वे स्पष्टवादी थे। महादेवी लिखती हैं-स्पष्टवादिता के कारण उन्हें किसी तरह की मंत्रणा में सम्मिलित करना खतरे से खाली नहीं है। वे गोपनशास्त्र की वर्णमाला भी नहीं जानते जिसकी आज के युग में पग-पग पर आवश्यकता पड़ती है। परिणामत: जहाँ मौन रहना चाहिए वहाँ वे सब कुछ कह देंगे। उस संबंध में कुछ घटनाओं के स्मरण मात्र से हंसी आ जाती है। एक संस्था की विशेष बैठक में वे आहूत थे। बैठक के पहले कुछ व्यक्तियों ने विचार-विनिमय करके अपना निश्चित कार्यक्रम बना लिया तथा सामान्य बैठक में उसी के अनुसार प्रस्ताव और अनुमोदन होने लगे। पूर्व विचार-विनिमय के समय जो अनुपस्थित थे उनमें से किसी की जिज्ञासा के उत्तर में वे बोल उठे-"हाँ महाराज, हम लोग बात करके पहले ही यह निश्चय कर चुके हैं।" उनके इस उत्तर से अन्य सदस्य निरुत्तर रह गए, तब उन्होंने क्षमा-याचना की मुद्रा में कहा-"हमारे साथी मौन हैं, इससे जान पड़ता है कि हमने बताकर ठीक नहीं किया।"

एक अन्य घटना है-वे साहित्य संसद के लिए एक भवन खरीदने गए। लोगों ने उसने कहा कि वे कुछ न बोलें। भवन को देख वे सब कुछ भूल गए। मकान बेचने वाला उनकी बातचीत से उनके भोलेपन को भांप गया तथा उसने सोच लिया कि ऐसे व्यक्ति से सौदा करने में हानि क्यों उठाई जाए।

उनकी दृष्टि में वही रहता है जो उनके हृदय में है और हृदय में वही रहता है जो वचन में है। हम उन विचारों से सहमत हों या असहमत पर उनके संबंध में किसी भ्रम या उलझन में नहीं पड़ सकते। अधिकारी, व्यापारी, संपन्न, दरिद्र किसी भी वर्ग के व्यक्ति के समान वे उसके दोषों की व्याख्या करने से नहीं हिचकते। उस समय उनकी हंसी जैसे तलवार की मखमली म्यान हो जाती

है। इंडियन प्रेस के कारण वे आर्थिक रूप से विपन्न रहे। उसने उनके ग्रंथ 'रंग में भंग' को छापकर भी कुछ नहीं किया।

अपने पिता एवं भाई के कारण वे उस अर्थ संकट में भी स्थिर रह सके। वे संस्कारों के कारण व्यक्तिगत दुःख सुख में विचलित नहीं होते। पर निर्दोष व्यक्ति के प्रति अन्याय पर वे अत्यंत क्रोधित हो जाते। एक बार सन् 42 में उन्हें इस कारण गिरफ्तार कर लिया गया, दुर्भाग्यवश कलेक्टर ने उनसे कुशल पूछ ली। इस पर वे आगबबूला हो गए और कहा-आपका दिमाग खराब हो गया है, आप से बातें क्या करें। आप निर्दोषों को पकड़ते घूमते हैं। "हमारा क्या, हम तो लेखक ठहरे, जहाँ सब देखेंगे और इसके खिलाफ लिखेंगे।"

जीवन और साहित्य की दृष्टि से गुप्त जी और निराला एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। एक दिन अस्त-व्यस्त रहने वाले निराला जी से उन्होंने सहज भाव से कह दिया-'हम इस बार आपके पास ठहरेंगे।' तब अपने लिए असावधान निराला ने नया घड़ा मंगवा कर गंगा-जल लाने की सावधानी बरती। थोड़ी देर बात करने वाले भी जिनका रुख देखते रहते हैं उन्हीं निराला से गुप्त जी आधी रात तक सुख-दुःख की कथा कहते-सुनते रहे और उन्हें समझाते-बुझाते रहे।

उनमें हीनता अथवा उच्चता की कोई ऐसी उलझन भरी ग्रंथि नहीं है, जिससे वे अपनी प्रतिष्ठा को लेकर व्यस्त रहें। अपने विशेष सम्मान के अवसर पर भी वे कह देते हैं-"अरे महाराज, हमारा तो कभी आपने अपमान नहीं किया, जो अब सम्मान की आवश्यकता हो। हमें बहुत सम्मान मिल चुका है, अब किसी नये का सम्मान होना चाहिए।" उनके काव्य की समीक्षा करते-करते एक समीक्षक ने उनके संबंध में ऐसे आपत्तिजनक शब्दों का प्रयोग किया, जो मानहानि के अपराध के अंतर्गत आ सकते हैं। इससे भी संतुष्ट न होकर आलोचक ने गुप्त जी की सम्मति चाही। उन्होंने उत्तर में लिखा-"आपके निकट हमारे साहित्य और व्यक्तित्व का जो मूल्य है उसके लिए हम कृतज्ञ हैं।"

महादेवी संस्मरण के अंत में लिखती हैं-गुप्त जी अत्यंत साधारण जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति थे। गुप्तजी ने नौ-नौ संतानों की मृत्यु का दुःख भोगा है। गुप्त जी ने इस कष्ट को अंगार पथ समान पार किया है। महादेवी जी लिखती हैं जिस तरह अपने अहं को समष्टि में मिला देने से कवि की मुक्ति है उस दृष्टि से तो गुप्त जी मुक्त कवि हैं।

महादेवी वर्मा द्वारा रचित सुभद्रा कुमारी चौहान नामक संस्मरण की समीक्षा

महादेवी जी ने सुभद्राकुमारी चौहान की चारित्रिक तथा साहित्यिक विशेषताओं के साथ इस संस्मरण को लिखा है। वह उनके गुणों से अत्यंत प्रभावित हुई हैं, उसी की एक झलक को उन्होंने अपने शब्दों में प्रस्तुत किया है, उसी की विषय वस्तु या संक्षिप्त सार इस प्रकार है-महादेवीजी एवं सुभद्राकुमारीजी दोनों ही एक ही विद्यालय में अध्ययनरत थीं। महादेवीजी पांचवीं कक्षा की छात्रा तथा सुभद्राजी सातवीं कक्षा की छात्रा थीं। उनका परिचय बड़े ही विचित्रपूर्ण ढंग से हुआ जो इस प्रकार है—

एक सातवीं कक्षा की विद्यार्थिनी, एक पांचवीं कक्षा की विद्यार्थिनी से प्रश्न करती है, 'क्या तुम कविता लिखती हो? दूसरी ने सिर हिलाकर ऐसी अस्वीकृति दी जिसमें हाँ और नहीं तरल होकर एक हो गये थे। प्रश्न करने वाली ने इस स्वीकृति-अस्वीकृति की संधि में खीझ कर कहा, 'तुम्हारी क्लास की लड़कियां तो कहती हैं कि तुम गणित की कापी तक में कविता लिखती हो ! दिखाओ अपनी कापी तथा उत्तर की प्रतीक्षा में समय नष्ट न कर कविता लिखने की अपराधिनी को हाथ पकड़कर खींचती हुई उसके कमरे में डेस्क के पास ले गई। नित्य व्यवहार में आने वाली गणित

की कापी को छिपाना संभव नहीं था, अत: उसके साथ अंकों के बीच में अनधिकार सिकुड़कर बैठी हुई तुकबंदियां अनायास पकड़ में आ गईं। इतना दंड ही पर्याप्त था। पर इसमें संतुष्ट न होकर अपराध की अन्वेषिका ने एक हाथ में वह चित्र-विचित्र कापी थामी तथा दूसरे में अभियुक्ता की उंगलियां कस कर पकड़ीं और वह हर कमरे में जा-जा कर इस अपराध की सार्वजनिक घोषणा करने लगी।"

उस युग में कविता-रचना अपराधों की सूची में थी। कोई तुक जोड़ता है, यह सुनकर ही सुनाने वालों के मुख की रेखाएं इस प्रकार वक्र-कुंचित हो जाती थीं मानों उन्हें कोई कटुतिक्त पेय पीना पड़ा हो।

महादेवी के अनुसार सुभद्रा की कद काठी सामान्य मझौले कद की थी। उसमें कुछ भी वीर या रौद्र नहीं था जिसकी कल्पना हम वीर गीतों के रचयिता से करते हैं। उनका रूप एक अत्यंत निश्छल, कोमल, उदार व्यक्तित्व वाली भारतीय नारी का था उससे उनके अंतर का पता नहीं लगता था। "मैंने हंसना सीखा है मैं नहीं जानती रोना" की लेखिका की हंसी एक अबोध शिशु की निश्छल हंसी की तरह थी। महादेवी लिखती हैं-

वे अपने बचपन की एक घटना सुनाती थीं। कृष्ण तथा गोपियों की कथा सुनकर एक दिन बालिका सुभद्रा ने निश्चय किया कि वह गोपी बनकर ग्वालों के साथ कृष्ण को ढूंढ़ने जाएगी।

दूसरे दिन वह लकुटी लेकर गायों और ग्वालों के झुंड के साथ कीकर और बबूल से भरे जंगल में पहुँच गई। गोधूली वेला में चरवाहे तथा गायें तो घर की ओर लौट गए, पर गोपी बनने की साधवाली बालिका कृष्ण को खोजती ही रह गई। उसके पैरों में कांटे चुभ गए, कंटीली झाड़ियों में कपड़े उलझ कर फट गए, प्यास से कंठ सूख गया और पसीने पर धूल की पर्त जम गई, पर वह धुनवाली बालिका लौटने को प्रस्तुत नहीं हुई। रात होते देख घर वालों ने उन्हें खोजना शुरू किया और ग्वालों से पूछते-पूछते अंधेरे करील-वन में उन्हें पाया।

अपने निश्चित लक्ष्य-पथ पर अडिग रहना और सब-कुछ हंसते-हसंते सहना उनका स्वभावजात गुण था। क्रास्थवेट गर्ल्स कॉलेज में जब वे आठवीं कक्षा की विद्यार्थिनी थी, तभी उनका विवाह हुआ तथा उन्होंने पतिगृह के लिए प्रस्थान किया। स्वतंत्रता के युद्ध के लिए सन्नद्ध सेनानी पति को वे विवाह से पहले देख भी चुकी थीं तथा उनके विचारों से भी परिचित थीं। उनसे यह छिपा नहीं था कि नववधू के रूप में उनका जो प्राप्य है उसे देने का न पति को अवकाश है न लेने का उन्हें। वस्तुत: जिस विवाह में मंगल-कंकण ही रण-कंकण बन गया, उसकी गृहस्थी भी कारागार में ही बसाई जा सकती थी और उन्होंने बसाई भी वहीं। पर इस साधना की मर्मव्यथा को वही नारी जान सकती है जिसने अपनी देहली पर खड़े होकर भीतर के मंगल चौक पर रखे मंगल कलश, तुलसी-चौरे पर जलते हुए घी के दीपक तथा हर कोने से स्नेह भरी बाँहें फैलाये हुए अपने घर पर दृष्टि डाली हो और फिर बाहर के अंधकार, आँधी और तूफान को तोला हो और तब घर की सुरक्षित सीमा पार कर, उसके सुंदर मधुर आह्वान की ओर से पीठ फेर कर अंधेरे रास्ते पर कांटों से उलझती चल पड़ी हो।

महादेवी सुभद्राजी के चरित्र के बारे में लिखती हैं-

उनके मानसिक जगत में हीनता की किसी ग्रंथि के लिए कभी अवकाश नहीं रहा, घर से बाहर बैठकर वे कोमल और ओज भरे छंद लिखने वाले हाथों से गोबर के कंडे थापती थीं। घर के भीतर तन्मयता से आँगन लीपती थीं, बर्तन माँजती थीं। आँगन लीपने की कला में मेरा भी कुछ प्रवेश था, अत: प्राय: हम दोनों प्रतियोगिता हेतु आँगन भिन्न-भिन्न छोरों से लीपना आरंभ करते थे। कार्य में एकांत तन्मयता केवल उसी गृहिणी में संभव है जो अपने घर की धरती को समस्त हृदय

से चाहती हो और सुभद्रा ऐसी ही गृहिणी थी। उस छोटे-से अधबने घर की छोटी-सी सीमा में उन्होंने क्या नहीं संगृहित किया। छोटे-बड़े, रंग-बिरंगे फूलों के पौधों की क्यारियां, ऋतु के अनुसार तरकारियां, गाय, बच्छे आदि-आदि बड़ी गृहस्थी की सब सज्जा वहाँ विराट दृश्य के छोटे चित्र के समान उपस्थित थी। अपने इस आकार में छोटे साम्राज्य को उन्होंने अपनी ममता के जादू से इतना विशाल बना रखा था कि उसके द्वार पर न कोई अनाहूत रहा तथा न निराश लौटा। जिन संघर्षों के बीच उन्हें मार्ग बनाना पड़ा वे किसी भी व्यक्ति को अनुदार और कटु बनाने में समर्थ थे। पर सुभद्रा के भीतर बैठी सृजनशीलता नारी जानती थी कि कांटों का स्थान जब चरणों के नीचे रहता है, तभी वे टूटकर दूसरों को बंधने की शक्ति खोते हैं। परीक्षाएं जब मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य को क्षत-विक्षत कर डालती हैं, तब उनमें उत्तीर्ण होने-न-होने का कोई मूल्य नहीं रह जाता।

सुभद्रा जो महिमामयी माँ थी उसकी वीरता का स्रोत भी वात्सल्य ही था। जिस तरह मधुमक्खी विभिन्न फूलों से शहद बनाती है उसी प्रकार कोमल कठिन सह्य-असह्य अनुभवों से सुभद्राजी जीवन बनाती थीं। उनमें विवेचन शक्ति थी। उन्होंने कई समस्याओं का अपने निष्कर्ष से चमत्कारी हल निकाला। महादेवी लिखती हैं-

जब स्त्री का व्यक्तित्व उसके पति से स्वतंत्र नहीं माना जाता था, तब वे कहती हैं, "मनुष्य की आत्मा स्वतंत्र है। फिर चाहे वह स्त्री-शरीर के अंदर निवास करती हो, चाहे पुरुष-शरीर के अंदर। इसी से पुरुष तथा स्त्री का अपना-अपना व्यक्तित्व अलग रहता है। जब समाज और परिवार की सत्ता के विरुद्ध कुछ कहना अधर्म माना जाता था, तब वे कहती हैं, "समाज और परिवार व्यक्ति को बंधन में बाँधकर रखते हैं। ये बंधन देशकालानुसार बदलते रहते हैं। सुभद्रा जी ने परंपराओं एवं रूढ़ियों को तोड़ा है। महादेवी लिखती हैं-

अनेक समस्याओं की तरफ उनकी दृष्टि इतनी पैनी है कि सहज भाव से कही सरल कहानी का अंत भी हमें झकझोर डालता है।

वे राजनीतिक जीवन में ही विद्रोहिणी नहीं रही, अपने पारिवारिक जीवन में भी उन्होंने अपने विद्रोह को सफलतापूर्वक उतारकर उसे सृजन का रूप दिया था।

देश की जिस स्वतंत्रता हेतु उन्होंने अपने जीवन के वासंती सपने अंगारों पर रख दिये थे, उसकी प्राप्ति के उपरांत भी जब उन्हें सब ओर अभाव और पीड़ा दिखाई दी, तब उन्होंने अपने संघर्षकालीन साथियों से भी विद्रोह किया। उनकी उग्रता का अंतिम परिचय तो विश्ववंद्य बापू की अस्थि-विसर्जन के दिन प्राप्त हुआ। वे कई सौ हरिजन महिलाओं के जुलूस के साथ-साथ सात मील पैदल चलकर नर्मदा किनारे पहुँची। पर अन्य संपन्न परिवारों की सदस्याएं मोटरों पर ही जा सकीं। जब अस्थि-प्रवाह के उपरांत संयोजित सभा के घेरे में इन पैदल आने वालों को स्थान नहीं दिया गया, तब सुभद्रा जी का क्षुब्ध हो जाना स्वाभाविक ही था। उनका क्षात्रधर्म तो किसी प्रकार के अन्याय के प्रति क्षमाशील हो नहीं सकता था। जब उन हरिजनों को उनका प्राप्य दिला सकीं तभी वे स्वयं सभा में शामिल हुईं।

उनके स्नेह ने घर को सदा सुरक्षित रखा। सुभद्रा जब महादेवी के घर आती थीं, तो उनकी नौकरानी भक्तिन तक रौब झाड़ती थी तथा उनके सामने महादेवी भक्तिन को नहीं डांटती थीं। वे सुभद्रा के स्नेह के बारे में लिखती हैं—

बंगले में आकर देखती कि सुभद्राजी रसोई या बरामदे में भानमती का पिटारा खोल बैठी है तथा उसमें से अद्‌भुत वस्तुएं निकल रही हैं। छोटी-छोटी पत्थर या शीशे की प्यालियां, मिर्च का अचार, बासी पूरी, पेड़े, रंगीन चकला-बेलन, चुटीली, नीली-सुनहरी चूड़ियां आदि-आदि सब कुछ मेरे लिए आया है, इस पर कौन विश्वास करेगा। पर वह आत्मीय उपहार मेरे निमित्त ही आता है।

ऐसे भी अवसर आ जाते थे, जब वे किसी कवि-सम्मेलन में आते-आते प्रयाग उतर नहीं पाती थीं। और मुझे स्टेशन जाकर ही उनसे मिलना पड़ता था। ऐसी कुछ क्षणों की भेंट में भी एक दृश्य की अनेक आवृत्तियां होती ही रहती थीं। वे अपने थैले से दो चमकीली चूड़ियां निकालकर हंसती हुई पूछतीं, "पसंद हैं? मैंने दो तुम्हारे लिए खरीदी थीं। तुम पहनने में तोड़ डालोगी। लाओ अपना हाथ, मैं पहना देती हूं।" पहन लेने पर वे बच्चों के समान प्रसन्न हो उठतीं।

जब दोनों मिलती थीं तो हमेशा हंसती रहती थीं। उन्होंने निश्चय किया कि सभा में नहीं हंसेंगी पर सुभद्रा जी गांभीर्य को तोड़ देती थीं।

अनेक कवि-सम्मेलनों में हमने साथ भाग लिया था, पर जिस दिन मैंने अपने न जाने का निश्चय और उसका औचित्य उन्हें बता दिया उस दिन से अंत तक कभी उन्होंने मेरे निश्चय के विरुद्ध कोई आग्रह नहीं किया।

आर्थिक स्थितियां उन्हें ऐसे निमंत्रण स्वीकार करने हेतु विवश कर देती थीं, लेकिन मेरा प्रश्न उठते ही वह कह देती थीं, मैं तो विवशता से जाती हूं, पर महादेवी नहीं जाएगी, नहीं जाएगी।

साहित्य-जगत में आज जिस सीमा तक व्यक्तिगत स्पर्द्धा, ईर्ष्या-द्वेष है, उस सीमा तक तब नहीं था, यह सत्य है। पर एक-दूसरे के साहित्य-चरित्र स्वभाव संबंधी निंदा पुराण तो सब युगों में नानी की कथा के समान लोकप्रियता पा लेता है। अपने किसी भी परिचित-अपरिचित साहित्य-साथी की त्रुटियों के प्रति सहिष्णु रहना तथा उनके गुणों के मूल्यांकन में उदारता से काम लेना सुभद्रा जी की निजी विशेषता थी। अपने को बड़ा बनाने के लिए दूसरों को छोटा प्रमाणित करने की दुर्बलता उनमें असंभव थी।

महादेवीजी अंत में लिखती हैं-एक बार सुभद्रा से बात करते-करते मृत्यु की चर्चा चल पड़ी थी। महादेवी कहती हैं- मैंने कहा 'मुझे तो उस लहर की-सी मृत्यु चाहिए जो तट पर दूर तक आकर चुपचाप समुद्र में लौट कर समुद्र बन जाती है।' सुभद्रा बोलीं, 'मेरे मन में तो मरने के बाद भी धरती छोड़ने की कल्पना नहीं है। मैं चाहती हूं, मेरी एक समाधि हो, जिसके चारों ओर नित्य मेला लगता रहे, बच्चे खेलते रहें, स्त्रियां गाती रहें और कोलाहल होता रहे। अब बताओ तुम्हारी नामधाम रहित लहर से यह आनंद अच्छा है या नहीं।

महादेवी वर्मा द्वारा रचित निराला के विचार

एक दिन महादेवी वर्मा ने निरालाजी से पूछा आपको किसी ने राखी क्यों नहीं बाँधी-निराला ने उत्तर दिया कौन बहिन हम जैसे भुक्खड़ को अपना भाई बनावेगी। इस पर महादेवी ने निरालाजी के जीवन को व्यवस्थित करने का भार लिया, जो उनके अनुसार किसी जीवंत बवंडर या तूफान को कच्चे सूत में बाँधने जैसा था।

उन्हें निराला जी के तीन सौ रुपये देकर उसका बजट बनाने को कहा यह कार्य महादेवी के लिए अत्यंत दुष्कर था-एक बजट उन्होंने बनाया जो निरालाजी को अच्छा लगा पर वह बजट तुरंत ही असफल हुआ क्योंकि दूसरे दिन ही उन्होंने पचास रुपये किसी विद्यार्थी की फीस के लिए माँगे, शाम को साहित्य मित्र हेतु साठ रुपये माँगे एवं किसी तांगे वाले को चालीस रुपये मनीआर्डर करने पड़े। दोपहर को किसी भतीजी के विवाह के उपहार हेतु सौ रुपये की जरूरत हुई, अत: समस्त रुपया समाप्त हो गया। तात्पर्य यह कि महादेवी को स्वयं के पास से रुपया देना पड़ा, वे समझ गईं कि ऐसे ओढर दानी को यदि रोका न गया तो वे महादेवी को भी स्वयं के समान निर्धन बना देंगे। अत: बजट बनाने का दु:साहस त्याग दिया।

उनके लिए बनवायी रजाई-कोट को उन्होंने दूसरे दिन ही दान कर दिया। एक दिन मैथिलीशरण गुप्त निराला के पास अतिथि बनकर आये। वहाँ गुप्तजी ने देखा-खाली तेल का दिया, रसोईघर में अधजली लकड़ियां, ओंधी पड़ी बटलोई एवं खाली आटे की गठरी दिखी जो उनकी निर्धनता व्यक्त कर रहे थे। वह घर आत्मीयता से भरा था। अब निरालाजी नया घड़ा खरीद कर लाये तथा धोती चादर बिछाकर गुप्तजी को बैठा दिया। दोनों ने क्या कहा-सुना यह तो ज्ञात नहीं किन्तु प्रात: उन्हें रेल में बैठाकर रवाना कर दिया। इस प्रकार के कई संस्मरण यहाँ हैं। एक दिन कहा-मेरे घर में कुछ लकड़ियां, घी इत्यादि रखा दो, क्योंकि कुछ अतिथि आये हैं। उनमें बालकों जैसा विस्मय था। भला उनके अतिथि दूसरे के गृह में भोजन कैसे करने जावें। वे अतिथियों के लिए भोजन बनाने से झूठे बर्तन माँजने तक का कार्य करते हैं। अब अतिथि कम आते हैं-आने पर वे नौकरों से कार्य करवा देते हैं। उनकी व्यथा का वर्णन महादेवी के शब्दों में देखें-

उनकी व्यथा की सघनता जानने का मुझे एक अवसर मिला है। श्री सुमित्रानंदन जी दिल्ली में टाइफाइड ज्वर से पीड़ित थे। इसी बीच घटित को साधारण और अघटित को समाचार मानने वाले किसी समाचार-पत्र ने उनके स्वर्गवास की झूठी खबर छाप डाली।

निराला जी कुछ ऐसी आकस्मिकता के साथ आ पहुँचे थे कि मैं उनसे यह समाचार छिपाने का भी अवकाश न पा सकी। समाचार के सत्य में मुझे विश्वास नहीं था, पर निराला जी तो ऐसे अवसर पर तर्क की शक्ति ही खो बैठते हैं। वे लड़खड़ा कर सोफे पर बैठ गए और किसी व्यक्त वेदना की तरंग के स्पर्श से मानो पाषाण में परिवर्तित होने लगे। उनकी झुकी पलकों से घुटनों पर चूने वाली आँसू की बूंदें बीच-बीच में ऐसे चमक जाती थीं मानों प्रतिमा से झड़े जूही के फूल हों।

स्वयं अस्थिर होने पर भी मुझे निराला जी को सांत्वना देनें के लिए स्थिर होना पड़ा। यह सुनकर कि मैंने ठीक समाचार जानने के लिए तार दिया है, वे व्यथित प्रतीक्षा की मुद्रा में तब तक बैठे रहे जब तक रात में मेरा फाटक बंद होने का समय न आ गया।

सवेरे चार बजे ही फाटक खटखटाकर जब उन्होंने तार के उत्तर के संबंध में पूछा तब मुझे ज्ञात हुआ कि वे रातभर पार्क के खुले आकाश के नीचे ओस से भीगी दूर पर बैठे सवेरे की प्रतीक्षा करते रहे हैं। उनकी निस्तब्ध पीड़ा जब कुछ मुखर हो सकी, तब वे इतना ही कह सके, 'अब हम भी गिरते हैं। पंत के साथ तो रास्ता कम अखरता था, पर अब सोचकर ही थकावट होती है।'

वे लिखती हैं-निरालाजी का सौहार्द्र एवं विरोध दोनों आत्मीयता के वृंत पर खिले दो फूल हैं।

एक संस्मरण है-एक बार ये अपरा के इक्कीस सौ रुपये के पुरस्कार को मंगवाने हेतु महादेवी से प्रार्थना करने लगे। उस समय वे धूल धूसरित थे एवं जीर्ण-शीर्ण उत्तरीय पहने थे। कहने लगे उन रुपयों से महादेवी द्वारा एक विधवा को पचास रुपया प्रतिमास भिजवाने की व्यवस्था की प्रार्थना की। उस धन का उपभोग उन्होंने नहीं किया। साहित्य का संसद में सब सुविधा होने पर भी वे स्वयंपाकी बने रहे। एक बार गेरू मंगवाने पर पूछा किसलिए तो बोले- मैं संन्यासी बनना चाहता हूं। वे तो मधुकटी अब भी खाते हैं। वे गेरुये वस्त्र पहनकर निकले तथा दो रोटी माँगकर खाने के बाद कविता लिखने लगे-महादेवी लिखती हैं-

इस सर्वथा नवीन परिच्छेद का उपसंहार कहाँ और कैसे होगा यह सोचते-सोचते मैंने उत्तर दिया, 'आपके संन्यास से मुझे तो इतना ही लाभ हुआ कि साबुन के कुछ पैसे बचेंगे। गेरुए वस्त्र तो मैले नहीं दिखेंगे। पर हानि यही है कि न जाने कहाँ-कहाँ छप्पर डलवाना पड़ेगा, क्योंकि धूप और वर्षा से पूर्णतया रक्षा करने वाले नीम और पीपल कम ही हैं।'

मन में एक प्रश्न बार-बार उठता है...क्या इस दश की सरस्वती अपने वैरागी पुत्रों की परंपरा अक्षुण्ण रखना चाहती है और क्या इस पथ पर पहले पग रखने की शक्ति उसने निराला जी में ही पायी है ?

निराला जी अपने शरीर, जीवन तथा साहित्य सभी में असाधारण हैं। उनमें विरोधी तत्वों की भी सामंजस्यपूर्ण संधि है। उनका विशाल डीलडौल, देखने वाले के हृदय में जो आतंक उत्पन्न कर देता है उसे उनके मुख की सरल आत्मीयता दूर करती चलती है।

उनकी दृष्टि में दर्प तथा विश्वास की धूपछांही द्वाभा है। इस दर्प का संबंध किसी हल्की मनोवृत्ति से नहीं और न उसे अहं का सस्ता प्रदर्शन ही कहा जा सकता है। अविराम संघर्ष और निरंतर विरोध का सामना करने से उनमें जो एक आत्मनिष्ठा उत्पन्न हो गयी है उसी का परिचय हम उनकी दृप्त दृष्टि में पाते हैं। कभी-कभी यह गर्व व्यक्ति की सीमा पार कर इतना सामान्य हो जाता है कि हम उसे अपना, प्रत्येक साहित्यकार का या साहित्य का मान सकते हैं। इसी से वह दुर्वह कभी नहीं होता। जिस बड़प्पन में हमारा भी कुछ भाग है वह हम में छोटेपन की अनुभूति नहीं उत्पन्न करता और परिणामत: इससे हमारा कभी विरोध नहीं होता। वे सदा सत्य का पालन करते थे। वे अन्याय का प्रतिकार लेखनी से करते थे। निराला जी अत्यंत निर्भय थे पर क्रूर नहीं थे। वे किसी से घृणा भी नहीं करते थे। वे क्रांति दर्शी थे तथा संचयवृत्ति से दूर थे। वे विद्रोही थे। इस संबंध में महादेवी के विचार देखें-

विद्रोह स्वभावत: होने के कारण निराला जी के लिए ऐसी रूढ़ियों पर प्रहार करना जितना प्रयासहीन होता है, उतना ही कौतुक का कारण।

दूसरों की बद्धमूल धारणाओं पर आघात कर उसकी खिजलाहट पर वे ऐसे ही प्रसन्न होते हैं जैसे होली के दिन कोई नटखट लड़का, जिसने किसी की तीन पैर की कुर्सी के साथ किसी की सर्वांगपूर्ण चारपाई, किसी की टूटी तिपाई के साथ किसी की नयी चौकी होलिका में स्वाहा कर डाली हो।

उनका विरोध द्वेषमूलक नहीं, पर चोट कठिन होती है। इसके अतिरिक्त उनके संकल्प और कार्य के बीच में ऐसी प्रत्यक्ष कड़ियां नहीं रहतीं, जो संकल्प के औचित्य और कर्म के सौंदर्य की व्याख्या कर सकें। उन्हें समझने के लिए जिस मात्रा में बौद्धिकता चाहिए उसी मात्रा में हृदय की संवेदनशीलता अपेक्षित रहती है। ऐसा संतुलन सुलभ न होने के कारण उन्हें पूर्णता में समझने वाले विरले मिलते हैं। ऐसे दो व्यक्ति सब जगह मिल सकते हैं जिनमें एक उनकी नग्न उदारता की प्रशंसा करते नहीं थकता और दूसरा उनके उद्धत व्यवहार की निंदा करते नहीं हारता। जो अपनी चोट के पार नहीं देख पाते वे उनके निकट पहुँच ही नहीं सकते, अत: उनके विद्रोह की असफलता प्रमाणित करने के लिए उनके चरित्र की उजली रेखाओं पर काली तूली फेरकर प्रतिशोध लेते रहते हैं। निराला जी के संबंध में फैली हुई भ्रांत किंवदंतियां इसी निम्न वृत्ति से संबंध रखती हैं। वे विशिष्ट प्रतिभाशाली थे, अत: उन्हें युग का अभिशाप भोगना पड़ा। उन्हें माता, पिता, बहन, भाई, एवं पत्नी वियोग सहना पड़ा। पुत्री के अंतिम क्षणों में वे निरूपाय दर्शक रहे तथा पुत्र को उचित शिक्षा नहीं दे पाये। प्रतिकूल परिस्थितियों से कभी समझौता नहीं किया। वे साहित्य की एक निष्ठता के पर्याय हैं। वे लिखती हैं-

अर्थ की जिस शिला पर हमारे युग के न जाने कितने साधकों की साधनातरियां चूर-चूर हो चुकी हैं, उसी को वे अपने अदम्य वेग में पार कर आये हैं। उनके जीवन पर उस संघर्ष के जो आघात हैं वे उनकी हार के नहीं, शक्ति के प्रमाण-पत्र हैं। उनकी कठोर, श्रम, गंभीर दर्शन और सजग कला की त्रिवेणी न अछोर मरु में सूखती है न अकूल समुद्र में अस्तित्व खोती है।

जीवन की दृष्टि से निरालाजी किसी दुर्लभ सीप में ढले सुडौल मोती नहीं हैं, जिसे अपनी महार्घता का साथ देने के लिए स्वर्ण और सौंदर्य-प्रतिष्ठा के लिए अलंकार का रूप चाहिए। वे तो अनगढ़ पारस के भारी शिला-खंड हैं। न मुकुट में जड़कर कोई उसकी गुरुता संभाल सकता है और न पदत्राण बनाकर कोई उसका भार उठा सकता है। वह जहाँ है, वहाँ का स्पर्श सुलभ है। यदि स्पर्श करने वाले में मानवता के लौह परमाणु हैं तो किसी ओर से भी स्पर्श करने पर वह स्वर्ण बन जाएगा। पारस की अमूल्यता दूसरों का मूल्य बढ़ाने में है। उसके मूल्य में न कोई कुछ जोड़ सकता है न घटा सकता है।

अंत में वे लिखती हैं-आज हम दंभ तथा स्पर्धा, अज्ञान और भ्रांति की ऐसी कुहेलिका में चल रहे हैं जिसमें स्वयं को पहचानना तक कठिन है, सहयात्रियों की यथार्थता में जानने का प्रश्न ही नहीं उठता। पर आने वाले युग इस कलाकार की एकाकी यात्रा का मूल्य आँक सकेंगे, जिससे अपने पैरों की चाप तक आँधी में खो जाती है।

निराला जी के साहित्य की शास्त्रीय विवचना तो आगामी युगों के लिए भी सुकर रहेगी, पर उस विवेचना के लिए जीवन की जिस पृष्ठभूमि की जरूरत होती है, उसे तो उनके समकालीन ही दे सकते हैं।

असाधारण प्रतिभावान तथा अपने युग से आगे देखने वाले कलाकारों के इतिवृत्त के चित्रण में एक और भी बाधा है। जब उनके समानधर्मी उनके जीवन का मूल्यांकन करते हैं तब कभी तो स्पर्धा उनकी तुला को ऊँचा-नीचा करती रहती है, कभी अपनी विशेषताओं का मोह उन्हें सहयोगियों में अपनी प्रतिकृति देखने हेतु विवश कर देता है। जब छोटे व्यक्तित्व वाले किसी असाधारण व्यक्तित्व की व्याख्या करने चलते हैं तब कभी तो उनकी लघुता उसे घेर नहीं पाती और कभी उसके तीव्र आलोक में अपने अहं को उद्‌भासित कर लेने की दुर्बलता उन्हें घेर लेती है। इस तरह महान कलाकारों के यथार्थ चित्र व्याख्या बहुल हों तो विस्मय की बात नहीं।

साहित्य के नवीन युग-पथ पर निराला जी की अंक-स्मृति गहरी और स्पष्ट, उज्जवल और लक्ष्यनिष्ठ रहेगी। इस मार्ग के हर फूल पर उनके चरण का चिन्ह तथा हर शूल पर उनके रक्त का रंग है।

'पथ के साथी' के आधार पर महादेवी जी के रेखाचित्रों की कला पर विचार

हिन्दी गद्य साहित्य में रेखाचित्र, संस्मरण, चरित्र प्रधान कहानी आदि कतिपय विधाएं इस रूप में भी प्रचलित हैं जहाँ वे किसी न किसी बिन्दु पर समानता लिए हुए हैं या उनमें मिली-जुली रंगत है। सुप्रसिद्ध गद्यकर्त्री व कवयित्री महादेवी वर्मा की इस दिशा में तीन कृतियाँ प्रणीत हैं-'स्मृति की रेखाएं', 'अतीत के चलचित्र' व 'पथ के साथी'। इनमें कहानी के विषय में इतना विवाद नहीं है, परन्तु कौनसी संस्मरण है व कौनसी रेखाचित्र है? इस विषय में अभी भी निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। जहाँ तक 'पथ के साथी' नामक कृति का प्रश्न है, इसे कुछ विद्वान् रेखाचित्र कहते हैं, तो कतिपय समालोचक संस्मरण मानते हैं तथा अन्य संस्मरणात्मक रेखाचित्र कहते हैं अर्थात् इसमें संस्मरण व रेखाचित्र का मिश्रित रूप झलकता हुआ प्राप्त करते हैं। अत: इस कृति के विधागत औचित्य पर विचार करने से पूर्व रेखाचित्र व संस्मरण विषयक परिज्ञान आवश्यक है जो इस प्रकार है।

1. **रेखाचित्र का स्वरूप-** 'रेखाचित्र' हिन्दी की एक नवीन विधा है जो अंग्रेजी भाषा के स्कैच शब्द का पर्याय है। 'स्कैच' शब्द चित्रकला के अन्तर्गत आता है। जहाँ पर चित्रकार रंगों का प्रयोग करके चित्र नहीं बनाता, बल्कि रेखाएं होती हैं-पैंसिल स्कैच के समान। रेखाचित्र में साहित्यकार भी अपनी अनुभूति को लेखनी के द्वारा शब्द चित्र बनाता है या चित्रण करता है। जिस प्रकार चित्रकार अपनी तूलिका में कलामय स्पर्श के द्वारा रेखाओं को सजीव रूप देने की कोशिश करता है उसी

प्रकार रेखाचित्र अपने मानसपटल पर इधर-उधर फैली हुई स्मृति की रेखाओं को कला की तूलिका से स्वानुभूति के रंग में रंगकर सजीव शब्दचित्र का रूप दे देता है। जैसे चलचित्र में 'क्लोज-अप' में चेहरा बड़ा होते-होते समस्त पर्दे पर परिव्याप्त हो जाता है। उसी प्रकार रेखाचित्र में व्यक्ति या व्यक्तित्व ही प्रमुख हो उठता है, शेष सब अप्रधान हो जाते हैं। रेखाचित्र के विषय में विद्वानों के मत इस प्रकार हैं-

(अ) **डॉ. भागीरथ मिश्र का कथन है-** अपने सम्पर्क में आए हुए किसी विलक्षण व्यक्तित्व अथवा संवेदना जगाने वाली, सामान्य विशेषताओं से युक्त किसी प्रतिनिधि चरित्र के मर्मस्पर्शी स्वरूप की देखी-सुनी या संकलित घटनाओं की पृष्ठ-भूमि में इस प्रकार उभारकर रखना कि उसके हमारे हृदय में एक निश्चित प्रभाव अंकित हो जाए, रेखाचित्र या शब्द चित्र कहलाता है।

(आ) **बाबू गुलाबराय की धारणा है-** 'रेखाचित्र' या स्कैच कहानी के बहुत निकट होते हुए भी उससे भिन्न है। रेखाचित्र में एक वस्तु या पात्र का चित्रांकन रहता है और वह एक प्रकार से स्थायी होता है।

(इ) **'हिन्दी साहित्य कोष' की परिभाषा के अनुसार-** 'रेखाचित्र' कहानी से मिलता-जुलता साहित्यिक रूप है। यह नाम अंग्रेजी के 'स्कैच' शब्द की नापतौल पर गढ़ा गया है।

(ई) **डॉ. अवतरे का कहना है-** 'रेखाचित्र' संस्मरण का ही विकसित कलात्मक रूप है।

(उ) **आचार्य विश्वनाथ प्रसाद का मत है-** 'इनमें (रेखाचित्रों में) कहीं तो कुछ शब्दों को ही लेकर विचार-सारणी चली और कहीं व्यक्ति को, कहीं वस्तु को, कहीं भाव को, कहीं स्मृति को तथा कहीं व्यंग्य को।'

(ऊ) **डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में कहा जा सकता है-** 'जब चित्रकला का यह शब्द साहित्य में आया तो इसकी परिभाषा भी स्वभावत: इसके साथ आई अर्थात् रेखाचित्र एक ऐसी रचना के लिए प्रयुक्त होने लगा जिसमें रेखाएं हों पर मूर्त रूप अर्थात् कथानक का उतार-चढ़ाव आदि न हो, तथ्य का उद्घाटन मात्र हो।'

(ए) **डॉ. बच्चन सिंह की अवधारणा है-** 'रेखाचित्रों में आलम्बन के रूप-सौन्दर्य और उसकी चेष्टाओं आदि को अंकित किया जा सकता है।'

रेखाचित्र की उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि रेखा चित्र में किसी व्यक्ति-विशेष का यथार्थ चित्रण होता है जिसमें उसकी मार्मिक और विशिष्ट घटनाएं चित्रित होती हैं। लेखक भावुक और अत्यन्त संवेदनशील होकर उन घटनाओं का चित्रात्मक शैली में अंकन करता है जिससे पाठकों पर व्यक्ति विशेष का व्यापक प्रभाव पड़ता है। रेखाचित्र का उद्देश्य वर्णित पात्र के प्रति पाठकों के हृदय में संवेदना और प्रेम की भावनाएं जाग्रत करना है। अत: इसकी भाषा सहज व सुबोधगम्य होती है जिसने जन-साधारण इसे पढ़कर समझ सके और पूरा आनन्द प्राप्त करने में समर्थ हो सके।

अत: कहा जा सकता है कि जिस प्रकार एक चित्रकार अपनी तूलिका के सहारे विविध रंगों की रेखाएं खींचकर अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है, उसी प्रकार रेखाचित्रकार भी रेखाचित्र में अपने शब्दों के माध्यम से किसी व्यक्ति का अनुभूति व संवेदना के आधार पर चित्रांकन करता है।

अत: गोपाल कृष्ण कौल के शब्दों में-'रेखाचित्र केवल व्यक्तियों का ही नहीं; स्थान, वातावरण और भावात्मक व्यक्तित्व का भी खींचा जाता है। रेखाचित्र और कैमरा मैन का काम एक-सा है। जैसे-कैमरा मैन जो जैसा है, उनको वैसा ही कैमरे द्वारा चित्रित करने का प्रयत्न करता है। किन्तु यथातथ्य चित्रण में मात्र कैमरे का लैंस ही काम नहीं करता बल्कि कैमरा मैन की 'ऐंगिल' देने और पोज' लेने की दृष्टि भी बड़ा काम करती है। रेखाचित्रकार भी एक पैनी दृष्टि रखता है। वह वस्तु

या व्यक्ति में स्थित अनेक प्रभावों और प्रतिक्रियाओं के दर्शन करके मात्र शरीर का ढाँचा ही नहीं खींचता, बल्कि मन, आत्मा और जीवन की विशेषताओं का भी नक्शा अपनी रेखाओं में प्रस्तुत करता है। रेखाचित्र की सीमा बड़ी नहीं हो सकती। उसका अधिक विस्तार उसके सौन्दर्य को नष्ट कर देता है।

2. **संस्मरण का स्वरूप-** 'संस्मरण' किसी व्यक्ति की स्मृतियों को चित्रित करना है। संस्मरण भी रेखाचित्र के सर्वाधिक निकट विधा है। जहाँ संस्मरण में किसी साधारण या विशिष्ट व्यक्तित्व से सम्बन्धित किसी संवेदनशील स्मृति का प्रत्यक्षीकरण कराया जाता है, वहाँ रेखाचित्र में भी किसी ऐसे व्यक्ति का वर्णन किया जाता है जिसकी स्मृति प्राय: उद्वेलित करती रहती है तथा जो अपनी चारित्रिक विशेषताओं के कारण अपनी गहरी छाप छोड़ जाता है। संस्मरण में भी रेखाचित्र के समान यथार्थता रहती है, कोरी कल्पना नहीं रहती। लेखक की पात्र के प्रति आत्मीयता और सच्ची संवेदना रहती है। संस्मरण की परिभाषाएं इस प्रकार की गयी हैं-

(क) **डॉ. भगीरथ मिश्र का कथन है-** 'संस्मरण प्राय: किसी प्रसिद्ध व्यक्ति के होते हैं जो उसकी मृत्यु के उपरान्त लिखे जाते हैं।'

(ख) **आशा गुप्त की धारणा है-** 'अतीत के धूमिल चित्रों की साकार अभिव्यक्ति ही संस्मरण है।'

(ग) **डॉ. वासुदेव सिंह के शब्दों में-** 'किसी व्यक्ति की स्मृतियों को चित्रित करना संस्मरण कहा जा सकता है। संस्मरण में निजी अनुभूतियों को वाणी का रूप दिया जाता है। वे प्राय: परिचित व्यक्तियों से सम्बद्ध होती हैं।

(घ) **डॉ. रामचन्द वर्मा की अवधारणा है-** 'भावुक कलाकार का अतीत की अनन्त स्मृतियों में से कुछ स्मरणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अनुरंजित कर तथा व्यंजना मूलक संकेत शैली में अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं से विशिष्ट कर रोचक ढंग से यथार्थ रूप में अभिव्यक्त कर देने का नाम संस्मरण है।'

इन परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि संस्मरण में लेखक आत्मअनुभूतियों के आधार पर किसी पात्र विशेष का यथार्थ चित्रण करता है उस पात्र के प्रति आत्मीयता, संवेदनशीलता तथा भावुकता रहती है अत: उनके जीवन की मार्मिक घटनाओं का चित्रण विशेष रूप से किया गया है। संस्मरण की भाषा शैली अत्यन्त चुस्त और प्रवाहपूर्ण होती है।

3. **रेखाचित्र और संस्मरण में समानता-** यद्यपि रेखाचित्र और संस्मरण दोनों साहित्य की विधाएं हैं, परन्तु कुछ बिन्दुओं पर दोनों में साम्य है जो इस प्रकार है-

(i) *रेखाचित्र में जिस प्रकार किसी विशिष्ट-व्यक्ति या पात्र का ही चित्रण होता है उसी प्रकार संस्मरण भी एक ही व्यक्ति को केन्द्र में रखकर प्रस्तुत किया जाता है।*

(ii) *जिस प्रकार रेखाचित्र में यथार्थ व वास्तविकता के आधार पर चित्रण रहता है उसी प्रकार संस्मरण में भी तथ्यात्मक घटनाएं प्रस्तुत की जाती हैं।*

(iii) *रेखाचित्र में संस्मरण के समान ही सत्यं-शिवं-सुन्दरम् के आदर्श का पालन करना पड़ता है।*

(iv) *रेखाचित्र में जैसे आत्मनिष्ठा व्यक्ति के प्रति रहती है वैसे ही संस्मरण में व्यक्ति या पात्र के प्रति आत्मीयता बनी रहती है।*

(v) *रेखाचित्र व संस्मरण दोनों का उद्देश्य अपने पात्र या व्यक्ति के प्रति पाठकों की संवेदना जागृत करना है।*

(vi) *जैसे रेखाचित्र में पात्र की प्रवृत्तिगत विशेषताएं अंकित रहती हैं वैसे ही संस्मरण में भी।*

(vii) *संस्मरण जैसे स्मृति के आधार पर अभिव्यक्त किया जाता है वैसे ही स्मृति को रेखाचित्र में भी माध्यम बनाते हैं।*

(viii) *जैसे रेखाचित्र का बहुत विस्तार नहीं किया जाता वैसे ही संस्मरण में भी संक्षिपतता रहती है।*

(ix) *रेखाचित्र व संस्मरण में प्राय: चित्रात्मक शैली का प्रयोग किया जाता है यद्यपि अन्य शैली न अपनाने का कोई भी विरोध नहीं है।*

(x) *रेखाचित्र और संस्मरण में कदाचित अतिरंजना हो सकती है, जिससे व्यक्ति के व्यक्तित्व को व्यापक बनाया जा सके, परन्तु दोनों में असत्यता के लिए अवसर नहीं है।*

(xi) *जो व्यक्ति अपनी चारित्रिक विशेषताओं के कारण अपनी गहरी छाप हृदय-पटल पर अंकित कर जाता है उन्हीं के रेखाचित्र भी प्रस्तुत किए जाते हैं और संस्मरण भी।*

इस प्रकार कतिपय बिन्दुओं पर रेखाचित्र और संस्मरण में समानताएं हैं। इसी कारण कुछ कृतियों के विषय में भ्रम बना रहता है कि वे रेखाचित्र हैं या संस्मरण हैं।

4. **रेखाचित्र और संस्मरण में असमानता-** रेखाचित्र व संस्मरण साहित्य की अलग-अलग विधाएं हैं। न तो रेखाचित्र को संस्मरण कहा जा सकता है और न संस्मरण को रेखाचित्र। यदि ये दोनों विधाएं एक ही होती तो इनके नामान्तर न दिखाई पड़ते, तब तो दोनों एक दूसरे के पर्याय बनकर रह जाते। सामान्य रूप से दोनों में निम्नलिखित वैषम्य हैं-

(i) *बाबू गुलाब राय का कथन है-'जहाँ रेखाचित्र वर्णनात्मक अधिक होते हैं, वहाँ संस्मरण विवरणात्मक अधिक होते हैं।*

(ii) *संस्मरण प्राय: किसी प्रसिद्ध व्यक्ति के होते हैं जो प्राय: उसकी मृत्यु के पश्चात् लिखे जाते हैं जबकि रेखाचित्र में किसी अप्रसिद्ध, उपेक्षित व दीन-हीन व्यक्ति की भी प्रभावकारी विशेषताओं को प्रस्तुत किया जाता है।*

(iii) *रेखाचित्र व्यक्ति प्रधान होते हैं तो संस्मरण घटना प्रधान।*

(iv) *संस्मरण पात्र के किसी एक पहलू की झाँकी देते हैं, किन्तु रेखाचित्र व्यक्ति के व्यापक व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हैं।*

(v) *रेखाचित्र में व्यक्ति की प्रवृत्तिगत विशेषताएं जितनी अधिक मात्रा में स्पष्ट होती हैं, उतनी संस्मरण में नहीं।*

(vi) *संस्मरण का सम्बन्ध देश, काल व पात्र तीनों से हैं, रेखाचित्र का देश व काल से प्राय: अधिक सम्बन्ध रहता है।*

(vii) *संस्मरण में रेखाचित्र की अपेक्षा आत्मनिष्ठा अधिक होती है लेखक संस्मरण में अपने विषय में भी कुछ लिख सकता है, जबकि रेखाचित्रकार अपने विषय में मौन रहता है।*

(viii) *संस्मरण में कोई भी शैली अपनाई जा सकती है जबकि रेखाचित्र में चित्रात्मक शैली ही अपनाई जाती है।*

(ix) *संस्मरण की अपेक्षा रेखाचित्र सत्य के अधिक निकट होता है।*

इस प्रकार रेखाचित्र और संस्मरण असमान है। दोनों विधाएं अपना-अपना क्षेत्र, अपनी शैली व अपना निजी महत्त्व रखती हैं।

5. **'पथ के साथी' का साहित्य-रूप-** 'पथ के साथी' कृति में महादेवी वर्मा ने सात साहित्यकारों का चित्रण किया है। वे साहित्यकार हैं- (1) कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर, (2) मैथिलीशरण गुप्त, (3) सुभद्राकुमारी चौहान, (4) सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (5) जयशंकर प्रसाद, (6) सुमित्रानन्दन पंत, (7) सियाराम गुप्त। वस्तुत: ये पथ के साथ ही रहे। महादेवी वर्मा साहित्य-साधिका थीं और ये भी साहित्य के उपासक थे परन्तु ये सभी समसामयिक साहित्यकार थे, जो तत्कालीन हिन्दी साहित्य के महान् कलाकार और साहित्य-साधक थे। दूसरी बात यह है कि महादेवी वर्मा ने युगीन सभी साहित्यकारों का विवेचन नहीं किया, बल्कि सात उच्चस्तरीय साहित्यकारों के विषय में भी भावाभिव्यक्ति की है। रवीन्द्र कवीन्द्र जैसे महान् साहित्यकार तो आयु में भी बहुत बड़े हैं और अनुभव में भी। लेखिका ने स्वयं उनके प्रति अगाध श्रद्धाभाव व्यक्त किया है। तीसरी बात यह है कि इन सातों साहित्य-साधकों के जीवन को चित्रित करते समय लेखिका ने उनके प्रति अपना दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया है। 'पथ के साथी' कृति में लेखिका ने जहाँ सात विवेच्य व्यक्तियों के व्यक्तित्व को अंकित किया है वहाँ उनका अपना जीवन और व्यक्तित्व भी आ गया है। प्रसंगानुसार महादेवी वर्मा में अपने जीवन, विचार, रुचि, भावना आदि को भी अभिव्यक्त किया है। कभी-कभी तो ऐसा प्रतीत होता है कि उन व्यक्तियों के परिचय के साथ-साथ लेखिका अपने विषय में इतनी भावुक हो गयी है मानो आत्माभिव्यक्ति ही प्रधान हो गयी हो। जैसे पंत के संस्मरण में वे कहती हैं-"उस समय प्रयोग में 'कॉस्थवेट गर्ल्स कालेज' का विशेष महत्त्व था। यदि किसी छात्रा को परीक्षा में उच्चस्थान मिलता तो उसकी विद्यार्थिनी होना स्वाभाविक था।...इण्टर तक पहुँच जाने पर भी परीक्षा के दिनों में मुझे पुस्तकों के साथ बाँधे रखने के लिए आचार्य सुधालता को प्रलोभन देना पड़ता था कि तीन घण्टे बैठकर पढ़ने के बाद आइसक्रीम मिलेगी। ग्रीष्म की दोपहर के सुनसान में मेरी दृष्टि पुस्तक के पृष्ठ और घड़ी की सुई के बीच दौड़ लगाती रहती थी।" इसी कारण पथ के साथी (रवीन्द्र कवीन्द्र, गुप्त, सुभद्रा कुमारी, निराला, प्रसाद, पंत व सियाराम गुप्त) के व्यक्तित्व व कृतित्व से जहाँ पाठकों को इनका का परिचय प्राप्त होता है वहाँ महादेवी के जीवन और व्यक्तित्व की भी झलक मिलती है।

इसी कारण 'पथ के साथी' में रेखाचित्र की सभी विशेषताएं प्राप्त नहीं होती। यद्यपि कुछ साहित्यकार व विद्वान् विवेच्य कृति को शुद्ध रेखाचित्र मानते हैं, परन्तु इसमें संस्मरण की अनेक प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। इस दृष्टि से इसे संस्मरण भी कहा जा सकता है। वास्तव में इसमें संस्मरण की प्रवृत्तियों के साथ-साथ रेखाचित्र की विशेषताएं भी पाई जाती हैं। इसलिए 'पथ के साथी' रचना को विशुद्ध रेखाचित्र न मानकर संस्मरणात्मक रेखाचित्र मानना चाहिए।

'पथ के साथी' में अंकित जयशंकर प्रसाद के व्यक्तित्व व साहित्य का विवेचन

हिन्दी साहित्य के गौरव, छायावादी अनुपम कलाकार तथा विश्व-ख्याति प्राप्त हिन्दी-साहित्यकार जयशंकर प्रसाद के विषय में यह रेखाचित्र महादेवी वर्मा ने संस्मरणात्मक रूप में अभिव्यक्त किया है। प्रसाद जी मूल रूप से भारतीय संस्कृति के उपासक और संस्कृत भाषा के ज्ञाता रहे हैं। लेखिका ने उनके दर्शन भागलपुर से प्रयाग जाते समय किए थे जो 'प्रथम और अन्तिम बार' थे। लेखिका का कथन है-"मेरे चित्र की पृष्ठभूमि में उनका साहित्य, मेरा घंटों का परिचय और कुछ प्रचलित स्तुतिनंदापरक कथाएं ही हैं।" इसी समय उन्हें ज्ञात हो गया था कि प्रसाद जी काशी में 'सुंघनी साहु' के नाम से विख्यात रहे।

1. **जीवन परिचय-** प्रसाद का जन्म एक सम्पन्न व प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था जो ऋणग्रस्त था। भाई-बहिनों में सबसे छोटे होने के कारण उन्हें पर्याप्त स्नेह-दुलार प्राप्त था। किशोर अवस्था

में वे शारीरिक क्षमता के लिए बादाम खाते थे तथा कुश्ती लड़ते थे, परन्तु इसी अवस्था में उन्हें पारिवारिक दायित्व, आर्थिक व्यवस्था व ऋण का भार भी उठाना पड़ा था। युवावस्था में उन्होंने माता-पिता, बड़े भाई, दो पत्नियों व इकलौते पुत्र की वियोग-व्यथा को सहन किया था जिससे उनका मन अत्यन्त व्याकुल हो गया था। मानसिक आघात से उनके व्यथित हृदय से जो वेदना की मूक ध्वनि निसृत हुई, निःसंदेह उससे सच्चे और उदात्त साहित्य का जन्म हुआ। लेखिका महादेवी वर्मा ने उन्हें साहित्यकार के रूप में 'पथ के साथी' स्वीकार किया है। लेखिका ने प्रसाद के जीवन में एक प्रकार की वेदना अन्तरंग में देखी थी तथा शारीरिक रूप में उन्हें क्षय रोग ग्रस्त पाया था। अत: आन्तरिक और बाह्य दोनों रूप में संघर्षमय जीवन उन्होंने व्यतीत किया था।

2. **निश्चल व्यक्तित्व-** प्रसाद का व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक था। महादेवी वर्मा ने उनका कुछ ही समय दर्शन करके यह स्वीकार किया है कि वे साहित्य के क्षेत्र में साथी नहीं, बल्कि अग्रज थे। वे लिखती हैं-'लौटने का समय देख जब मैंने विदा ली तो ऐसा नहीं जान पड़ा कि मैं कुछ घंटों की परिचित हूँ। प्रसाद जी तांगे तक पहुँचाने आए और हमारी दृष्टि के ओझल होने तक खड़ रहे। अपने साहित्यिक अग्रज को फिर देखने को मुझे सुयोग नहीं प्राप्त हो सका।'

महादेवी का विचार था कि प्रसाद का व्यक्तित्व एक बौद्ध भिक्षु के समान हृष्ट-पुष्ट होगा, परन्तु उनके दर्शन करने के पश्चात् उन्होंने देखा-'न अधिक ऊँचा, न नाटा, मझोला कद, न दुर्बल, न स्थूल, छरहरा शरीर, गौर वर्ण, माथा ऊँचा और प्रशस्त, बाल न बहुत घने न विरल, कुछ भूरापन लिए काले; चौड़ाई लिए मुख, मुख की तुलना में कुछ हल्की सुडौल नासिका, आँखों में उज्ज्वल दीप्ति, ओठों पर अनायास आने वाली हँसी, सफेद खादी का धोती-कुर्ता।' उनके इस व्यक्तित्व से लेखिका पर्याप्त प्रभावित हुई और उन्हें प्रसाद जी में 'उज्ज्वल स्वच्छता' की अनुभूति हुई थी। प्रसाद के एकाकी जीवन से लेखिका को यह भी अनुभव हुआ था कि प्रसाद जी जैसा व्यक्तित्व लिए कोई भी समसामयिक साहित्यकार संभव नहीं है। लेखिका ने जब कभी भी प्रसाद जी को याद किया तभी उसके स्मृति-पटल पर उनका व्यक्तित्व इस प्रकार अंकित हो गया-

'हिमालय के ढाल पर उसकी गर्वीली चोटियों से समता करता हुआ एक सीधा ऊँचा देवदारू वृक्ष था। उसका उन्नत मस्तक हिम-आतप-वर्षा से प्रहार झेलता था। उसकी विस्तृत शाखाओं को आँधी-तूफान झकझोरते थे और उसकी जड़ों से एक छोटी, पतली जलधारा आँख-मिचौली खेलती थी। ठिठुराने वाले हिमपात, प्रखर धूप और मूसलाधार वर्षा के बीच में भी उसका मस्तक उन्नत रहा और आँधी और बर्फीले बवंडर के झकोरे सहकर भी वह निष्कम्प निश्चल खड़ा रहा; पर जब एक दिन संघर्षों में विजयी के समान आकाश में मस्तक उठाये आलोक-स्नात वह उन्नत और हिमकिरीटनी चोटियों से अपनी ऊँचाई नाप रहा था-जिस उपेक्षणीय जलधारा का प्रहार हल्की गुदगुदी के समान जान पड़ता था, उसी ने तिल-तिल करके उसकी जड़ों के नीचे खोखला कर डाला और परिणामत: चरम-विजय के क्षण में वह देवदारू अपने चारों ओर के वातावरण को सौ-सौ ज्योतिश्चक्रों में मथता हुआ धरती पर आ रहा।' इससे स्पष्ट है कि प्रसाद जी देवदारू वृक्ष के समान थे जो अनेक संकटों और विषमताओं सा सामना निर्भर होकर करते रहे परन्तु क्षय रोग ने उनके जीवन को तिल-तिल करके नष्ट कर डाला। वस्तुत:, क्षय रोग ही उनकी यौवनावस्था में मृत्यु का मूल कारण था। लेखिका ने उनके व्यक्तित्व को अत्यन्त साहसपूर्ण और सहनशीलता के रूप में व्यक्त किया है। वे स्वच्छ व निर्मल हृदय वाले थे। उन के जीवन की स्थिति भले ही अनेक कष्ट पूर्ण क्षणों में व्यतीत हुई हो, परंतु उन्होंने अपने साहित्यिक कार्यों को नहीं छोड़ा। अस्वस्थ रहते हुए भी उन्होंने अपनी कृति 'कामायनी' को अपूर्ण नहीं रहने दिया। अत: वे सच्चे साहित्य-स्रष्टा भी थे।

3. **क्षयरोग से पीड़ित-** यद्यपि महादेवी वर्मा ने जयशंकर प्रसाद के जीवन को न तो बहुत अधिक रूप में देखा था और न बहुत अधिक जानने का ही प्रयास किया था, परन्तु उनके जीवन की

विषमता को देखकर उन्हें सबसे अधिक आश्चर्य इस विषय पर रहा है कि वे क्षय रोग-ग्रस्त होकर भी उसके निदान पर ध्यान नहीं देते रहे और न इस विषय में किसी से कुछ कहा। इसमें संदेह नहीं कि क्षय रोग का निदान व्यय साध्य था। वे स्वयं ऋणग्रस्त थे और पारिवारिक दायित्वों से घिरे हुए थे, परन्तु इतने संकोचशील थे कि अपने कष्ट को दूर करने के लिए किसी से भी याचना नहीं की। लेखिका को बहुत आश्चर्य होता है 'क्या इतने बड़े कलाकार का कोई ऐसा अन्तरंग मित्र नहीं था जो इस असम द्वन्द्व के बीच में खड़ा हो सकता' संभव है कि घर में कोई ऐसा बड़ा व्यक्ति नहीं था जिसके कथनानुसार प्रसाद जी के रोग का इलाज कराया जा सकता था। यह भी संभव है कि अपने पुत्र के अनुनय को उन्होंने स्वीकार न किया हो। महादेवी वर्मा नहीं समझ पाती कि-'पर क्या ऐसे आत्मीय बन्धु का भी उन्हें अभाव था जो उनके दुराग्रह को अपने सत्याग्रही-विरोध से परास्त कर क्षय के चिकित्सा-केन्द्रों तथा विशेषज्ञों का सहयोग सुलभ कर देता?'

महादेवी वर्मा ने अपने इन प्रश्नों का उत्तर जयशंकर प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' नाटक में देखा है। जहाँ सिंहरण के रूप में मानो प्रसाद कहते हैं- "अपने से बार-बार सहायता करने के लिए कहने में मानव-स्वभाव विद्रोह करने लगता है। यह सौहार्द और विश्वास का सुन्दर अभिमान है। उस समय मन चाहे अभिनय करता हो, संघर्ष से बचने का, किन्तु जीवन अपना संग्राम अंध होकर लड़ता है। कहता है-'अपने को बचाऊँगा नहीं, जो मेरे मित्र हों, आवे और अपना प्रमाण दें।"

4. **मनस्वी और संकोची-** प्रसाद जी मनस्वी थे, संकोची थे अत: किसी से स्नेह और सहानुभूति की याचना संभव नहीं थी। यह भी संभव है कि उन्होंने अपना जीवन-संग्राम भी अंध होकर लड़ा हो और अपने आपको बचाने का कोई प्रयत्न न किया हो। उन्हें किसी की प्रतीक्षा रही थी या नहीं थी? इसको भी कोई नहीं जानता। लेखिका को प्रसाद जी की पारिवारिक व आर्थिक विषमता जितनी गहन दिखाई थी उससे अधिक विषम उनका युवावस्था में क्षयरोग से ग्रस्त होकर संसार से विदा लेना जान पड़ा।

5. **पारिवारिक व्यथा-** लेखिका ने यद्यपि प्रसाद जी के जीवन की विविध घटनाओं का उल्लेख नहीं किया है, परन्तु जिन एक या दो घटनाओं ने उनके जीवन की मार्मिकता व्यक्त की है उनका संकेत अवश्य किया है। प्रसाद ने अपने तारुण्य में जहाँ पारिवारिक सदस्यों की असह्य वियोग-व्यथा सहन की थी और विधुर जीवन व्यतीत कर रहे थे वहाँ उनके समक्ष उनका एकमात्र किशोर पुत्र था। वे जानते थे कि उन्होंने अपने किशोर जीवन में कितनी व्यथा का भार वहन किया है। वे नहीं चाहते थे कि उनका अकेला पुत्र भी इस प्रकार के दुर्वह व्यथा-भरे जीवन के अभिशाप को झेलता रहे। अत: लेखिका लिखती है-'स्वाभाविक है कि वे अपने इतिहास की पुनरावृत्ति नहीं करना चाहते थे। तब दूसरा विकल्प यही हो सकता था कि वे पतवार फेंककर तभी समुद्र में इस प्रकार छोड़ दें कि वह दिशाहीन बढ़ती हुई जीवन-मरण के किसी भी तट पर लग सके। उन्होंने इसी को स्वीकार किया और अपने अदम्य साहस और आस्था से मृत्यु की उत्तरोत्तर निकट आने वाली पदचाप सुनकर भी विचलित नहीं हुए।'

6. **कवि का महाप्रयाण-** प्रसाद का जीवन, उनका व्यक्तित्व और साहित्य-सृजन इन तीनों का समन्वय उनके जीवन को अत्यन्त संवेदना युक्त बना देता है। उनके जीवन की मार्मिक घटनाएं, उनकी संकोचवृत्ति और उनका क्षय रोग-ग्रस्त होना किसके मानस को संवेदनात्मक नहीं बना सकता? महादेवी वर्मा अवश्य उनकी मानसिक वृत्तियों से परिचित थी। अत: तारुण्य में प्रसाद जी के महाप्रयाण को सुनकर व्याकुल हो उठी। वे कहती हैं-'मैं स्वयं कई दिन से ज्वरग्रस्त थी। एक बन्धु ने भीतर संदेश भेजा कि वे अत्यन्त आवश्यक सूचना लाए हैं। किसी प्रकार उठकर मैं बाहर दरवाजे तक पहुँची ही थी कि सुना, प्रसाद जी नहीं रहे। कुछ क्षण उनके कथन को समझने में लग गये और कुछ क्षण द्वार का सहारा लेकर अपने-आपको संभालने में। बार-बार उनका अन्तिम दर्शन स्मरण

आने लगा और साथ ही साथ उस देवदारू का, जिसे जल की क्षुद्र-धारा ने तिल-तिल काटकर गिरा दिया था।'

निःसंदेह, उनके जीवन में विषमताओं और पीड़ाओं की गहनता थी जिसका भार उन्होंने एकाकी वहन किया। एक और आर्थिक कष्ट व पारिवारिक व्यथा, तो दूसरी क्षय रोग पीड़ित शरीर। मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकार की व्यथाओं से व्यथित होकर भी न तो उन्होंने किसी से सहायता की याचना की और न अपने पारिवारिक गौरव को क्षीण होने दिया। लेखिका ने उनके दर्शन एक बार ही किए थे तथा तब वे उनके निवास-स्थान पर गयी थी। उसके पश्चात् प्रसाद जी अस्वस्थ रहने के कारण कहीं नहीं आते-जाते थे तथा महादेवी वर्मा भी प्रायः इधर-उधर नहीं जाती थी। यद्यपि प्रसाद जी के अस्वस्थ होने का समाचार उन्हें मिलता रहा। हिन्दी जगत को यह भी ज्ञात हो गया था कि प्रसाद जी क्षय रोग से पीड़ित हैं। परन्तु सभी यह जानते थे कि प्रसाद सम्पन्न हैं। अतः वे इस पीड़ा से शीघ्र मुक्ति प्राप्त कर लेंगे। उनकी वास्तविकता किसी को ज्ञान न थी। वे अस्वस्थ दशा में भी 'कामायनी' लिख रहे थे, परन्तु लेखिका को खेद होता है-'जब 'कामायनी' का प्रकाशन हो चुका था और हिन्दी-जगत एक प्रकार से पर्वोत्सव मना रहा था तब उनके महाप्रयाण की वेला आ पहुँची।'

कितनी बड़ी विडम्बना है कि एक ओर हिन्दी साहित्य जगत में 'कामायनी' जैसी कृति से खुशी की लहर व्याप्त हो रही है तो दूसरी ओर इस कृति के प्रणेता क्षय-रोग की पीड़ा के असह्य दुख से कराहकर संसार से प्रयाण कर रहे हैं। उनके जीवन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उन्होंने अन्तरंग और बहिरंग संघर्षों में भी मानसिक संतुलन बनाए रखा। लेखिका उनकी पीड़ाओं को आत्मसात् करती हुई उनके प्रति संवेदनशील होकर कहती हैं-'चाँदनी से धुले ज्वालामुखी के समान ही उनके भीतर की चिन्ता उनके अस्तित्व को क्षार करती रही हो तो आश्चर्य नहीं। उनकी अन्तर्मुखी वृत्तियाँ या रिजर्व भी इसी ओर संकेत करता है। पारिवारिक विरोध और प्रतिष्ठा की भावना के वातावरण में पलने वाले प्रायः गोपनशील हो जाते हैं। उसके साथ यदि कोई गंभीर उत्तरदायित्व हो तो यह संकोच उनके मनोभावों और बाह्य वातावरण के बीच में एक आग्नेय रेखा खींच देता है। कण-कण कटती हुई शिला के समान उनकी जीवन-शक्ति रिसती गई और जब उन्होंने जीवन के सब संघर्षों पर विजय प्राप्त कर ली तब वे जीवन की बाजी हार गये जिसमें हार जाने की संभावना उनके मन में नहीं उठी थी।'

7. **साहित्य वैशिष्ट्य-** प्रसाद छायावादी युग के ब्रह्मा माने जाते हैं तथा हिन्दी साहित्य के बहुमुखी प्रतिभाशाली कलाकार के रूप में विख्यात हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पश्चात् प्रसाद जी ऐसे कलाकार थे जिन्होंने साहित्य के विविध क्षेत्रों को स्पर्श किया था। एकांकी, प्रतीक रूपक, गीतिनाट्य, ऐतिहासिक नाटक आदि में उन्होंने नाटकीय स्थितियों का संचयन किया था। उनका निबन्ध-साहित्य गांभीर्य, दार्शनिकता और चिन्तनात्मक है। करुण मधुर गीत, अतुकान्त रचनाएं, मुक्त छंद, खण्ड काव्य आदि से ज्ञात है कि काव्य के विविध आयामों को स्वर दे सके। लघु कथा से लेकर दीर्घ कहानी का सृजन करना इस बात का प्रतीक है कि वे कथा-साहित्य के बहुमुखी सफल सृष्टा थे। वे उपन्यासकार भी थे। उनके 'कंकाल' उपन्यास में नागरिक यथार्थता है तो 'तितली' में भावात्मक ग्रामीणता। पत्रकारिता का क्षेत्र भी उनसे अछूता नहीं रहा। उन्होंने 'इन्दु' 'जागरण' जैसे पत्रों का सम्पादन कर इनकी सार्थकता सिद्ध कर दी। इस प्रकार वे प्रखर प्रतिभा-सम्पन्न थे।

8. **संघर्ष एवं सादगीपन-** प्रसाद जी अपने बाल्य जीवन अत्यन्त सम्पन्न था जब उन्हें सभी सुख था सुविधाएं थीं, पर्याप्त धन था तथा सभी प्रकार के साधन सुलभ थे। इसी सम्पन्नता में उन्होंने अपना शैशव व्यतीत किया। शिक्षा प्राप्त की, किशोर अवस्था भी इसी प्रकार व्यतीत हो गयी। परिणामस्वरूप उनके संस्कार, रहन-सहन आदि में किसी प्रकार का अभाव अनुभव नहीं किया, परन्तु

यौवनावस्था में पैर रखते ही उन पर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा, परिवार में माता-पिता, भाई, पत्नी आदि के अभाव में मानो वे टूटने लगे। अनेक समस्याएं मुँह बनकर खड़ी हो गयी। वे अपने वंश की मर्यादा का निर्वाह करना चाहते थे, परन्तु धीरे-धीरे अर्थाभाव के कारण क्षय रोग ग्रस्त होने के कारण उनका जीवन संघर्षमय बन गया। उन्होंने स्वाभिमान को नहीं जाने दिया। चाहे कितनी ही आवश्यकता हो, कभी भी किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया, कठिनाइयों को झेलते रहे। अपना उपचार भी नहीं कराते। उनके समक्ष पहले परिवार के अन्य सदस्य थे। फिर वे स्वयं थे। उनके इस आपत्तिग्रस्त जीवन का वर्णन करते हुए महादेवी वर्मा उन्हें एक देवदारु के रूप में प्रस्तुत करती हुई कहती है-'उसकी उन्नत मस्तक हिम-आताप-वर्षा के प्रहार को झेलता था। उसकी विस्तृत शाखाओं को आँधी तूफान झकझोरते थे-ठिठुरने वाला हिमपात, प्रखर धूप और मूसलाधार वर्षा के बीच में भी उनका मस्तक उन्नत रहा, आँधी और बर्फीले बवंडर के झकोरे सहकर भी वह निश्चल खड़ा रहा।'

चाहे उन्होंने कितने ही कष्ट सहन किए परन्तु अपने जीवन में सादगी को ही उन्होंने स्वीकार किया। धन चाहे उनके पास रहा या धनाभाव रहा। वे सादगी प्रकृति के व्यक्ति थे। महादेवी वर्मा जब उनसे मिलने जाती हैं तो केवल उनके रहन-सहन से ही नहीं बल्कि उनकी बैठक को देखकर ज्ञात कर लेती है कि उन्हें सादगी ही सदा प्रिय रही है। अत: वे कहती हैं-

"उनकी बैठक में ऐसा कुछ भी दिखाई नहीं दिया जिसे सजावट के अन्तर्गत रखा जा सके। कमरे में एक साधारण तख्त और दो तीन सादी कुर्सियाँ, दीवार पर दो तीन-चित्र, अलमारी में कुछ पुस्तकें।

इतना ही नहीं उनका पहनावा भी सादा था जब महादेवी वर्मा ने उन्हें देखा तो खादी का कुर्ता और खादी की धोती पहने हुए। ऐसा प्रतीत होता है कि सादगी उनके जीवन का अंग थी।

इस प्रकार जयशंकर प्रसाद एक महान् साहित्यकार होते हुए भी जीवन में सदा संघर्षों से जूझते रहे। सुखद जीवन के पश्चात् जब दुख जीवन आता है तो मानव मन टूट जाता है, एक निराशा व पीड़ा का अनुभव होता है। प्रसाद न तो कभी निराश हुए और न कभी हीनभावना के शिकार। वे तो सच्चे कलाकार थे। अस्वस्थ रहकर भी स्वस्थ साहित्य की साधना करते थे। 'कामायनी' उनकी हिन्दी साहित्य की अनुपम कृति है। वे भारतीय संस्कृति और संस्कृत भाषा के अमर कलाकार थे। रुग्ण शरीर, धनाभाव, विषम परिस्थितियों से घिरे रहने पर भी वे जीवन और साहित्य के क्षेत्र में समन्वयवादी कवि रहे।

सुमित्रानन्दन पंत के व्यक्तित्व का विश्लेषण 'पथ के साथी'

महादेवी वर्मा ने पथ के साथियों में कविवर सुमित्रानन्दन पंत का चित्रण प्रस्तुत संस्मरण में किया है। वे छायावादी कवि थे, परन्तु अन्य छायावादी कवियों की अपेक्षा उनका कवित्व किञ्चिद् भिन्न रहा है। वे तो मूलत: प्रकृति के चितेरे थे। यद्यपि लेखिका ने उनके जीवन के विविध पक्षों को उजागर किया है, फिर भी उनका प्रकृति के साथ अटूट सम्बन्ध स्वाभाविक था। पंत हिन्दी साहित्य के अमर कलाकार माने जाते हैं, परन्तु उनकी पहचान प्रकृति में सुकुमार कवि के रूप में की जाती है। प्रस्तुत संस्मरण के आधार पर पंत जी के व्यक्तित्व का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है-

1. **प्रकृति के प्रांगण में जन्म-** सुमित्रानंदन पंत प्रकृति के कवि माने जाते हैं इसका मूल कारण यह था कि उनका जन्म पर्वतीय प्रदेश कौसानी सा कूर्मांचल था जो प्राकृतिक सौन्दर्य का पालना था। लेखिका की दृष्टि में-'वहाँ हिम-श्रेणियाँ, रजत-वर्णमाला में लिखे सौन्दर्य के उज्ज्वल पृष्ठ के समान खुली रहती है। उस कत्यूर घाटी के बीच में खड़े होकर जब हम एक ओर हिमदुकूलिनी चोटियों को और दूसरी ओर चीड़-देवदारूओं की हरीतिमा से अवगुण्ठित कौसानी को देखते हैं तब हमें ऐसा जान पड़ता है मानो हिम-शिखरों की उज्ज्वल रेखाओं ने कौसानी के सौन्दर्य की कथा लिखी है।' प्रकृति के इस आँचल में पंत जी जब आँखें खोली तभी स्नेह-ममता का आँचल भरी जन्मदात्री माता संसार से कूच कर गयी थी। यह मातृविहीन पुत्र एक दिन कवि के रूप में प्रस्तुत हुआ।

महादेवी वर्मा को पंत से परिचय उस समय हुआ था जब वे ब्रजभाषा की समस्या पूर्ति करती थी तथा 'कॉस्थवेट गर्ल्स कालेज' में छात्रा के रूप में खड़ी बोली में भी कविता करती थी। तभी प्राय: कविसम्मेलनों में भाग लेने जाती थी। एक दिन श्री हरिऔध जी की अध्यक्षता में 'हिन्दू बोर्डिंग हाउस' में कवि सम्मेलन में लेखिका भाग लेने गयी थी जहाँ 'कोमल कृशांगी मूर्ति' के रूप में पंत जी का दर्शन अवश्य हुआ, पर वे इन्हें एक नारी के रूप में ही जान सकी। कुछ तो पंत जी की वेशभूषा, कुछ उनकी प्रारंभिक रचनाएं 'श्री नन्दिनी' के नाम से प्रकाशित हुई थी। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा के विवाह के अवसर ही लेखिका का सुमित्रानंदन पंत से पूर्ण परिचय हुआ।

2. **प्रकृति से प्रेरणा-** महादेवी वर्मा ने पंत जी को कवि के रूप में 'पथ के साथी' माना है। नि:संदेह वे साहित्यकार थे तथा विशेष रूप से छायावादी कवि थे जिन्हें प्रकृति का कवि या प्रकृति का चितेरा कहा जाता है। मातृविहीन बालक पंत ने प्रकृति में ही माँ का दुलार खोजा था। आजीवन कुमार रहने वाले कवि ने प्रकृति को ही सहचरी माना था। उनकी दृष्टि में प्रकृति सुन्दर है, दुख-सुख की संवेदना धारण करने वाली है तथा प्रत्येक क्षण मानव के साथ रहती है। कवि का मन उसमें रम गया था महादेवी वर्मा का कथन है-"आश्चर्य नहीं किशोर कवि प्रकृति के साथ ही दुकेला रहा। उसे झरनों-नदियों में लास दिखाई दिया, पक्षियों-भ्रमरों में संगीत सुनाई दिया, फलों-कलियों में हँसी की अनुभूति हुई, प्रभात का सोना मिला, रात में रजतराशि प्राप्त हुई, पर कदाचित हँसने-रोने वाला हृदय इस भूलभुलैया भरी चित्रशाला में खोया रहा। आँसू के खारे पानी में डुबाए बिना सौन्दर्य के चित्ररंग पक्के नहीं हो सकते, पर प्रकृति के पास सौन्दर्य है, आँसू नहीं।" पंत जी स्वभाव और शरीर दोनों ही दृष्टियों से प्रकृति से प्रेरणा प्राप्त करते रहे जो कि स्वयं सिद्ध है। मानवलोक में प्रकृति से सुन्दर और कौन हो सकता है? सौन्दर्य प्रेमी कवि यदि प्रकृति के सौन्दर्य, स्नेह और प्रेम में यदि डूब गया तो इसमें आश्चर्य नहीं। व्यक्ति का एकांकीपन किसी न किसी रूप में अवश्य टूटता है। उसे साथ चाहिए, चाहे वह कैसा भी हो, यदि साथी कोई मनोरम हो तो व्यक्ति अपने को धन्य मानता है। कवि पंत को भी प्रकृति सुन्दरी मिल ही गयी थी अत: उन्हें उसकी विविधता से प्रेरणा प्राप्त करना स्वाभाविक था।

3. **संघर्षपूर्ण जीवन-** यद्यपि पंत जी हिमालय के पुत्र हैं, पर उन्हें देखकर न उन्नत हिम-शिखरों का स्मरण आता है और न ऊँचे चिर सजग प्रहरी जैसे देवदारू याद आते हैं। न सभीत करने वाले गहरे गर्त की ओर ध्यान जाता है और न उच्छृंखल गर्जन भरे निर्झर स्मृति में उचित होते हैं। वे उस प्रशान्त छोटी झील से समानता रखते हैं जो अपने चारों ओर खड़े शिखरों और देवदारूओं की गगनचुम्बी ऊँचाई को अपने हृदय में प्रतिबिम्बित कर उसे धरती के बराबर कर देती है। पंत जी का व्यक्तित्व इतना शान्त और स्निग्ध था कि विषम परिस्थितियों और कठोर संघर्षों को भी सहन कर ये टूटते नहीं थे बल्कि उन्हें अपने अनुकूल बना लेते थे।

लेखिका ने प्रस्तुत संस्मरण में कुछ ऐसी घटनाओं का उल्लेख तथा संकेत किया है जो निःसंदेह मार्मिक हैं। पंत जी के जीवन में अनेक संघर्ष आए जिनका सामना उन्होंने निरन्तर किया। यद्यपि वे शरीर और स्वभाव से कोमल थे, परन्तु कठिन और विषम परिस्थितियों को सहन करने में सर्वदा सक्षम रहे। लेखिका की धारणा है-"जिस प्रकार आकाश की ऊँचाई से गिरने वाला जल, किसलयों और फूलों पर स्वच्छता के अतिरिक्त और कोई चिन्ह नहीं छोड़ता, उसी प्रकार संघर्षों ने उनके जीवन पर अपनी सक्षता और कठोरता का इतिहास नहीं लिखा।" वे आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न थे परन्तु सम्पन्नता धीरे-धीरे उनके जीवन से जैसे-जैसे पलायन करती गयी, वैसे-वैसे विपन्नता ने अपना स्थान बना लिया और वे विपन्नता की अन्तिम सीढ़ी तक पहुँच गये। उदाहरणार्थ-अल्मोड़े में उनके कई मकान थे, परन्तु आर्थिक अभाव के कारण उनमें से एक भी नहीं रहा और वे छोटी सी काटेज में रहने लगे। सम्पन्नता के पश्चात् व्याप्त विपन्नता ने भी उनके अभिमान को कम नहीं होने दिया और न हँसी पर मैली परत चढ़ सकी।

4. **केशों के प्रति ममत्व-** पंत जी लम्बे-लम्बे बाल रखते थे। ग्रामीणों को इस विषय में कुतूहल रहता था तथा नागरिकों को हँसी आती थी, परन्तु वे चिंता नहीं करते थे, परन्तु एक दिन उन्होंने उस केश राशि को काट फेंका। संभव है कि कवि में हृदय पर कोई गहन आघात हुआ हो और बाद में उस चोट सह्य होने से पुनः उन्होंने केश राशि रख ली हो। प्रारंभ में तो विवाह के समय विषम परिस्थितियों के कारण वे विवाह नहीं कर पाए, परन्तु जब परिस्थितियाँ अनुकूल हुई तो उनकी मानसिक स्थिति इसके प्रतिकूल हो गयी अर्थात् विवाह के लिए मन में स्वीकृति प्रदान नहीं की। उनकी मानसिक अस्थिरता का ही यह परिणाम था। वे स्वयं अपनी काल्पनिक गृहिणी के विषय में कहते हैं-

घने लहरे रेशम बाल
धरा है सिर पर मैंने देवि।
तुम्हारा यह स्वर्गिक उपहार।

4. **आजीवन कुमारत्व-** पंत जीवन भर अविवाहित रहे। कुछ परिस्थितियों ने उनका साथ नहीं दिया तो कुछ शरीर ने। वे सदा विषमताओं का सामना करते रहे। अपने वैवाहिक जीवन की उन्हें कभी चिन्ता नहीं रही। महादेवी वर्मा कहती हैं कि परिग्रह की दृष्टि से वे चिरकुमार सभा के आजीवन सदस्य हो सकते हैं। आर्थिक विपन्नता और न समाप्त होने वाला रोग-दोनों मानो उनके विवाह में बाधा डालते रहे। परन्तु चिरकुमारत्व को वे कभी अभिशाप नहीं मानते थे। उनका मन तो साहित्य के सृजन में लगा हुआ था-'ऐसे चिर सृजनशील कलाकार चिरकुमार देवर्षि नारद की कोटि के होते हैं, जिनकी गृहस्थी बसने के क्षण में स्वयं भगवान तक बाधक बन बैठे हैं।

5. **आर्थिक विपन्न व रुग्ण-** आर्थिक दृष्टि से वे विपन्न होने से अल्मोड़े में अनेक मकानों के मालिक होकर भी बाद में उन्हें किराए के मकान में रहना पड़ा। उस समय "उनकी स्थिति बालक से समानता रखती थी जो अपने घरौंदे के बनाने में जितना आनन्द पाता है मिटाना में उससे कम नहीं।" टीले पर बनी अपनी कुटी का नाम उन्होंने 'नक्षत्र' रखा था मानो वे किसी नवीन सृजन की दिशा का अनुसंधान करने में लगे हुए हों। वे अपने कार्यों में इतने संलग्न रहते थे कि उनका शरीर थक जाता था, परन्तु मन नहीं। वे बहुत समय तक अस्वस्थ रहे। एक बार तो क्षयरोग के संदेह के कारण बहुत दिनों तक स्व. डॉ. नीलाम्बर जोशी के पास भरतपुर में रहे। अनेकों बार टाइफाइड से पीड़ित होकर जीवन और मृत्यु के मध्य में पड़े रहे। परन्तु उनके मन और शरीर दोनों ने अपनी-अपनी सीमा में जिस इस्पाती तत्व का परिचय दिया है, वह पराजय नहीं मानता। आर्थिक अभावों व शारीरिक रोगों को तो वे सहन करते रहे, परन्तु उनके दुखों को कम करने वाली सहचरी भी उन्हें प्राप्त न हो सकी।

इस प्रकार लेखिका ने उनके प्रति संवेदना प्रस्तुत करते हुए भी उनके जीवन को दुखी व उदास भरा स्वर नहीं दिया है। इस संस्मरण के अंत में वे यही कहती हैं-'सुमित्रानंदन जी की हँसी पर श्रम-बिन्दुओं का बादल नहीं घिरा हुआ है, वरन् श्रम-बिन्दुओं के बादल के दोनों छोरों को जोड़ता हुआ उनकी हँसी का इन्द्रधनुष उदय हुआ है।'

6. **सुकुमार आकृति-** कोमलांगी प्रकृति के सहचर पंत की आकृति व वेशभूषा भी स्वभावत: सुकुमार थी। वे दुबले-पतले, गौरवर्ण के इकहरे शरीर के थे, दूर-से कृशांगना कामनी के समान लगते थे। एक बार महादेवी वर्मा एक सम्मेलन में भाग लेने गई थी; तभी उन्होंने प्रथम बार पंत जी के दर्शन किए थे। लेखिका अनभिज्ञ थी कि पंत जी कौनसे हैं उन्हें आश्चर्य हुआ कि यह नारी के वेश को धारण किए कौन हैं? तभी कुछ हलचल सी उत्पन्न करती हुई एक कोमलकान्त कृशांगी मूर्ति आविर्भूत हुई। आकण्ठ अवगुण्ठित करती हुई हल्की पीताभ-सी चादर, कंधों पर लहराते हुए कुछ सुनहले-से केश, तीखे नक्श और गौरवर्ण के समीप पहुँचा हुआ गेहुँआ रंग, सरल दृष्टि की सीमा बनाने के लिए लिखी हुई-सी भवे, खिंचे हुई से ओंठ, कोमल पतली उंगलियों वाले सुकुमार हाथ। लेखिका और उनकी संगनियों ने उन्हें देखकर ऐसा अनुभव किया जैसे यह मूर्ति किसी ललना की हो। अत: वे कहती हैं कि हम सब यह देखकर विस्मित हो गए कि वह मूर्ति हमारी ओर न आकर उन्हीं के बीच में प्रतिष्ठित हो गई जो उससे आकार-प्रकार में उतने ही भिन्न जान पड़ते थे जितनी क्षीण तरल जलरेखा से विशाल कठोर पाषाण-खण्ड। इससे कम से कम उनके बाह्य व्यक्तित्व का पूर्ण ज्ञान हो जाना स्वाभाविक है।

पंत जी की सुकुमारता अपने जीवन के प्रारम्भ से ही रही है। घर में सबसे छोटे भाई थे तथा जन्म के पश्चात् ही मातृविहीन हो गये थे अत: उन्हें सभी का प्यार मिला। स्नेह के कारण वे बचपन से ही सहृदय रहे। प्रकृति के साथ सम्बन्ध और विविध रोगों का आना, उनके लिए भले ही अभिशप्त रहे हों, परन्तु शारीरिक सामर्थ्य में बाधक अवश्य रहे। अन्दर और बाहर दोनों ओर से सुकुमार रहे। इसी कारण लेखिका लिखती है कि सुमित्रानन्दन पंत जी को स्वभाव और शरीर में असाधारण सुकुमारता मिली।

7. **साहित्यिक वैशिष्ट्य-** पंत जी एक साहित्यकार थे, विशेष रूप से प्रकृति के सुकुमार कवि थे। उनकी प्रारम्भिक रचनाएं 'नंदिनी' नाम से प्रकाशित हुई थी, परन्तु बाद में उन्होंने अपना नाम परिवर्तित कर 'सुमित्रानंदन' पंत नाम से लेखन कार्य किया था। 'ग्राम्या' 'युगवाणी' आदि रचनाओं में पंत जी की विचारधाराएं अंकित की गई है। वे उस युग के कवि थे जब छोटे-मोटे सामान्य कवियों का कोई महत्त्व नहीं था, परन्तु पंत जी ने कवि के रूप में अपनी असाधारण पहचान बनाई थी। उन्होंने प्रकृति के पालने में रहकर प्रकृति के साथ ऐसा नाता जोड़ा था जो उनके जीवन का अभिन्न अंग बन कर रह गया और उनकी अनुभूति विशेष रूप से प्रकृति-चित्रण के रूप में अभिव्यक्त हुई। पुन: जब लेखिका ने उन्हें देखा तो वे कहती हैं-'आज फिर वे अपने लम्बे-गंगा-यमुनी केशों को लहराते हुए चिर-परिचित कवि-रूप में उपस्थित हैं। उसका अर्थ है कि उनकी सृजन सम्भावनाओं का कोई त्यौहार निकट है।'

पंत जी का साहित्य जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है। उनका चिन्तन, जीवन और साहित्य का क्षेत्र असाधारण था। यही कारण है कि उनकी असाधारण बुद्धि ने जीवन और साहित्य के अनेक क्षेत्रों में अपनी सृजनशीलता का परिचय दिया है। वेशभूषा, रहन-सहन से लेकर सूक्ष्म भाव और चिन्तन तक सब कुछ उनके स्पर्श मात्र से असाधारण पाता रहा है। वे विगत साहित्य-परम्परा के अनुसरण करने वाले नहीं थे, बल्कि नूतन साहित्य के निर्माता और ज्ञाता थे। उनका जीवन भले ही विषम अवस्था से व्याप्त हो, परन्तु साहित्य में नूतनता और ताजगी थी इसी कारण महादेवी वर्मा का

कथन है-'बदलती हुई सम-विषम परिस्थितियों में उन्हें नूतन सृजन की संभावनाएं इस प्रकार संचालित करती हैं कि वे संघर्ष को भूल जाते हैं।'

8. **गाँधी दर्शन का प्रभाव-** जब पंत जी छात्रावस्था में थे तब महात्मा गाँधी का स्वतन्त्रता आलोचन मे पर्याप्त बोलबाला था। प्राय: समस्त भारत उनके महान् कार्यों से प्रभावित था। पंत जी अपने छात्र जीवन में ही एक बार उनकी सभा में गये थे और उनसे पर्याप्त प्रभावित हुए थे। महात्मा गाँधी का यह प्रभाव उन पर बहुत समय तक रहा। इसी कारण उनके साहित्य पर गाँधी दर्शन का प्रभाव रहा। इसी आधार पर उन्होंने किसी प्रकार की नौकरी नहीं की थी और लेखन कार्य में ही अपना जीवन व्यतीत किया। उनकी कुछ रचनाएं गाँधी दशन की समुचित व्याख्या करती हुई जान पड़ती है।

इस प्रकार प्रस्तुत संस्मरण में महादेवी वर्मा ने सुमित्रानन्दन पंत के जीवन और व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला है। पंत जी को कविता लिखने की प्रेरणा प्रकृति से मिली थी प्रकृति के कोमल और सुन्दर प्रांगण में जन्म लेकर वे इसी मनोरम प्रदेश से जुड़े रहे। उनका जन्म स्थान कौसानी प्रदेश कूर्मांचल का मानो हृदय है। जन्म के साथ ही मातृविहीन होने के कारण उनको जितना ममत्व व प्रेम, प्रकृति से मिला, वह ही उनके काव्य का प्राण बन गया। जीवन में भले ही अनेक संघर्ष सहन करने पड़े हों, परन्तु प्रकृति के अंक में आकर उसी प्रकार वे सहनीय हो जाते थे जैसे माता के आँचल में बच्चा अपने दुखों को भूल जाता है। बचपन में प्रकृति ने उन्हें माता का दुलार दिया तो युवावस्था में सहचरी बन कर साथ दिया। आजीवन अविवाहित रहकर भी उनका मन कभी अशांत न रहा, परन्तु एक के पश्चात् एक रोग उन्हें शारीरिक सुकुमारता ही प्रदान करते रहे। वे स्वभाव और शरीर से असाधारण कोमल थे। स्वयं उन्होंने भले ही अनेक कष्टों को झेला हो, परन्तु कभी किसी को आघात नहीं पहुँचाया। उनके विषय में महादेवी वर्मा का कथन है-

'व्यवहार में वे अत्यन्त शिष्ट, मधुरभाषी और विनोदी हैं। उनकी कोई बात किसी को किसी तरह चोट न पहुँचा दे, इसका वे ध्यान रखते हैं।'

'पथ के साथी' के आधार पर सियाराम शरण गुप्त के व्यक्तित्व का विश्लेषण

सफल संस्मरण- सियाराम शरण गुप्त 'पथ के साथी' कृति के अन्तिम साहित्यकार हैं जिनका लेखिका के साथ भ्रातृत्व का सम्बन्ध रहा है। आयु में बड़े होने पर भी महादेवी वर्मा ने उन्हें छोटे भाई के रूप में अंगीकार किया है। उनकी जन्मतिथि भाद्र पूर्णिमा है "जब आकाश, अपनी बादलों की गीली जटाएं निचोड़ता रहता है और धरती वर्षा-मंगल के पर्व-स्नान में भीगती रहती है। जान पड़ता है इसी भीगा-भीगी सृजन के उतावले कलाकार की दृष्टि इस छोटी मूर्ति के रूखेपन पर नहीं पड़ सकी।" परिवार में वे न सबसे छोटे थे और न सबसे बड़े। बचपन से ही अस्वस्थ रहते थे। मानसिक रूप से बालकपन में नटखट होने पर भी शारीरिक रूप में नटखटपन सार्थक सिद्ध नहीं होता था। घर में कई मामियाँ थीं, पर उनमें से किसी को उनके विनोद का स्मरण नहीं है। फिर भी वे कुशाग्रबुद्धि और जिज्ञासु कम नहीं थे। लेखिका ने गुप्त जी के जीवन की पर्याप्त छवि इस संस्मरण में अंकित की है तथा उसके बाहरी आन्तरिक पक्ष को चित्रित किया है। उनका जीवन अनेक विरोधाभासों से भरा था। उनके बाहरी रूप और आन्तरिक कविरूप में समानता न थी। महादेवी जी कहती हैं-"इस वेशभूषा के साथ जब वे थैला और छड़ी लेकर आविर्भूत होते हैं तब उनके साहित्य के विद्यार्थियों के सामने समस्या उठ खड़ी होती है कि वे इन्हें लेखक मानें या अपने मानस में इनके साहित्य से बनी कल्पना मूर्ति को। सत्य तो यह है कि यदि कोई इन्हें इनके साहित्य का स्रष्टा न स्वीकार करे, तो इनके पास अपना दावा प्रमाणित करने का कोई प्रमाण नहीं।" कुछ भी हो महादेवी वर्मा ने इन्हें साहित्यकार के रूप में प्रस्तुत किया है इसी कारण ये पथ के साथी हैं।

1. **साहित्यकार का व्यक्तित्व-** सियाराम शरण गुप्त अपने युग के एक साहित्यकार थे। यद्यपि उन्होंने बहुत शिक्षा प्राप्त नहीं की थी, फिर भी उनका साहित्य ज्ञान अत्यन्त उच्च कोटि का था लेखिका के शब्दों में-"शिक्षा के चक्रव्यूह में मिडिल के अतिरिक्त किसी अन्य द्वार का प्रवेश-पत्र उन्हें प्राप्त नहीं हो सका। पर हाईस्कूल, इन्टर कालेज, विश्वविद्यालय, मास्टर, लेक्चरर, प्रोफेसर आदि-आदि की, सात समुद्रों से भी गहरी सहस्रों खाइयों के पार जो सरस्वती बैठी थी, उसके चरण तक उन्होंने अपनी विनय पत्रिका बुद्धि के तीन में बाँधकर न जाने कैसे पहुँचा दी और आज जब हम उनके ज्ञान-भंडार को देखते हैं तो पछतावा होने लगता है कि हम इन खाइयों में वर्षों क्यों डूबते-उतरते रहे।"

उनके व्यक्तित्व की एक विशेषता थी कि उन्होंने जिसे ग्रहण करने योग्य माना उसे अपने सम्पूर्ण अस्तित्व-निवेदन के साथ अंगीकार किया और जिसे अपने अस्तित्व में मिलाना उचित नहीं समझा उसके विशाल अस्तित्व समर्पण को भी अस्वीकार किया।' इतना ही नहीं वे अनोखे संयमी थे। उनका विवाह हुआ, सन्तानें हुई, परन्तु शीघ्र ही पत्नी विदा हो गयी और मानो सन्तानों ने भी परलोक में माँ का अनुसरण किया। उन्हें पुनर्विवाह के लिए बार-बार प्रेरित किया गया, क्योंकि उस समय इस प्रकार के दूसरे-तीसरे विवाह होते रहते थे। यह भी स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि श्वास-रोग के कारण पुनर्विवाह नहीं किया। लेखिका की दृष्टि में उन्होंने अपनी बालसंगिनी पत्नी को अपने हृदय का समस्त स्नेह ऐसी निष्ठा के साथ समर्पित किया था जैसा कि 'विषाद' में कहा है-

अनाद्यन्त वह प्रेम कहाँ से तुझे हुआ था प्राप्त।
तेरा पता नहीं, पर वह है चिरकालिक असमाप्त॥

-विषाद

उनके व्यक्तित्व में यह विरोधाभास था कि मधुरता और लावण्य दोनों विरोधी होकर भी इस प्रकार जीवन के तल में बैठकर घुलमिल जाते थे कि वे जीवन-रस बन जाते थे। न तो वे रागी थे और न वैरागी। अस्वस्थ होकर भी उनमें न खीझ थी, बल्कि जीवन के कोलाहल में बैठकर वे रोग को चुनौती देते रहे।

2. **मार्मिक घटनाएं-** साहित्यकार गुप्त जी का जीवन अनेक संघर्षों से भरा था। बचपन में एक बार वे दीवार में बनी अलमारी के भीतर तपस्या करने के लिए समाधि की मुद्रा में बैठ गये और उनके साथी अलमारी के दरवाजे बंद करके चल दिये थे। भाग्य से वे शीघ्र ही निकाल लिए गये, अन्यथा तपस्या बहुत महँगी पड़ जाती। इस प्रकार की तपस्या जीवन में निःसंदेह अत्यन्त दुखद और विनाशकारी सिद्ध होती है। लेखिका ने इस लघु संस्मरण में अनेक घटनाओं का उल्लेख न करके कुछ घटनाओं की ओर ही संकेत किया है। उनकी अस्वस्थता, निर्धनता व संघर्षमय जीवन निःसंदेह विचित्र है। शरीर से अक्षम होने पर भी उनके मन में उस साध्य की साधना करने की ज्वाला है जिनकी लपट उनकी बिल्लोरी आँखों का आलोक है जिससे प्रकाश तो सब पाते हैं लेकिन जलना उनके हिस्से ही आया है। वे देते तो सबको हैं लेकिन माँगते किसी से भी नहीं।

महादेवी वर्मा की गुप्त जी के प्रति आत्मीयता थी। एक बार वे उनके घर गयी और उनकी बहिन बनने की इच्छा व्यक्त की। यद्यपि सियाराम शरण उम्र में लेखिका से बड़े थे, परन्तु कद, शारीरिक गठन व दुर्बलता के कारण छोटे लगते थे अतः महादेवी वर्मा ने स्पष्ट कह दिया कि मैं उन्हें छोटा भाई ही मानूँगी। अतः लेखिका कहती हैं-'ऐसी अन्यायपूर्ण माँग का भी उनसे विरोध न बन पड़ा और मैंने जीजी बनकर उन्हें अनुजता के सोपान पर अधिष्ठित कर दिया, इससे वे रंचमात्र भी इधर-उधर नहीं खिसके।' गुप्त जी के जीवन की इस प्रकार की छोटी-छोटी घटनाएं उनके जीवन को, विचारों की उदारता और उच्चता को स्वयं स्पष्ट कर देती हैं।

3. **संवेदनशीलता-** लेखिका ने अपने पथ के साथियों के प्रति संवेदनशीलता प्रस्तुत की है। वे सदा ही कवियों के जीवन के उन क्षणों के प्रति संवेदनशील रही हैं जबकि वे संघर्षों से जूझते रहे और विषम वातावरण में भी अपने मानसिक-स्तर को बनाए रखा। सियाराम गुप्त ने अपनी यौवनावस्था में विवाह भी किया, परन्तु श्वास रोग ने उनका पीछा नहीं छोड़ा। थोड़े-थोड़े अन्तराल से उनकी कई सन्तानें कालकवलित हो गयी थीं, तथा पत्नी भी आपको एकाकी छोड़कर स्वर्गवासी हो चली थी। परन्तु आप इस गहन दुख को तथा वियोगजन्य व्यथा को संयम के साथ सहन करते रहे। उन्होंने कभी भी अपनी आन्तरिक व्यथा को अपने बड़ों के समक्ष व्यक्त नहीं किया और न कभी मलिन मन होकर अपने को सन्तप्त वियुक्त अवस्था में प्रस्तुत किया। लेखिका की अपार संवेदना उनके प्रति दिखाई पड़ती है। उदाहरण के लिए राम मर्यादा पुरुषोत्तम होकर भी सीता-हरण के पश्चात् सीता के वियोग में अपने दुखों को निरन्तर व्यक्त करते रहे। कभी वे लक्ष्मण के समक्ष प्रलाप करते तो कभी वृक्ष, पशु, पक्षी, लता आदि के सामने अपनी मार्मिक व्यथा सुनाते रहते थे, परन्तु उनके छोटे भाई लक्ष्मण ने कभी भी अपनी पत्नी उर्मिला के वियोग में आँसू नहीं बहाए। कभी भी अपने भाई या अन्य किसी के सामने अपनी वियोग-व्यथा को प्रस्तुत नहीं किया। वस्तुत: सियाराम शरण गुप्त भी इसी प्रकार अपनी मार्मिक पीड़ा का घूँट स्वयं पीते रहे, उन्होंने वह व्यथा किसी के समक्ष व्यक्त नहीं की।

4. **चित्रात्मकता-** लेखिका ने गुप्त जी के व्यक्तित्व और बाहरी आकार-प्रकार, रहन-सहन व पहनावा आदि का चित्रण करते हुए कभी-कभी चित्रात्मक विवेचना भी की है। जैसे-'वे शुद्ध खादीधारी है। वस्त्रों का वजन कहीं क्षीण शरीर से अधिक न हो जाये, इसी भय से मानो उन्होंने कम वस्त्रों की व्यवस्था की है। औरों की पाँच गज लम्बी और कम से कम बयालीस इंच चौड़ी, धोती इनके लिए तीन गजी और छत्तीस इंची हो जाती है। अत: इनके चरण स्पर्श का अधिकार उसके लिए दुर्लभ ही रहता है। शहराती कुर्ते से, ग्रामीण मिर्जई की अस्थायी संधि केवल बाहर जाते समय होती है। और चप्पलें तो असली चमरौधे की सहोदराएं-सी जान पड़ती है।'

5. **साहित्यिक वैशिष्ट्य-** सियाराम शरण हिन्दी भाषा के तो ज्ञाता थे ही, साथ ही, अंग्रेजी भाषा का भी उन्हें पर्याप्त ज्ञान था। वे अपने परिवार में ही नहीं, बल्कि आस-पड़ोस में भी अंग्रेजी पढ़ाते थे अत: उन्हें 'मास्टर साहब' कहकर पुकारते थे। वे कुशाग्र बुद्धि के थे और जिज्ञासु भी। एक ओर महात्मा गाँधी से अत्यन्त प्रभावित थे तो दूसरी ओर रवीन्द्र कवीन्द्र के साहित्य का उन पर प्रभाव था। लेखिका के शब्दों में-'दो ध्रुवों पर स्थित महान् साधक और महान् कवि दोनों ने अपने-अपने वरदान इस प्रकार भेजे हैं कि शिव और सुन्दर इनके जीवन से अपना-अपना दायभाग अलग-अलग माँगते रहते हैं। दोनों की संधि कराने में ही उनकी शक्ति का अधिकांश व्यय होता रहता है। वे साहित्यकार के रूप में भी स्पष्टवादी थे उन्होंने अपने बड़े भाई मैथिलीशरण गुप्त के समान भारतीय संस्कृति के आधार पर लेखन कार्य किया था, फिर भी उनके विचार नूतन थे विचारधारा स्वच्छ व उज्ज्वल थी। यद्यपि उन्होंने साहित्य के विरोध क्षेत्रों में कार्य किया था, परन्तु वे मूलत: कवि थे, बाद में उपन्यासकार व निबन्धकार थे। अत: कवि के सब वरदान उनके हैं। संसार की सभी कथाओं के प्रति उनकी बच्चों जैसी कुतूहल-भरी जिज्ञासा रहती है, चाहे वह कथा टिटिहरी की हो, चाहे ब्रह्म-ज्ञान की।

वे साहित्य के प्रति पूर्णत: समर्पित थे। जीवन में भले शारीरिक रूप से रुग्ण व क्षीण रहे हों परन्तु 'भाई सियाराम शरण गुप्त' में छिपा कवि अपराजेय स्रष्टा है। उन्होंने अपनी विविध बाधाओं से संघर्ष करके वैसी ही विजय प्राप्त की है जैसी एक मूर्तिकार एक अनपढ़ और कठिन शिलापर, एक गायक स्वरों पर और एक चितेरा विषम कठोर विषम रेखाओं पर प्राप्त करता है।'

उनके विचार, साहित्य और साधना में कहीं भी अनुकरण नहीं रहा है। वे नवीन विचारधारा के कवि थे। कभी-कभी तो अति परिचित और अति साधारण वस्तुओं, व्यक्तियों तथा घटनाओं को वे ऐसे दृष्टि-बिन्दु से देखकर उपस्थित करते हैं कि सुनने वाला विस्मित हो जाता है। उनके साहित्य में जीवन की ऊँचाइयाँ हैं। मानो जीवन में लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उन्होंने अपनी साँसों का प्रयोग साहित्य के लिए किया हो। सच्ची साधना ही उनके चरम लक्ष्य की कहानी है। अत: महादेवी वर्मा उनके विषय में कहती है-'नीति उनके निकट विवेक का दूसरा नाम है। उनके निष्कर्ष निर्विवाद रहते हैं।'

6. **भाषा-शैली-** प्रस्तुत संस्मरण की भाषा-शैली भावों के अनुरूप परिवर्तित होती हुई कवयित्री की नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा की जीवन्त परिचायिका है। कहीं पर चित्रात्मकता, कहीं भावुकता, कहीं संवेदना है, तो कहीं पथ के साथी के साहित्य का समुचित मूल्यांकन किया गया है। प्रस्तुत रेखाचित्र एक छोटे से कलेवर में गहन भावों की अभिव्यक्ति करने में सक्षम है उनमें समास शैली है। फिर भी न बहुत कठिन है और न बहुत सरल। उनकी वाक्पटुता और वाक्विदग्धता के साथ आलंकारिता का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत रेखाचित्र में दृष्टिगोचर होता है। संस्मरणकर्त्री महादेवी वर्मा के विचारों और भावों की समन्वयात्मक वर्णन प्रस्तुत रेखाचित्र में है।

जहाँ तक भाषा का प्रश्न है प्रमुख रूप से संस्कृत-निष्ठ भाषा का प्रयोग किया गया है। भाषा में प्रवाह है तथा प्रसंग के अनुरूप ओजगुण व प्रसाद गुण का प्रयोग किया गया है। उनकी भाषा में गागर में सागर भरने की क्षमता है। पाठकों को सदा जिज्ञासा बनी रहती है कि आगे क्या होगा? भाषा का महत्त्वपूर्ण गुण है भावों की सहज रूप में अभिव्यक्ति जो महादेवी वर्मा की स्वाभाविक विशेषता है। कभी तो ऐसी कौतूहीता उत्पन्न होती है कि पाठक जैसे सभी कुछ जानने को इच्छुक हों, परन्तु रेखाचित्र महाकाव्यात्मक उपन्यास नहीं है, बल्कि लघु आकार वाली रचना है। यथा स्थान रोचकता, मधुर व्यंग्यात्मकता है। कभी भाषा सरल व सरस गति से प्रवाहित होती है तो कभी गंभीर व दीर्घ वाक्यों में। उनकी शैली भावों के अनुरूप है क्योंकि उनका लक्ष्य अपनी भावना को पाठकों तक पहुँचाना है। उदाहरण के लिए-'वस्त्रों का वजन कहीं क्षीण शरीर से अधिक न हो जाये, इसी भय से मानो उन्होंने कम वस्त्रों की व्यवस्था की है।' इस प्रकार के वाक्य सहज रूप में एक ओर कवयित्री के भावों को अभिव्यक्ति कर देते हैं तो दूसरी ओर पथ के साथी का चित्र रेखांकित कर देते हैं।

उनकी शैली एकरूपा नहीं, कहीं वर्णनात्मक, कहीं विवरणात्मक, कहीं भावनात्मक, तो कहीं विश्लेषणात्मक है। कहीं पर नीति और सूक्ति जैसे वाक्य प्रयुक्त हैं जैसे-

(क) *नीति उनके निकट विवेक का दूसरा नाम है।*

(ख) *कवि के सब वरदान उनके हैं।*

(ग) *अनुभूति स्वयं मधुर है।*

(घ) *कविता सबसे बड़ा परिग्रह है।*

उनकी भाषा में कहीं अलंकार है तो कहीं अलंकारों की विरलता। ऐसा प्रतीत होता है कि वे शैलियों का प्रयोग नहीं करती थी, बल्कि शैली अनेक रूप धारण करके उनके भावों को धारण करने में तत्पर थी।

अत: कहा जा सकता है कि प्रस्तुत संस्मरणात्मक रेखाचित्र 'सियाराम शरण गुप्त' रेखाचित्र कला की दृष्टि से सर्वथा सफल है। लेखिका ने जिस भावुकता और संवेदना के साथ सियारामशरण को पथ का साथी मानकर प्रस्तुत किया है उसमें वे सर्वथा सफल हुई है। प्रवाह पूर्ण रोचक शैली,

चित्रात्मकता, संवेदनशीलता तथा भावुकता आदि भाव व कला का मणिकांचन योग इस रेखाचित्र में विद्यमान है। यह एक ओर पाठकों पर अभीष्ट प्रभाव छोड़ता है तो दूसरी ओर पथ के साथ सियाराम शरण गुप्त की महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रदान करता है। अत: कहा जा सकता है कि रेखाचित्र-कला की दृष्टि से यह सर्वथा सफल और महत्त्वपूर्ण रचना है।

हिन्दी कहानी के विभिन्न आँदोलनों का क्रमबद्ध

यद्यपि गद्य की अधिकांश विधायें भारतेंदु युग की उपज कही जाती हैं पर कहानी की उत्पत्ति इस युग में नहीं हुई। यो तो राज शिवप्रसाद सितारे हिंद की 'राजाभोज का सपना' राधाचरण गोस्वामी की 'यमलोक की यात्रा' भारतेंदु का एक 'अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न' और 'मूषा पैगम्बर' आदि रचनायें इसी युग में अवश्य लिखी गयी, पर जिस अर्थ में बाद की कहानी को लिया गया, उसमें इन्हें सम्मिलित नहीं किया जा सकता। कथा अख्यायिका वृतान्त स्वप्न, किस्सा, उपाख्यान आदि विभिन्न नामों से कहानियाँ लिखी जाती है। इन कहानी लेखकों में सामाजिक चेतना का अभाव था। कहने का तात्पर्य यह है कि आधुनिक कहानी का जन्म इस युग तक नहीं हो सका।

हिन्दी में आधुनिक कहानी का जन्म तथा प्रथम हिंदी कहानी – आधुनिक हिंदी कहानी का प्रारम्भ द्विवेदी काल में संवत् 1950 के बाद अंग्रेजी और बंगला के सम्पर्क, नयी शक्तियों के उदय, सुधारवादी आन्दोलन, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक परिस्थिति, नई शिक्षा पद्धति, गद्य के परिष्कार तथा नवीन चेतना के फलस्वरूप हुआ। सरस्वती (संवत् 1957) सुदर्शन(संवत् 1957) और इंदु(संवत् 1966) नामक पत्रिकायें आधुनिक कहानी की जन्मदात्री प्रमुख पत्रिकायें मानी जा सकती है। इसमें भी सरस्वती का स्थान सर्वोपरि है। उसके प्रकाशन के प्रथम वर्ष में ही इसमें 'इंदुमती''चन्द्रलोक की यात्रा'और 'आपत्तियों का पर्वत' नामक तीन कहानियाँ छपी थी। हिंदी के अधिकांश विद्वान 'इंदुमति'(किशोरी लाल गोस्वामी) को हिन्दी की प्रथम कहानी मानते हैं। किंतु राजेन्द्र यादव तथा डॉ. श्रीकृष्ण लाल के अनुसार किशोरीलाल गोस्वामी की 'इंदुमति'पर टेम्पेस्ट (शेक्सपीयर) की छाप है। लेकिन इस सम्बन्ध में डॉ. वासुदेव सिंह का मत विशेष उल्लेखनीय है। उसका कहना है कि इंदुमति न तो शेक्सपीयर के टेम्पेस्ट का रूपान्तर है और न किसी बंगला कहानी की छाया। उसका कथानक ऐतिहासिक घटना पर आधारित है। अत: इंदुमति को ही हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी मानना चाहिए।

द्विवेदी युग- हिन्दी कहानियों के उद्‌भव और विकास की दृष्टि से द्विवेदी युग का विशेष महत्व है। इस समय से न केवल आधुनिक कहानी का प्रारम्भ होता है, बल्कि शिल्प और वस्तु दोनों दृष्टियों से उसे प्रौढ़ता भी प्राप्त होती है। विकास की दृष्टि से द्विवेदी युग की कहानियों को भी दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है- (क) प्रयोगकाल (संवत् 1950-1968), (ख) प्रौढकाल (संवत् 1969-1975)।

(क) **प्रयोग काल (संवत् 1950-1968)** प्रयोग काल में अनुदित और मौलिक दोनों प्रकार की कहानियाँ लिखी गयी। अनुवाद प्राय: अंग्रेजी, संस्कृत और बंगला कहानियों के हुए। अंग्रेजी अनुवाद करने वाले लेखकों में राधाकृष्णदास और पार्वतीनन्दन मुख्य हैं। इसी अवधि में आचार्य पण्डित रामचन्द्र शुक्ल की कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई। बंग महिला की प्रसिद्ध कहानी 'दुलाई वाली' इसी अवधि की देन है। जिसे कुछ लोग हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी मानते हैं। इसी काल में गोपालराम गहमरी तथा वृन्दावनलाल वर्मा की कहानियाँ 'सरस्वती' में प्रकाशित हुयीं।

(ख) **प्रौढ काल (संवत् 1969-1975)** इस अवधि के प्रारम्भिक चरण में जयशंकर प्रसाद, जी.पी.श्रीवास्तव तथा चन्द्रधर शर्मा गुलेरी कहानी क्षेत्र में आते हैं। इनके कुछ आगे पीछे विशम्बरनाथ शर्मा कौशिक, चतुरसेन शास्त्री, राज राधिकारमण प्रसाद सिंह विशम्बरनाथ, गिज्जा, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, प्रेमचंद आदि हिन्दी कहानी क्षेत्र में नूतन कला, नव्य शैली और अभिनव उद्धेश्य को लेकर अवतीर्ण होते हैं। यहाँ आकर कहानी जीवन की व्याख्या का उद्धेश्य लेकर समाज और जीवन के अधिक निकट आ जाती है तथा कहानी कला को प्रौढ़ता प्राप्त होती है। संवत् 1972 के आस-पास मुंशी प्रेमचन्दजी हिन्दी कहानी साहित्य में आये। उन्होंने हिन्दी कहानी को विस्तृत आयाम दिया। उन्होंने कुल मिलाकर 266 कहानियाँ लिखीं।

प्रेमचन्द के बाद कहानी का स्वरूप- सन् 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के बाद मार्क्सवादी प्रभाव से कहानी एक निश्चित यथार्थवादी धारा की ओर मुड़ती है। साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित होकर यशपाल, रांगेयराघव, राहुल सांस्कृत्यायन, मन्नालाल गुप्त, अमृतराय आदि विचार प्रधान कहानियाँ लिखते है। इसके अतिरिक्त मनोविश्लेषण अथवा फ्रायड का सिद्धांत भी कहानी को प्रभावित करता है। जिसके अनुसार चेतन जगत की अपेक्षा मनुष्य के अचेतन की व्याख्या पर अधिक जोर दिया जाता है और समाज की अपेक्षा व्यक्ति के विश्लेषण पर अधिक ध्यान रहता है। अज्ञेय, इलाचन्द जोशी,जैनेन्द्र आदि की कहानियों में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से उभरकर आई है। इस अवधि में कुछ हास्य रस की भी कहानियाँ लिखी गयीं। ऐसे कहानीकारों में बेढब बनारसी, हरिशंकर शर्मा, बरसानेलाल चतुर्वेदी आदि के नाम गिनाए जा सकते है। शिकारी जीवन पर कहानियाँ लिखने वालों में श्रीराम शर्मा उल्लेखनीय हैं।

स्वातन्त्र्योत्तर कहानी की नई दिशा-नयी कहानी – काल की दृष्टि से सन् 51 से प्रारम्भ होने वाली कहानी को ही नवीन जीवनदृष्टि के आधार पर नयी कहानी कहा जाता है। कहानी के इस नये मोड़ को नयी कहानी, स्वातंत्र्योत्तर कहानी, आज की कहानी, सचेतन कहानी, समकालीन कहानी, अकहानी, सहज कहानी, जैसे अनेक नामों से पुकारा गया है। कथ्य और शिल्प सभी दृष्टियों से विचार करने पर स्वतंत्रता के बाद की नयी कहानी पुरानी कहानियों से पूरी तरह भिन्न और स्वतंत्र है। नयी कहानी समकालीन सामाजिक जीवन की बहुमुखी विसंगतियों की अभिव्यक्ति की ओर उन्मुख रही है। निम्नवित्त मध्यवर्ग इन कहानियों का केन्द्र बिंदु है। इनमें समग्रत: मानवीय पीड़ा की अभिव्यक्ति हुई है। इस पीड़ा के कई कारण व रूप हैं- भारत विभाजन, अकाल, युद्ध, राजनीतिक दोगलापन, अफसरशाही, पूंजीवादी शोषक व्यवस्था, सामाजिक अभाव, महामारी यांत्रिकता, अकेलेपन समास। सामाजिक परिवर्तन के मूल में है अर्थ और भावना तथा अर्थ के तनाव में जो मानसिक द्वंद्व उभरता है उसका मनोवैज्ञानिक अंकन इन टूटते सम्बन्धों के चितेरा कहानीकारों ने बड़ी खूबी से किया है। परिवार के पवित्र रिश्ते आज अर्थ और स्तर भार से चरमरा गये है। नया कहानीकार चरमराहट को अत्यन्त संवेदशील ढंग से कहानियों में ध्वनित करता है। इन कहानीकारों में भीष्म साहनी, उषा प्रियम्बदा, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, ज्ञान रंजन, शशि प्रभा शास्त्री आदि मुख्य हैं।

कहने का संकेत यह है कि आज की हिंदी कहानी भारत की ही अन्य भाषाओं की कहानियों से जुड़कर आगे नहीं बढ़ रही है अपितु उसने यूरोप अमेरिका आदि की अद्यतन कहानी की प्रवृत्तियों को आत्मसात कर लिया है। अनेकानेक साप्ताहिक तथा मासिक पत्रिकायें इसकी प्रमाण है। अतएव हम कह सकते हैं कि हमारी हिंदी कहानी साहित्य विकास की उस सीमा तक पहुँच गयी है जहाँ से वह किसी भी देश की श्रेष्ठतम कहानियों से प्रतिद्वन्द्विता कर सकती है।

लघु कथा- वैज्ञानिक तंत्र की बढ़ती व्यस्तताओं के कारण आज का पाठक छोटी-छोटी रचनाओं में अधिक रूचि ले रहा है। इसी के फलस्वरूप हिंदी में अनेक विधाएं विकसित हुई जिनमें

'लघु कथा' एक महत्वपूर्ण विधा है। संक्षिप्तता लघु कथा की पहली शर्त है। महत्वपूर्ण विचारों को एक प्रतीक के रूप में प्रस्तुत कर देना इसका मुख्य उद्धेश्य है। 'रावी' के अनुसार 'लघु कथा' लम्बी कहानी की कथा वस्तु का प्लाट मात्र है और लम्बी कहानी लघु कथा का सपरिधान रूप ।' इसमें प्रतीकों और रूपकों के सहारे भाव व्यक्त किये जाते हैं। प्रतीक किसी घटना विशेष का भी हो सकता है, पौराणिक संदर्भ का भी, पशु पक्षी का भी और विशेष चरित्र का भी। इसमें कथातत्व प्रमुख रहता है।

लघु कथा की निरन्तर बढ़ती लोकप्रियता के पीछे मूलत: तीन कारण हैं- (1) आदमी बेहद व्यस्त होता जा रहा है और समयाभाव से आक्रांत है। (2) वह साहित्य पढ़ने के नाम पर कोरा मनोविलास नहीं चाहता और जो पढ़ना चाहता है उसके आइने में अपने चतुर्दिक की सच्चाइयों को भी परखना चाहता है। (3)वह बेहद लाग लपेट के साथ किसी बात को पाना नहीं चाहता बल्कि बेबाक और दो टूक सुनना चाहता है। चूंकि लघु कथा इन अपेक्षाओं को पूरा करती है। इसलिए बेहद लोकप्रिय होती जा रही है। लिखी जा रही लघु कथाओं में भी वे लघु कथाएं विशेष लोकप्रिय हो रही है, जिनमें जीवन की सच्चाइयों की धड़कन है।

वस्तुत: आज के युग के कला-शिल्पी और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अज्ञेय का महत्वपूर्ण स्थान है, यद्यपि भाव-पक्ष की ओर उनका ध्यान कम गया है किन्तु फिर भी कहानी की आत्मा और शैली दोनों में ही वे सर्वोपरि सिद्ध होते हैं। उनकी 'परम्परा' 'बसंत"कविप्रिया"कैसेण्डा का अभिशाप' 'कोठरी की बात' 'नम्बर दस' 'द्रोही' 'अलिखित कहानी' 'अकलंक' 'नंगा' 'पर्वत की घटा' आदि प्रसिद्ध कहानियाँ है जिनमें उनके जीवन और जगत के गम्भीर अध्ययन की स्पष्ट छाप है तथा उसकी कलात्मकता का चरम विकास है।

निबंध का अर्थ

निबंध का मौलिक अर्थ नि + बंध (बाँधना) + पत्र संग्रह रोकना (वाचसपत्यम) या [नि + बंध (बाँधना) + अच्] नीम का वृक्ष और उसके सेवन से कोष्ठ रोग रोध है, किन्तु कालांतर में अर्थ संकोच के कारण केवल साहित्यिक कृति के लिए इसका प्रयोग किया जाने लगा।

निबंध के पर्याय के रूप में - लेख, संदर्भ, रचना और प्रस्ताव शब्द भी प्रचलित हुए। इसे अंग्रेजी का आर्टिकल कह सकते हैं। संदर्भ का अर्थ बाँधना है।

आजकल यह अपने मूल और रुढ़ अर्थों से भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होता है। वह अपने सभी समानांतर पर्यायों के मौलिकता तथा परंपरानुमोदित अर्थों से भिन्न अस्तित्व रखता है। यह लैटिन के 'एग्जी जियर' (निश्चितातापूर्वक परीक्षण करना) से फ्रेंच के 'एसाई' तथा अंग्रेजी के 'ऐसे' का पर्याय हो गया है, जिसका शाब्दिक अर्थ प्रयत्न, प्रयोग या परीक्षण होता है-जिसमें निबंधकार आत्मीयता या अनात्मीयता, वैयक्तिकता या निवैयिक्तता के साथ किसी एक विषय या उसके किसी अंशों या प्रसंगों पर अपनी निजी भाषा-शैली में भाव या विचार प्रकट करता है। यों निबंध को परिभाषित करना अत्यंत कठिन है। उसके अनेकानेक रूप हो सकते हैं।

निबंध हिन्दी-गद्य साहित्य का एक आधुनिक रूप माना जा सकता है। आधुनिक निबंध का संबंध संस्कृत निबंधों की परंपरा से जोड़ना उतना उचित नहीं होगा। निबंध का आधुनिक रूप अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से विकसित हुआ है। इसके प्रचार और प्रसार में पत्र-पत्रकारों का विशेष

हाथ रहा है। निबंध साहित्य के प्रारंभिक इतिहास में हम प्राय: पत्रकारों को ही अग्रगण्य लाते हैं। जैसे 'हिन्दी प्रदीप' के पं. बालकृष्ण भट्ट, 'कविवचन सुधा' और 'आनंद कादंबिनी' के पं. 'बद्रीनारायण चौधरी' 'ब्राह्मण' के पं. प्रताप नारायण मिश्र 'हिन्दुस्तान' के श्री बालमुकुन्द गुप्त, 'सुदर्शन' के पं. माधव मिश्र ही थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि हिन्दी में जिस प्रकार की गद्य रचना के लिए आज हम निबंध शब्द का प्रयोग करते हैं, भारतेन्दु युग से पूर्व हमें उसके दर्शन नहीं होते। 'रानी केतकी की कहानी' अथवा 'राजा भोज का सपना' आदि गद्य रचनाओं को आधुनिक अर्थों में निबंध नहीं कहा जा सकता है।

निबंध के भेद- निबंध कई प्रकार के हो सकते हैं, जो इस प्रकार हैं-

1. कथात्मक (आख्यात्मक)
2. वर्णनात्मक
3. चिंतनात्मक
4. साहित्यिक
5. सांस्कृतिक
6. आलोचनात्मक-समीक्षात्मक
7. स्फुट या विविध प्रकार।

अन्य प्रकार से भेद इस प्रकार के होते हैं-

1. विचार प्रधान
2. भावप्रधान-गद्यगीतात्मक
3. प्रतीकात्मक
4. मनोवैज्ञानिक
5. कथात्मक
6. संस्मरणात्मक
7. हास्य-व्यंग्यात्मक
8. वर्णन प्रधान।

निबंधों के पर्याय में लेख (आलेख और साहित्यिक बैठकों में पढ़ा जाता है) आलोचना, समीक्षा, ललित, प्रश्न पत्रों के उत्तर इत्यादि सैकड़ों प्रकार के रूप हो सकते हैं।

हिन्दी निबंध का उद्भव एवं विकास

निबंध हिन्दी गद्य साहित्य का एक आधुनिक रूप माना जा सकता है। आधुनिक निबंध का संबंध निबंधों की परम्परा से जोड़ना उचित नहीं होगा। निबंध का आधुनिक रूप अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से विकसित हुआ है। इसके प्रचार और प्रसार में पत्र-पत्रिकाओं का विशेष हाथ रहा है। निबंध साहित्य के प्रारंभिक इतिहास में हम प्राय: पत्रकारों को ही अग्रण्य मानते हैं। जैसे 'हिन्दी प्रदीप' के पं. बालकृष्ण भट्ट, 'कविवचन सुधा' और 'आनन्द कादम्बिनी' के पं. बदरीनारायण चौधरी, 'ब्राह्मण' के पं. प्रताप नारायण मिश्र, 'हिन्दुस्तान' के श्री बालमुकुन्द गुप्त, 'सुदर्शन' के पं. माधव मिश्र ही प्रमुख थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि हिन्दी में जिस प्रकार की गद्य रचना के लिए आज हम निबंध शब्द का प्रयोग करते हैं, भारतेन्दु युग से पूर्व हमें उसके दर्शन नहीं होते। 'रानी केतकी की कहानी' अथवा 'राजाभोज का सपना' आदि गद्य रचनाओं को आधुनिक अर्थों में निबंध नहीं कहा जा सकता है।

हिन्दी का प्रथम निबन्धकार - हिन्दी के लगभग सभी विद्वान निबंधों की परम्परा भारतेन्दु युग से ही स्वीकार करते हैं। किन्तु डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय निबंध के मूल अर्थ को ग्रहण करते हुए निबंध में वैयक्तिकता पर जोर देते हुए पं. बालकृष्ण भट्ट को हिन्दी का प्रथम निबंध लेखक मानते हैं। किंतु ऐसा उपयुक्त नहीं माना जा सकता। वस्तुत: भारतेन्दु जी ही वह प्रतिभा थे जिन्होंने सबसे पहले हिन्दी साहित्य के सभी अंगों पर ध्यान दिया। निबंध के सभी तत्व भारतेन्दु की ही रचनाओं में मिलते हैं। उन्हीं का विकास अन्य लेखकों में हुआ जिसकी स्पष्ट रूपरेखा बालकृष्ण भट्ट, प्रताप

नारायण मिश्र की रचनाओं में प्राप्त होती है। अस्तु भारतेन्दु बाबू से ही हिन्दी निबंधों की परम्परा स्वीकार की जानी चाहिए।

सुविधा की दृष्टि से हिन्दी निबन्धों के विकास को तीन युगों में विभक्त कर सकते हैं-

1. **भारतेन्दु युग** - इस युग के प्रमुख निबन्धकारों में भारतेन्दु हरिशचन्द्र के अतिरिक्त पं. बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त अम्बिकादत्त व्यास, लाला श्री निवास दास, राधाचरण गोस्वामी, मोहनलाल विष्णु पंड्या तथा काशीनाथ खत्री आते हैं। भारतेन्दु जी ने अपने मित्रों की सहायता से ऐसे निबन्धों की रचना की जो अत्यंत जीवंत, जागरुक, आत्मीय हैं। भाषा की दृष्टि से भी इस काल के निबंधकार बड़े उदार हैं। उनकी दृष्टि वर्तमान और भविष्य सभी ओर थी, उनमें गहरी आस्था तथा बेताबी भरी हुई थी। इस समय के निबंधों में विचारों की अनेकता, समाज-सुधार भावना, राजनीतिक चेतना, रोचकता, पत्रकारिता आदि के गुण मिलते हैं। इस युग के निबंधों में व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। इन निबन्धों में एक अजीब मस्ती, जिंदादिली तथा हास्य व्यंग्य मिलता है। इन निबंधों में एक विशेष प्रकार की सजीवता, रोचकता व उल्लास के दर्शन होते हैं।

2. **द्विवेदी युग** - स्वतंत्र साहित्य के रूप के तौर पर निबंध का जन्म तो भारतेन्दु काल में हो चुका था लेकिन उसके स्वरूप का ठीक-ठाक बोध अभी नहीं हुआ था। निबंधों का समुचित उत्कर्ष आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी (सन् 1903) के संपादकत्व में 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन से ही शुरू हुआ। इस पत्रिका के माध्यम से द्विवेदी जी ने हिन्दी गद्य को व्यवस्थित किया। पाठक समुदाय की ज्ञान की भूख को तृप्त करने के लिए उन्होनें ज्ञान-विज्ञान के विविध विषयों पर लेख लिखे और लिखवाये। कहना न होगा कि इस युग के निबंधों का स्वर भारतेन्दु काल के निबंधों से अधिक गम्भीर था। भाषा का स्वरूप द्विवेदी युग में ही निश्चित हुआ। भाषा के परिमार्जन से गद्य शैली में प्रौढ़ता आई।

द्विवेदी युग के निबंधों में विषय वैविध्य मिलता है। साहित्य, भाषा, पुरातत्व, विज्ञान, भूगोल, दर्शन आदि सभी विषयों पर निबन्ध लिखे गये। इनमें भी साहित्य, भाषा और व्याकरण से संबंधित निबंध अधिक हैं। विचारात्मक निबंध में कुछ तो मनोभावों पर हैं। भावात्मक निबन्धों में सरदार पूर्णसिंह के निबन्ध अपना विशेष महत्व रखते हैं। इस प्रकार द्विवेदी युग में आकर निबन्ध की चारों कोटियां - विवरणात्मक, विचारात्मक, विवेचनात्मक और भावात्मक दिखाई पड़ जाती हैं। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के अलावा इस युग के निबन्धकारों में श्यामसुन्दरदास, गोविन्द नारायण मिश्र, मिश्र बन्धु, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, सरदार पूर्णसिंह, माधव प्रसाद मिश्र, पद्मसिंह शर्मा, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी आदि उल्लेखनीय नाम हैं।

3. **आधुनिक युग** - इस युग में आकर निबन्धों का उत्कर्ष बिलकुल नये वातावरण में हुआ। इस दौर में निबन्ध साहित्य में गुणात्मक रूपांतर हुआ। इस काल में पाश्चात्य जीवन-दृष्टि के साथ ही भारतीय जीवन दृष्टि का घनिष्ट समन्वय हुआ। इस समय के निबन्धों में आशावादिता को भी एक नया बौद्धिक उन्मेष मिला। एक उदार मानवतावादी दृष्टिकोण से प्रभावित होकर इस युग के निबंधकार अपने-अपने दृष्टिकोण से जीवन और जगत की बहुरंगी समस्याओं को व्यक्त करने लगे। इस अवधि में विचारात्मक और आत्म परक (वैयक्तिक) दोनों प्रकार के निबंधों की रचना अधिक हुई।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इस युग के श्रेष्ठ निबंधकार माने जाते हैं, वास्तव में उन्होंने निबंध को जो गंभीरता और गरिमा प्रदान की वह अन्य भारतीय भाषाओं में भी अलभ्य है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डा. संपूर्णानन्द, रामविलास शर्मा, अज्ञेय, राहुल सांस्कृत्यायन, नन्ददुलारे बाजपेयी, डा. नगेन्द्र, शांतिप्रिय द्विवेदी, प्रभाकर माचवे आदि निबंधकारों ने इस युग में निबंध साहित्य को अद्वितीय

विस्तार दिया। इस युग के निबंधों में गम्भीरता के साथ ही स्वच्छन्दता के विशेष दर्शन होते हैं। कहा जा सकता है कि इस काल में नये सिरे से वैयक्तिक निबंध लेखन की परम्परा शुरू हुई। उदाहरण के लिए इस युग के शीर्ष लेखकों की विनोद प्रियता और स्वच्छंदता है तो दूसरी ओर आचार्य शुकल की शोधपरक गंभीर लोक संग्राहक वृत्ति भी है। उनके निबंधों में जहाँ भारतीय जीवन परम्परा के उदात्त तत्व संचित हुए हैं, वहीं जीवन की नयी समस्याओं से साक्षात्कार भी है।

4. **स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी निबन्ध** - स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी निबंध बिल्कुल नयी जमीन पर नये तेवर के साथ खड़ा दिखाई पड़ता है। उसकी उपलब्धियों के कारण नयी कविता, नयी कहानी के वजन पर हम इसे 'नया निबन्ध' भी कह सकते हैं। वास्तव में हिन्दी समसामयिक नया निबन्ध साहित्य मध्यवर्तिनी भूमि पर है। मध्यवर्तिनी भूमि अर्थात् विशुद्ध गांभीर्य और विशुद्ध हास्य के बीच में ईषत् मनोरंजन और ईषत् अभिज्ञता का चतुर्मुखी लालित्य। विद्यानिवास मिश्र, धर्मवीर भारती, शिव प्रसाद सिंह, ठाकुर प्रसाद सिंह, श्री लाल शुक्ल, अमृत राय, मुक्तिबोध, कुबेर नाथराय, शरद जोशी, रवीन्द्रनाथ त्यागी के निबन्ध में चतुर्मुखी लालित्य है। यही बड़ी खुशी की बात है कि हिन्दी के समसामयिक निबन्धकारों में अपने चतुर्दिक व्याप्त समस्याओं और आस पास की स्थितियों, परिस्थितियों को देखने परखने और उनका समुचित विशेलषण करने की नयी शक्ति और दृष्टि है। इस दौर में लिखे गये निबन्धों की कोई एक पद्धति नहीं है, बल्कि प्रत्येक निबन्ध में अपनी आवश्यकताओं और व्यक्तित्व के अनुरूप अपनी शैली का सन्धान और विकास किया गया है। अन्य विधाओं की तरह उनकी भी उलपब्धियाँ समर्थ व अहम हैं।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि भारतेन्दु से जो निबन्ध यात्रा प्रारम्भ हुई थी, वह आज तक निरन्तर गतिशील है और इसमें कोई संदेह नहीं कि न केवल भारतीय बल्कि विश्व के निबंध साहित्य के बीच उसकी एक गौरवपूर्ण स्थिति है।

रेखाचित्र का विकास क्रम लिखिए।

'रेखाचित्र' शब्द अंग्रेजी के 'स्केच' का समानार्थी है। इसका प्रयोग चित्रकला में होता है। जिस प्रकार कलाकार कुछ रेखाओं द्वारा सूक्ष्म भावों को मूर्त करके एक सजीव चित्र प्रस्तुत कर देता है, ठीक उसी प्रकार रेखाचित्र-लेखक शब्दों द्वारा विभिन्न घटनाओं का सजीव चित्र उपस्थित कर देता है। रेखाचित्र में एक ही वस्तु, घटना अथवा चरित्र प्रधान होता है, जिससे सम्बन्धित प्रमुख विशेषताओं को उभारा जाता है। इस सम्बन्ध में डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी लिखते हैं- "इस प्रकार कहानी और निबन्ध दोनों के तत्वों से युक्त होते हुए भी रेखाचित्र का अपना अलग अस्तित्व है। इसमें जीवन का सम्पूर्ण चित्र न होकर एकांगी चित्र ही होता है। सफल रेखाचित्रों का लेखक वही हो सकता है, जिसने जीवन को भोगा हो, उसे निकट से देखा हो और उसकी गहराइयों में उतरकर उसका सूक्ष्म निरीक्षण किया हो। रेखा चित्रकार के लिए एक सहृदय, संवेदनशील किन्तु तटस्थ दृष्टि का होना बहुत आवश्यक है। सफल रेखाचित्र लेखक में चित्रण की बारीकी और विश्लेषण की सूक्ष्मता का होना भी जरूरी है।

परिभाषा एवं स्वरूप

विभिन्न विद्वानों ने रेखाचित्र की लगभग एक ही प्रकार की परिभाषा दी है। 'प्रकीर्णिका' के सम्पादकों ने रेखाचित्र को पारिभाषित करते हुए लिखा है- "जब लेखक अपने सम्पर्क में आये

व्यक्ति, सान्निध्य में आयी वस्तु अथवा देखी-भोगी घटना का यथा-तथ्य चित्रण शब्द रेखाओं के माध्यम से करता है, तो उसे रेखाचित्र कहते हैं।"

इसके लिए संस्मरणात्मक शैली के अतिरिक्त दो बातें आवश्यक होती हैं-

1. चित्र-विधायी भाषा का प्रयोग, 2. संवेदना उभारने वाली मार्मिक शैली।

श्रीमती महादेवी वर्मा अपने विचारों को इस प्रकार व्यक्त करती है- " 'रेखाचित्र' शब्द चित्रकला से साहित्य में आया है, परन्तु अब यह शब्द-चित्र के स्थान में रूढ़ हो गया है।" चित्रकार अपने सामने रखी वस्तु या व्यक्ति का रंगहीन चित्र जब कुछ रेखाओं में इस प्रकार आँक देता है कि उसकी विशेष मुद्रा पहचानी जा सके, तब उसे हम 'रेखाचित्र' की संज्ञा देते हैं। साहित्य में भी साहित्यकार कुछ शब्दों में ऐसा चित्र अंकित कर देता है जो उस व्यक्ति या वस्तु का परिचय दे सके, परन्तु दोनों में अन्तर है।

चित्रकार चाक्षुष प्रत्यक्ष के आलोचक में बैठे हुए व्यक्ति का रेखाचित्र आँक सकता है, कभी कहीं देखे हुए व्यक्ति का रेखाचित्र अंकित नहीं हो पाता और दीर्घकाल के उपरान्त अनुमान से भी ऐसे चित्र नहीं आँके जाते। इसके विपरीत साहित्यकार अपना शब्द-चित्र दीर्घकाल के अन्तराल के उपरान्त भी अंकित कर सकता है। उसने जिसे कभी नहीं देखा हो, उसकी आकृति, मुख-मुद्रा आदि को शब्द में बाँध देना कठिन नहीं होता। शब्द के लिए जो सहज है वह रेखाओं के लिए कठिन है। 'रेखाचित्र' वस्तुत: अंग्रजी के 'पोट्रेट पेन्टिंग' के समान है पर साहित्य में आकर इस शब्द ने बिम्ब और संस्मरण दोनों का कार्य सरल कर दिया है।

इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए डॉ. रामचन्द्र तिवारी लिखते हैं- "रेखाचित्र में किसी व्यक्ति, वस्तु या सन्दर्भ का अंकन किया जाता है। यह अंकन पूर्णत: तटस्थ भाव से निर्लिप्त रहकर किया जाता है। रेखाचित्र में रेखाएं बोलती हैं। कुछ थोड़ी-सी रेखाओं का प्रयोग करके रेखा चित्रकार किसी व्यक्ति या वस्तु को उसकी मूलभूत विशेषता के साथ सजीव कर देता है। रेखांकन करते समय वह अपने को तटस्थ रखने की चेष्टा करता है। वस्तु को ही महत्व देता है। विषय को ही रूपायित करता है। जब कभी उसकी तटस्थता भंग होती है तो रंगों की चटक में रेखायें डूब जाती हैं।" संस्मरण,रेखाचित्र एवं आत्मचरित्र की एकता और घनिष्ठता का उद्‌घाटन करते हुए श्री बनारसीदास चतुर्वेदी लिखते हैं- "संस्मरण, रेखाचित्र और आत्मचरित्र इन तीनों का एक दूसरे से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि एक की सीमा दूसरे से कहाँ मिलती है और कहाँ अलग हो जाती है, इसका निर्णय करना कठिन है।"

कहना न होगा कि संस्मरण और रेखाचित्र दोनों एक दूसरे के अति निकट हैं।

रेखाचित्र के रूप विधायक तत्व

रेखाचित्रों के निम्नलिखित रूप विधायक तत्व माने जाते हैं-

1. **यथार्थता-** इनमें जीवन की यथार्थ अनुभूतियों का चित्रांकन होता है।

2. **एकात्मकता-** ये एक ही व्यक्ति, वस्तु अथवा घटना पर आधारित होते हैं।

3. **चारित्रिक रेखाओं का उभार-** चित्रांकित व्यक्ति की आन्तरिक चारित्रिक विशेषताओं तथा बाह्य रूप-रंग आदि का चित्रांकन आवश्यक होता है।

4. **संवेदनाओं का उभार-** चित्रांकित पात्र के प्रति जाग्रत संवेदना रेखाचित्र को 'संस्मरण'से पृथक करती है।

5. **शैली-** इनमें मुख्यत: आलंकारिक, चित्रात्मक, कथात्मक या काव्यात्मक शैली ही प्रयुक्त होती है।

6. **उद्देश्य-** रेखाचित्रकार का स्पष्ट उद्देश्य चित्रित व्यक्ति,वस्तु घटना को मूर्तिमान करते हुए पाठक के मन पर अपनी रमणीयता से अमिट छाप छोड़ना होता है।

हिन्दी में रेखाचित्र का उद्‌भव एवं विकास

हिन्दी के प्रारम्भिक काल में रेखाचित्र नाम से कोई रचना विधा दृष्टिगोचर नहीं होती है,किन्तु इस रचनाकाल में भी इसके मूलभूत तत्वों को ढूंढा जा सकता है। उदाहरण के लिए चन्दवरदायी के 'पृथ्वीराजरासो', जायसी के 'पद्मावत', तुलसीदास के 'रामचरित मानस', देव, बिहारी, मतिराम आदि के श्रृंगारिक वर्णनों में रेखाचित्र के अनेक चित्र उपलब्ध हैं। जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी',पंत की 'ग्राम्या'और निराला की 'परिमल'आदि रचनाओं में भी आधुनिक रेखाचित्र के जागृत अंश प्राप्त होते हैं। भारतेन्दु-युग में लिखे गए निबन्धों में रेखाचित्रों का आभास मात्र होता है। इस युग के अन्त में पाश्चात्य गद्य साहित्य से हिन्दी साहित्य प्रभावित होने लगा था। पाश्चात्य गद्य साहित्य में चार्ल्स डिकेन्स के 'स्केचेज वाइबाज',गार्ल्सवर्दी के 'पोट्रेट'तथा गोर्की, चेखब आदि के 'स्केचेज'को बहुत मान्यता मिली। इन्हीं स्केचों के प्रभाव से हिन्दी साहित्य में रेखाचित्रों का उद्‌भव हुआ है। हिन्दी में इस विद्या का जनक पद्मसिंह शर्मा को माना जाता है। सन् 1929 में उनका संग्रह 'पद्म पंराग'शीर्षक से प्रकाशित हुआ,जिसमें निबन्धों के साथ ही रेखाचित्र भी थे। ये पूर्ण रेखाचित्र न होकर रेखाचित्रों की पृष्ठ-भूमि को प्रस्तुत करते हैं। स्वतंत्र रूप से 'रेखाचित्र'का सूत्रपात करने का श्रेय पं. श्रीराम शर्मा को ही है। वास्तव में उन्हें ही प्रथम रेखाचित्रकार माना जाना चाहिए। पं. श्रीराम शर्मा का सन् 1937 में 'बोलती प्रतिमा'नामक संग्रह प्रकाशित हूआ,जिसमें **'ठाकुर की आन', 'रतन की अम्मा', 'वरदान'** जैसे सफल रेखाचित्र अभिचित्रित हैं। सन् 1939 में निराला जी द्वारा विरचित **'कुल्लीभाट'** तथा सन् 1941 में **'बिल्लेसुर बकरिहा'** जैसी अमर रचनाओं ने इस विधा के स्वरूप को भली प्रकार विकसित किया है। **'कुल्लीभाटे'** में कुल्ली नामक भाट की चारित्रिक रेखाओं को उभारा गया है। यह एक 'लाइफ स्केच'है। इस विधा के विकास में महादेवी वर्मा का अविस्मरणीय योगदान रहा है। उनके संस्मरणों और रेखाचित्रों के बीच विभाजन रेखा खींचना कठिन है। **'स्मृति की रेखाएं' 'अतीत के चलचित्र' 'पथ के साथी'** उनके महत्वपूर्ण संकलन हैं। **'रामा', 'बिन्दो', 'घीसा' 'पर्वत-पत्र', 'लछमा'** आदि उनके अमर रेखाचित्र हैं। समाज के दीन-हीन और शोषित व्यक्तियों का जीवन इनमें साकार हो उठा है। उनके रेखचित्रों में भाव-प्रवीणता और कविता पूर्ण भाषा दर्शनीय है। बनारसीदास चतुर्वेदी ने समाज-सेवियों साहित्यकारों से सम्बन्धित संस्मरणात्मक रेखाचित्रों की रचना करके रेखाचित्र के विकास में सर्वाधिक योगदान दिया है। उन्होंने उत्कृष्ट श्रेणी के लगभग 40 रेखाचित्रों की रचना की है। उन्होंने भूमिका के रूप में रेखाचित्र के रचना स्वरूपों का विस्तारपूर्वक प्रतिपादन किया है।

रेखाचित्र विधा को महत्व प्रदान करने में 'हंस'के रेखाचित्र विशेषांक (1939) और 'मधुकर'के रेखाचित्र विशेषांक (1946) का विशेष योगदान रहा है। रामवृक्ष बेनीपुरी के आविर्भाव से रेखाचित्र का रूप चमक उठा। **'लाल तारा', 'माटी के मुरतें', 'गेहूं और गुलाब' तथा 'मील के पत्थर'** आदि उनके कई महत्वपूर्ण संग्रह हैं। इनमें अधिकांशत: उपेक्षित लोगों के चित्र अंकित किए गये हैं।

इसके अतिरिक्त डॉ.प्रकाशचन्द्र गुप्त के 'पीपल', 'खंडहर', 'मिट्टी के पुतले', देवेन्द्र सत्यार्थी का 'रेखाएं बोल उठी', कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर का भले हुए चेहरे 'जगदीश चन्द्र माथुर का दस तस्वीरें', सत्यजीवन वर्मा का 'एलबम', राजाराधिकारमण सिंह के 'सावनी समाँ', 'टूट तारा' 'सूरदास' ,इन्द्रविद्या वाचस्पति का 'मैं इनका ऋणि हूं', विनोदशंकर व्यास का 'प्रसाद और उनके समकालीन' शिवचन्द्र नागर का 'महादेवी वर्मा और व्यक्तित्व', शान्तिप्रिय द्विवेदी का 'पथचिन्ह', डॉ.नगेन्द्र का चेतना के बिम्ब डॉ. रामविलास शर्मा का 'विरामचिन्ह', मच्छिन्द्रनाथ का 'धासावली' राहुल सांकृत्यायन

का रूपी, हर्षदेव-मालवीय का 'पण्डित और प्रसाद' और चतुरसेन शास्त्री का 'वातायन' आदि उल्लेखनीय आर्कषक और मनोरम रेखाचित्र हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि थोड़े समय में ही हिन्दी साहित्य की इस विधा ने आशातीत सफलता प्राप्त की है। आज यह विधा रंग-रूप में किसी से कम नहीं है। इस विधा के सभी रूप श्रीराम शर्मा, बेनीपुरी तथा महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों में दृष्टिगोचर होते हैं। आज भी इस विधा में सृजन हो रहा है। अत: इसका भविष्य उज्जवल है।

परिभाषा एवं तत्व

संस्मरण आधुनिक गद्य की एक महत्वपूर्ण विधा है। संस्मरण किसी स्वर्यमाण की स्मृति का शब्दांकन है। स्वर्यमाण के जीवन के वे पहलू, वे सन्दर्भ और वे चारित्रिक वैशिष्ट्य जो स्मरणकर्ता को स्मृत रह जाते हैं, उन्हें वह शब्दांकित करता है। स्मरण वही रह जाता है,जो महत्, विशिष्ट, विचित्र और प्रिय हो। स्वर्यमाण को अंकित करते हुए लेखक स्वयं भी अंकित होता चलता है। संस्मरण में विषय और विषयी दोनों ही रूपायित होते हैं। इसलिए इसमें स्मरणकर्ता पूर्णत: तटस्थ नहीं रह पाता। अपने स्वं का पूर्ण विसर्जन वह नहीं कर पाता। वस्तुत: वह स्वर्यमाण से सन्दर्भित अपने स्वं का पुन: सर्जन करता है।

इस प्रकार इस विद्या का जन्म तब होता है जब लेखक अपने सम्पर्क में आये व्यक्तियों,विगत घटनाओं,देखे हुए दृश्यों और संसर्ग में आयी वस्तुओं पर अपनी लेखनी चलाता है। संस्मरण में मुख्यत: निम्नलिखित तत्व होते हैं-

(1) भावुक कलाकार की अतीत की स्मृतियाँ। (2) स्मृतियों पर आधारित रमणीय अनुभूतियाँ। (3) कोमल कल्पना का रंग। (4) व्यंजनामूलक संकेत शैली का उपयोग। (5) रोचक ढंग से यथार्थ की अभिव्यक्ति। (6) लेखक के व्यक्तित्व की विशेषताओं का पुट।

हिन्दी संस्मरण-साहित्य का विकास

पद्मसिंह शर्मा और श्रीराम शर्मा हिन्दी के प्रारम्भिक संस्मरण लेखक हैं। श्रीराम शर्मा कृत सन बयालीस संस्मरण तथा बोलती प्रतिभा उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। महादेवी वर्मा कृत अतीत के चलचित्र,स्मृति की रेखाएँ,पथ के साथी तथा संस्मरण आदि संस्मरण-संग्रह महत्वपूर्ण माने जाते हैं किन्तु यहाँ यह ज्ञातव्य है कि इनमें संस्मरण और रेखाचित्र दोनों विधाओं के लक्ष्य मिल-जुल गये हैं। रामवृक्ष बेनीपुरी की 'माटी की मूरतें', 'गेहूं और गुलाब' तथा 'झील के पत्थर' नामक संस्मरण-संग्रह अपना विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। शान्तिप्रिय द्विवेदी के ये पद-चिन्ह तथा परिब्राजक की प्रजा नामक संग्रहों में अत्यन्त रोचक संस्मरण मिलते हैं। कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर लिखित 'भूले हुए चेहरे', 'दीप जले शंख बजे' नामक संस्मरण-संग्रह प्रवाहपूर्ण एवं कलात्मक शैली में लिखे गये हैं। देवेन्द्र सत्यार्थी कृत क्या गोरी क्या साँवरी तथा रेखाएं बोल उठी के संस्मरण अपनी भावात्मक शैली के लिए प्रसिद्ध हैं। बनारसीदास चतुर्वेदी के मार्मिक संस्मरण 'हमारे आराध्य' तथा संस्मरण नामक संग्रहों में प्रकाशित हुए हैं। इलाचन्द जोशी कृत गोर्की के संस्मरण, श्री नारायण चतुर्वेदी कृत 'मनोरंजन संस्मरण', गुलाबराय कृत 'मेरी असफलताएं', राहुल सांस्कृत्यायन कृत 'बचपन की स्मृतियाँ', श्रीमती ललिता शास्त्री कृत 'मेरे पति मेरे देवता' तथा सेठ गोविन्ददास कृत 'महापुरुषों के साथ' आदि रचनाएं संस्मरण साहित्य की अमर निधि हैं। गत दो-तीन दशकों में अभिनन्दन ग्रन्थों की बाढ़-सी आयी है जिसमें अनेक लेखकों ने संस्मरण लेखन का आश्रय लिया है। इस प्रकार हिन्दी का संस्मरण-साहित्य आज समृद्ध है तथा इसका भविष्य भी उज्जवल है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत विवेचन के आधार पर अन्त में **डॉ.रामचन्द्र तिवारी** के शब्दों में कह सकते हैं-"हिन्दी साहित्य में गद्य की नवीन आधुनिक विधाओं के विकास की सम्भावना इधर बढ़ती जा रही है। जितना ही हम जीवन की व्याप्ति को यथार्थ के स्तर पर ग्रहण करने की चेष्टा करेंगे उतना ही गद्य के नये रूपों और नयी विद्याओं के विकास का द्वार मुक्त होगा।"

प्रश्न 38. "जीवनी" विधा का अर्थ स्पष्ट करते हुये इसका विकास क्रम लिखिये।

अथवा 'जीवनी' की परिभाषा देते हुए उसके स्वरूप एवं विकास पर प्रकाश डालिए।

उत्तर-

परिभाषा एवं स्वरूप

आदर्श हिन्दी शब्दकोश एवं हिन्दी रत्नकोष में जीवन-चरित्र का अर्थ 'जीवन का वृतान्त' जिन्दगी का हाल, जीवन वृतान्त युक्त ग्रन्थ दिया गया है। हिन्दी शब्द सागर में जीवनी का अर्थ, 'जीवन भर का वृतान्त' तथा 'जीवन-चरित्र' दिया गया है। ये अर्थ अस्पष्ट हैं। प्रचारक हिन्दी शब्द कोष ने इसका अर्थ इस प्रकार दिया है- 'जीवन का वृतान्त', 'वह पुस्तक जिसमें किसी महापुरुष के जीवन का समस्त विवरण आदि से अन्त तक लिखा हो।' एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में जीवन-चरित्र के विषय में लिखा गया है कि, "यह इतिहास का वह रूप है जो मनुष्य की जातियों या समूहों से नहीं, वरन् एक व्यक्ति से सम्बन्ध रखता है।" द न्यू अमेरिकन एनसाइक्लोपीडिया ने भी जीवन-चरित्र का अर्थ 'एक व्यक्ति के जीवन की घटनाओं का इतिहास या उसके विचार और समय की व्याख्या' लिखा है।

इस प्रकार सत्रहवीं शती के पूर्व तक जीवनी-साहित्य के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट धारणा नहीं थी। सत्रहवीं शती में जेम्स वासवेल ने डॉ. जान्सन का जीवन-चरित्र लिखा और इस समय से जीवन-साहित्य में आमूल परिवर्तन उपस्थित हो गया।

जीवनी के तत्व एवं लक्षण

प्रस्तुत विवेचन के आधार पर जीवन-चरित्र के विशेष लक्षण एवं तत्व निम्नांकित हैं-

(1) एक व्यक्ति के जीवन का वृतान्त। (2) ऐतिहासिक सत्यता। (3) लेखक की तटस्थता एवं सहृदयता। (4) वैज्ञानिकता। (5) मनोदशा का विश्लेषण। (6) ये जीवनियां किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा लिखी जाती हैं। (7) इनमें लेखक नायक के बाह्य एवं आन्तरिक व्यक्तित्व का सच्चा विश्लेषण प्रस्तुत करता है। (8) लेखक वास्तविक घटनाओं का अंकन और चित्रण करता है। (9) लेखक को नायक का अन्धभक्त नहीं होना चाहिए। (10) जीवनी-लेखक का लक्ष्य-सत्य का उद्घाटन होना चाहिए। (11) जीवनी महान व्यक्तियों की लिखी जाती है। (12) लेखक यथार्थ चित्रण करता है। (13) लेखक को 'आत्म' से बचते हुए 'पर' के क्षेत्र में ही विचरण करना पड़ता है। (14) इसमें चरित्र-नायक के जीवन की क्रम-बद्ध कहानी कही जाती है। (15) जीवनी-लेखन इतिहास अथवा कल्पना पूर्ण कथा से पृथक है।

जीवनी का विकास

जीवनी-साहित्य के विकास को पांच भागों में विभाजित करके देखा जा सकता है- (i) 1000 ई. से पूर्व, (ii) 1000 ई. से 1850 ई. तक, (iii) 1851 ई. से 1900 ई. तक, (iv) 1901 ई. से 1929 ई. तक, (v) 1930 ई. से वर्तमान काल तक।

(1) 1000 ई. से पूर्व अथवा हिन्दी के पूर्व भारतीय भाषाओं में जीवनी साहित्य- जीवनी-साहित्य की परम्परा अति प्राचीन है। डॉ. चन्द्रावती सिंह ने इसका सूत्र वेदों से ढूंढा है।

अथर्ववेद के रचयिता अथर्वन ऋषि का संक्षिप्त जीवन-परिचय ऋग्वेद में प्राप्त होता है। इसी प्रकार तैत्तरीय संहिता में वैशम्पायन और याज्ञवल्क्य के चरित्र उपलब्ध होते हैं।

रामायण में राम के चरित्र का वर्णन है। बौद्धों के जातक ग्रन्थों में भी विभिन्न प्रकार के चरित्र उपलब्ध हैं। महाभारत में युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, दुर्योधन आदि के चरित्र वर्णन किये गये हैं। इसी प्रकार पौराणिक साहित्य में भी हजारों जीवन-वृतान्त मिलते हैं।

प्रथम ईसवी के लगभग अश्वघोष ने 'बुद्धचरित' लिखा। बाण द्वारा लिखित 'हर्षचरित' भी प्राचीन साहित्य है।

जैन वाङ्मय के चार प्रकार माने गए हैं, जिनमें एक भाग जीवन-चरित्र का भी है। कल्हण ने 'राज-तरंगिणी' ग्रन्थ लिखा है, जिसमें 1148 ई. तक के कश्मीर के राजाओं का वर्णन है। इस प्रकार भारतीय जीवनी-साहित्य का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है।

(2) 1000 से 1850 ई. तक अथवा उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध तक हिन्दी जीवनी-साहित्य- जिस समय हिन्दी का जन्म हुआ भारत की स्थिति बड़ी डांवाडोल थी। चारों ओर ईर्ष्या, द्वेष, दम्भ और कलह देश की शक्ति को छिन्न-भिन्न कर रहे थे। डॉ. चन्द्रावती सिंह लिखती हैं- "एक हजार शताब्दी से 13वीं शताब्दी तक वीरों के पराक्रम का युग था 14वीं शताब्दी से 17वीं शताब्दी तक आध्यात्मिक और भक्ति प्रचार का युग था और उसके बाद 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक भारत का जीवन श्रृंगारमय और विलासपूर्ण था। ... इस काल का जीवनी-साहित्य अपने युग की आत्मा का वास्तविक प्रतिनिधि है।"

भक्ति-काल के जीवनी-साहित्य की एक ही शैली है। जैसे वीरगाथा-काल जीवन-साहित्य का रूप 'रासो' साहित्य की शैली परम्परा में था, उसी प्रकार भक्ति-कालीन जीवनी-साहित्य में नायकों के चरित्रों का भक्तिपूर्ण वर्णन है।

(3) 1851 से 1900 ई. तक अथवा भारतेन्दु युग और जीवनी साहित्य- इस काल में इस विधा का पर्याप्त विकास देखा जा सकता है। स्वयं भारतेन्दु बाबू ने 'चरितावली' लिखी जिसमें सोलह जीवन वृतान्त हैं। साथ ही 'उत्तरार्द्ध भक्तमाल' भी लिखा जिसमें लगभग दो सौ भक्तों का वर्णन एक सौ छियानवे छप्पयों में किया गया है। इस युग के अन्य जीवन-चरित्र हैं- राधाचरण गोस्वामी का जीवन-चरित्र, श्री स्वामी बिरजानन्द सरस्वती दण्डी जी का जीवन-चरित्र, परमहंस शिव नारायण स्वामी जी का जीवन-चरित्र, नैपोलियम बोनापार्ट का जीवन-चरित्र, छत्रपति शिवाजी का जीवन-चरित्र, विक्टोरिया महारानी का वृतान्त, सिकन्दर महान का वृतान्त, स्वामी दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित्र, मीराबाई का जीवन-चरित्र, तुलसीदास का जीवन-चरित्र, महाराणा प्रताप का जीवन-चरित्र, यदुपति महाराणा उदयसिंह जी का जीवन-चरित्र आदि।

(4) 1901 से 1929 ई. तक अथवा द्विवेदी युगी जीवनी-साहित्य- आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी सही माने में आचार्य थे। व्याकरण एवं शैली पर ध्यान देते हुए उन्होंने साहित्यिक-समालोचना, इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति एवं जीवन-चरित्र अदि विषयों पर गम्भीरता, तल्लीनता तथा परिश्रम के साथ लिखना अपना कर्त्तव्य निर्धारित कर लिया था। उन्होंने दूसरों को भी उचित ढंग से लिखने के लिए प्रेरित किया।

इनके अतिरिक्त अन्य विद्वानों द्वारा लिखी गई जीवनियों में प्रमुख हैं- स्वामी विशुद्धानन्द, दयानन्द चरितामृत, स्वामी दयानन्द, दयानन्द दिग्विजय, दयानन्द प्रकाश, देशभक्त लाजपत, शंकराचार्य, कर्मवीर गांधी, केशव चन्द्रसेन, महाराणा रणजीत सिंह, वीर केशरी शिवाजी, सरदार वल्लभभाई पटेल, बादशाह हुमायूं आदि। इनके साथ ही इस युग में अन्य बहुत-सी जीवनियां लिखी गईं।

(5) 1930 ई. से वर्तमान काल तक अथवा वर्तमान युग- द्विवेदी युग के समाप्त होते ही भारतीय जीवन उथल-पुथल के महासागर से पार होने लगा। घटनाओं का चक्र तीव्रगति से घूम रहा था। 1930 में देश में व्यापक सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। उधर अंग्रेजों का दमन-चक्र भी पूरी गति से चला। अन्ततोगत्वा सन् 1947 में भारत स्वतन्त्र हुआ। इस काल में साहित्य के क्षेत्र में भी पर्याप्त उतार-चढाव देखे जा सकते हैं। आलोच्य युगीन जीवनियों में मुख्य हैं- दयानन्द, श्री गांधी, गणेश शंकर विद्यार्थी, श्री एकनाथ चरित्र, स्वामी श्रद्धानन्द की जीवनी, आचार्य महावीर प्रसाद, महामना पं. मदनमोहन मालवीय, श्री रामकृष्ण परमहंस, क्रान्तियुग के संस्मरण, मेरा बचपन, गुरुनानक, दुर्गादास, चन्द्रशेखर आजाद, कलम, त्याग और तलवार, शेष स्मृतियां, कुल्लीभाट, अतीत के चलचित्र, मेरी आत्म कहानी, प्रेमचन्द्र घर में, सन्त कबीर, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, बन्दी की चेतना, मेरी जीवन यात्रा, महाकवि हरिऔध, जगतगुरु शंकराचार्य, सत्य की खोज, मेरा जीवन-प्रवाह, राष्ट्रपिता, कार्ल मार्क्स, जयप्रकाश नारायण आदि।

निष्कर्ष

अन्त में साहित्य-मर्मज्ञ डॉ. रामचन्द्र तिवारी के शब्दों में कह सकते हैं- "वस्तुत: जीवन-लेखन के लिए जिस मनोभूमि की आवश्यकता होती है, हिन्दी साहित्य में अब तक उसका अभाव है। 'आत्मकथा' की रचना के लिए खुला हुआ मन, जो अपनी समस्त दुर्बलताओं को स्वीकार कर सके, आवश्यक है। दूसरे की जीवनी लिखने के लिए चरित नायक के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी अपेक्षित है। चरित नायक के प्रति पूज्य भाव या प्रशंसात्मक दृष्टिकोण होने के कारण प्राय: उसके जीवन के वे प्रसंग छोड़ दिये जाते हैं, जिन्हें वैज्ञानिक दृष्टि से समान महत्व दिया जाना चाहिए। हर मनुष्य के जीवन में ऐसे क्षण आते हैं जब वह देवता होता है और ऐसे भी क्षण आते हैं जब उसके अचेतन में दबा हुआ पशु हुंकार उठता है। जीवनी-लेखक के लिए आवश्यक है कि वह तटस्थ भाव से उभय स्थितियों का चित्रण करे। जीवनी लिखने का कार्य उस समय और कठिन हो जाता है जब लेखक और चरित्र नायक में पिता-पुत्र, पति-पत्नी या गुरु-शिष्य का सम्बन्ध होता है। हिन्दी में प्रेमचन्द की एक जीवनी उनकी पत्नी शिवरानी देवी ने 'प्रेमचन्द घर में' नाम से लिखी है। दूसरी, उनके पुत्र अमृतराय ने 'कलम का सिपाही' (1964 ई.) नाम से लिखी है। दोनों ही उत्कृष्ट कृतियां हैं। अमृतराय का प्रयत्न शलाध्य है। उन्होंने हिन्दी-जीवनी-साहित्य को ऊँचा उठाया है। शिवरानी देवी ने प्रेमचन्द को परिवार के सन्दर्भ में देखा और अमृतराय ने युग-जीवन के सन्दर्भ में। इधर इसी कोटि का एक प्रयत्न डॉ. भगवती प्रसाद सिंह ने कविराज गोपीनाथ की जीवन 'मनीषी की लोक-यात्रा' प्रस्तुत करके किया है। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि अब हिन्दी के लेखक अपना दायित्व समझने लगे हैं और जीवन-साहित्य लेखन में भी उनका स्तर क्रमश: ऊँचा होता जा रहा है।"

'यात्रावृत्त' संक्षिप्त विकास क्रम

परिभाषा

यात्रा वृत्त साहित्य के सम्बन्ध में श्री बालकृष्ण राव ने लिखा है, "जब साहित्यकार अपनी यात्रा के संस्मरणों को इस प्रकार लिपिबद्ध करे कि यात्रा किये गये स्थल का मूर्तरूप पाठक के समक्ष आ जाये तो उस साहित्यिक एवं कलात्मक यात्रा-विवरण को 'यात्रा-साहित्य' कहते हैं।"

वर्गीकरण

विशेषताओं के आधार पर यात्रा-वृत्तों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है- (1) सूचना और विवरण प्रधान, (2) प्रकृति-संसर्ग जनित उल्लास प्रधान, (3) जीवन-दर्शन प्रधान, (4) संस्मरण-शैली प्रधान, (5) व्यक्तिगत पत्रात्मक-शैली प्रधान, (6) परिचयात्मकता प्रधान।

यात्रा-साहित्य का विकास

इसके विकास को दो वर्गों में विभाजित करके देखा जा सकता है- (1) भारतेन्दु युग का यात्रा-साहित्य, और (2) भारतेन्दु के बाद का यात्रा-साहित्य।

(1) **भारतेन्दु युग का यात्रा-साहित्य-** भारतेन्दु युगीन यात्रा-साहित्य के सम्बन्ध में डॉ. विश्वनाथ तिवारी लिखते हैं- "सुदूर पूर्व के देशों, द्वीपों तथा पृथ्वी के अन्य देशों में प्राप्त भारतीय धर्म और संस्कृति के चिन्हों से स्पष्ट होता है कि भारत में बहुत प्राचीनकाल से यात्राएं होती रही हैं। किन्तु अपने सम्बन्ध में मौन रहने की भारतीय प्रवृत्ति के कारण ये यात्राएं लिपिबद्ध रूप में प्राप्त नहीं होतीं। यही कारण है कि आधुनिक अर्थों में जिसे यात्रा साहित्य कहते हैं, उसका हमारे प्राचीन साहित्य में अभाव है। हिन्दी में यात्रा-साहित्य का प्रारंभिक रूप भारतेन्दु और द्विवेदी युग में विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित भ्रमण सम्बन्धी लेखों के रूप में प्राप्त होता है। 'कवि वचन सुधा' में प्रकाशित भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के 'सरयू पार की यात्रा', 'मेहदावल की यात्रा', 'लखनऊ की यात्रा', 'हरिद्वार की यात्रा' और 'बैद्यनाथ की यात्रा' शीर्षक निबन्ध इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण हैं। भारतेन्दु जी के अतिरिक्त इस युग में अन्य हिन्दी-लेखकों ने भी यात्रा विवरण लिखे और आगे चलकर हिन्दी का यात्रा-साहित्य समृद्ध हुआ। देवेन्द्र सत्यार्थी कृत 'चांद सूरज के बीरन', बालकृष्ण भट्ट कृत 'कातिकी का नहान' और प्रतापनारायण मिश्र कृत 'विलायत यात्रा' शीर्षक रचनाएं इसी कोटि की हैं।"

(2) **भारतेन्दु के बाद यात्रा-साहित्य-** भारतेन्दु के बाद यात्रा-साहित्य के सन्दर्भ में डॉ. रामचन्द्र तिवारी का कथन दृष्टव्य है- "भारतेन्दु के बाद यात्रा-वृत्तान्तों के पुस्तकाकार प्रकाशन की अखण्ड परम्परा लक्षित होती है। इन रचनाओं में पंडित दामोदर शास्त्री कृत 'मेरी पूर्व दिग्यात्रा', देवीप्रसाद खत्री कृत 'रामेश्वर यात्रा' और 'बदरिकाश्रम यात्रा', शिवप्रसाद गुप्त कृत 'पृथ्वी प्रदक्षिणा', स्वामी सत्यदेव परिब्राजक कृत 'मेरी कैलाश यात्रा' और 'मेरी जर्मन यात्रा', पं. कन्हैयालाल मिश्र कृत 'हमारी जापान यात्रा' और पं. रामनारायण मिश्र कृत 'यूरोप यात्रा में छः मास' आदि उल्लेखनीय हैं। इन यात्रा-वृतान्तों के द्वारा हिन्दी प्रदेश में निवास करने वाले विशाल मानव समुदाय के क्रमशः विकसित होते हुए मानसिक क्षितिज की सूचना मिलती है। मध्यकालीन संस्कारों से प्रभावित भारतीय पण्डित-मण्डली समुद्र पार की यात्राओं का विरोध करती रही है। इन संस्कारों से मुक्त होकर जिन विद्वानों, यायावरों और परिब्राजकों ने यूरोप तथा अन्य पाश्चात्य देशों की यात्राएं कीं वे निश्चय ही नये भारत की रचना करने वाले उदार और कर्मठ व्यक्ति थे। हिन्दी प्रदेश में शिक्षा के विकास और अखिल भारतीय स्तर पर यातायात के साधनों की वृद्धि के साथ यात्रा के प्रति लोगों का रुझान बढ़ता गया। हिन्दी के साहित्यकारों में कुछ जन्मजात सैलानी प्रवृत्ति के यायावर सामने आये। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, रामवृक्ष बेनीपुरी, यशपाल, अज्ञेय, डॉ. भगवतशरण उपाध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, नागार्जुन, भदन्त आनन्द कौशल्यायन, प्रभाकर माचवे, राजवल्लभ ओझा, अमृतराय, यशपाल जैन, काका कालेलकर, श्रीनिधि आदि अनेक साहित्यकार यात्रा-प्रेमी हैं। इन साहित्यकारों ने हिन्दी के यात्रा-साहित्य की श्रीवृद्धि की है। राहुल सांकृत्यायन कृत 'मेरी तिब्बत यात्रा' 'मेरी लद्दाख यात्रा', 'किन्नर देश में' और 'रूस में पच्चीस मास', श्री रामवृक्ष बेनीपुरी कृत 'पैरों में पंख बाँधकर' तथा 'उड़ते चलो-उड़ते चलो', यशपाल कृत 'लोहे की दीवार के दोनों ओर', अज्ञेय कृत 'अरे यायावर रहेगा याद', 'एक बूंद सहसा उछली' तथा 'किरणों की खोज में', डॉ. भगवतशरण उपाध्याय कृत 'मैंने देखा' 'वो दुनिया', 'सागर की लहरों पर' तथा 'कलकत्ता से पेकिंग' रामधारी

सिंह दिनकर कृत 'देश-विदेश', प्रभाकर माचवे कृत 'गोरी नजरों में हम', अमृतराय कृत 'सुबह के रंग', रांगेय राघव कृत 'तूफानों के बीच', यशपाल जैन कृत 'पड़ौसी देशों में', काका कालेलकर कृत 'हिमालय यात्रा', श्रीनिधि कृत 'शिवालिका की घाटियों में' आदि यात्रा-साहित्य की महत्वपूर्ण कृतियां हैं।"

नये लेखकों में मोहन राकेश कृत 'आखिरी चट्टान तक', निर्मल वर्मा कृत 'चीड़ों पर चाँदनी', डॉ. रघुवंश कृत 'हरी घाटी' और 'मृग मारीचिका के देश में', आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी कृत 'केरल की शारदीय परिक्रमा', डॉ. नगेन्द्र कृत 'तन्त्रालोक से यन्त्रालोक तक', ब्रजकिशोर नारायण कृत 'नन्दन से लन्दन', प्रभाकर द्विवेदी कृत 'पार उतरि कहं जइहौं' तथा धर्मवीर भारती लिखित 'यादें यूरोप की' आदि रचनाओं की सर्वाधिक चर्चा है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत विवेचन के आधार पर अन्त में डॉ. रामचन्द्र तिवारी के शब्दों में कह सकते हैं- "यात्रा वृत्तान्तों में देश-विदेश में प्राकृतिक दृश्यों की रमणीयता, नर-नारियों के विविध जीवन-सन्दर्भ, प्राचीन एवं नवीन सौन्दर्य-चेतना की प्रतीक कलाकृतियों की भव्यता तथा मानवीय सभ्यता के विकास के द्योतक अनके वस्तुचित्र यायावर लेखक के मानस में रूपायित होकर वैयक्तिक रागात्मक ऊष्मा से दीप्त हो जाते हैं। लेखक अपनी बिम्ब-विधायिनी कल्पना-शक्ति से उन्हें पुनः मूर्त करके पाठकों की जिज्ञासा-वृत्ति को तुष्ट कर देता है। यात्रा काल में यायावर का साहस, संघर्षशीलता, स्वच्छता, आकस्मिक रूप से आने वाले प्रतिकूल परिस्थितियों को अनुकूल बना लेने की क्षमता आदि चारित्रिक विशेषताएं उसे नायक की गरिमा प्रदान कर देती हैं। पाठक उसे प्यार करने लगता है। यायावरों की साहसिक यात्राएं मानव की जिजीविषा का उद्घाटन करती हैं। जिजीविषा हर जीवधारी की मूलभूत वृत्ति है। यात्रा-वृत्तान्तों के पढ़ने से इस वृत्ति की तुष्टि होती है इसीलिए यात्रा-साहित्य के प्रति आकर्षण बढ़ता जा रहा है। यात्रा-वृत्तान्त सामान्य वर्णनात्मक शैली के अतिरिक्त डायरी, पत्र और रिपोर्ताज शैली में भी लिखे जाते हैं। इसलिए इनमें निबन्ध, कथा, संस्मरण आदि कई गद्य रूपों का आनन्द एक साथ मिलता है। हिन्दी में यात्रा-साहित्य का भविष्य उज्जवल है।"

महत्त्वपूर्ण लघुउत्तरीय प्रश्न

प्रश्न भारतेंदु की भाषा तथा मुहावरे दानी पर में टिप्पणी लिखिए।

उत्तर- भारतेंदु की भाषा संस्कृत, उर्दू एवं अवधी मिश्रित खड़ी बोली है। उनकी भाषा में खड़ी बोली का प्रारम्भिक रूप मिलता है। भाषा में दीआसलाई, कारासीस, लंकिलाट, झगरते हैं, बल रही है, नोन, अंगा आदि अमानक शब्दों का प्रयोग हुआ है। उसमें एक तरफ उर्दू के निकम्मापन, अमीर, दलाली, मुसाहबी आदि शब्द प्रयुक्त हुए हैं तो दूसरी ओर संस्कृत के आयुष्य, वीर्य, पुष्ट, भ्रष्टाचार, बालक, वृद्ध, व्यभिचार, आग्रह आदि शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। इतना ही नहीं भाषा में अवधी तथा भोजपुरी के शब्द भी मिलते हैं। भारतेंदु ने भाषा में सहजता तथा प्रवाह लाने तथा अपनी बात को चुटीली व प्रभावशाली बनाने के लिए अनेक मुहावरों का भी प्रयोग किया है। उनकी भाषा में छाती ठंडी करना, आँख उठाकर देखना, कमर कसना, सुख का होम करना, अमीरों की मुसाहबी, कुल की लाजवंती बहू आदि मुहावरे प्रयुक्त हुए हैं।

प्रश्न भारतेन्दु हरिशचन्द्र के विचारों को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर- भारतेन्दु के सभी लेखों, नाटकों तथा कविताओं में राष्ट्र भक्ति की भावना कूट-कूट कर भरी है। प्रस्तुत निबन्ध में भी लेखक ने राष्ट्र की उन्नति पर ही चर्चा की है। उन्होंने इस निबन्ध के अंत

में यही उपदेश दिया है कि हमें विदेशी भाषा का मोह छोड़ देना चाहिए और आपसी भाई-चारे के साथ धार्मिक एकता को निभाते हुए परिश्रम और ईमानदारी से अपने देश के विकास में लगना चाहिए। लेखक ने देश की आर्थिक, तकनीकी तथा वैज्ञानिक प्रगति के लिए कुछ ठोस उपाय भी बताने का प्रयत्न किया है।

प्रश्न भारतेन्दु हरिशचन्द्र का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर- जीवन-परिचय- भारतेंदु का जन्म सन् 1907 में इतिहास प्रसिद्ध सेठ अमीरचंद अग्रवाल के वंश में काशी में हुआ। इनके पिता बाबू गोपाल चंद (उपनाम गिरधर दास) हिन्दी के एक प्रौढ़ कवि एवं नाटककार थे। बचपन में ही माता-पिता के संरक्षण से वंचित हो जाने के कारण इनकी शिक्षा-दीक्षा विधिवत न हो सकी। घर पर ही इन्होंने अंग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी की शिक्षा प्राप्त की। तेरह वर्ष की आयु में मन्नोदेवी के साथ विवाह हुआ। इसके बाद तो इनका संपूर्ण जीवन साहित्य सेवा में ही बीता। केवल 34 वर्ष की आयु में सन् 1941 में हिन्दी के इस युग-निर्माता का देहावसान हो गया।

रचनाएं- भारतेंदु जी ने सन् 1924 में हिन्दी की पहली साहित्यिक पत्रिका 'कवि वचन सुधा' प्रकाशित की और 1925 में 'विधा सुन्दर' नाटक की रचना की। इनके रचित और अनुदित नाटकों की संख्या 18 है।

भाषा शैली- भारतेन्दु जी ने हिन्दी के स्वरूप को निश्चित किया। उन्होंने राजा शिव प्रसाद एवं राजा लक्ष्मण सिंह की शैलियों के बीच का मार्ग ग्रहण किया। उन्होंने ब्रजभाषा के अतिरिक्त खड़ी बोली और उर्दू में भी कुछ रचनाएं कीं। इन्होंने उर्दू के प्रचलित शब्दों के साथ संस्कृत के तद्भव और तत्सम शब्दों को भी अपनी भाषा में स्थान दिया। आगे चलकर यही शैली मान्य हुई।

साहित्य में स्थान- हिन्दी साहित्य के निर्माण और प्रचार में इन्होंने अपना तन-मन-धन अर्पण कर दिया था। इनकी सेवाओं के उपलक्ष्य में हिन्दी के समाचार पत्रों ने इन्हें 'भारतेंदु' की उपाधि दी थी। हिन्दी साहित्य में भारतेंदु जी का स्थान कवि, नाटककार एवं आधुनिक युग के प्रवर्तक के रूप में सदैव बना रहेगा।

प्रश्न भारतेन्दु की कृतियों का परिचय दीजिए।

उत्तर- भारतेन्दु की साहित्य के सभी क्षेत्रों में पैठ थी। उसका कोई भी कोना उनसे अछूता नहीं था। उनकी रचनाएं इस तरह हैं-

(i) **नाटक-** भारतेन्दुजी ने निम्न अनुवादित, रूपांतरित तथा मौलिक नाटक लिखे हैं-

अनुवादित- रत्नावली नाटिका, पाखंड-विडम्बना, धनंजय विजय, कर्पूर मंजरी, मुद्रा राक्षस, दुर्लभ बंधु।

रूपांतरित- विद्या-सुंदर, सत्य हरिश्चंद्र।

मौलिक- (अ) **नाटक-** प्रेमजोगिनी, चंद्रावली, भारत-जननी, नील देवी, सती प्रताप।

(ब) **प्रहसन-** वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति, विषस्य विषमौषधम्, अंधेर नगरी।

(ii) **काव्य-** भारतेन्दु प्राचीन तथा नवीन कड़ियों को जोड़ने वाली कड़ी थे। उनका काव्य दो रूपों में विभाजित किया जा सकता है-1. परंपरागत तथा 2. नवीनोन्मुख।

भारतेन्दुजी की सभी रचनाएं काव्यात्मक हैं, लेकिन कुछ रचनाएं विशुद्ध काव्य के अंतर्गत हैं। भारतेन्दु का जीवन प्रेममय था। उन्होंने अपनी रचनाओं में प्रेम को प्रधानता दी। प्रेम फुलवारी, प्रेम योगिनी, प्रेम प्रलाप, प्रेम माधुरी, प्रेम वाटिका, प्रेम तरंग आदि पुस्तकें प्रेम पर ही आधारित हैं। होली, मधुमुकुल, वर्षा-विनोद आदि में भगवान की विविध क्रीड़ाओं का वर्णन है।

(iii) **धर्म-ग्रंथ-** भारतेन्दुजी वैष्णव भक्त थे। आप प्रेम-लक्षणा-भक्ति में विश्वास करते थे। आपकी सभी रचनाओं में भक्ति का यह रूप मिलता है। भक्ति-भावना से प्रेरित होकर भारतेन्दु ने भक्त-सर्वस्व, वैष्णव सर्वस्व, वल्लभीय सर्वस्व, तदीय सर्वस्व, भक्ति-सूत्र वैजयंती, सर्वोत्तम स्रोत भाषा, उत्तरार्द्ध, भक्तमाल, उत्सवावली, वैशाख माहात्म्य तथा अष्टादश पुराणोपक्रमणिका की रचना की।

(iv) **राज-भक्ति संबंधी ग्रंथ-** भारतेन्दु ने राजभक्तिपूर्ण रचनाएं भी कीं। उनकी राजभक्ति अंध राजभक्ति न होकर स्वस्थ आधार पर थी। ब्रिटिश राज्य की भलाई और बुराई दोनों पर उनकी दृष्टि थी। अंग्रेजी राज्य में भारत की जो उन्नति हुई, उसके वे प्रशंसक रहे, पर अंग्रेजों के शोषण के विरुद्ध उन्होंने सदैव क्षोभ ही व्यक्त किया। ड्यूक के सम्मान में समर्पित कृति सुमनांजलि राजभक्ति से पूर्ण है। इसके अलावा भारत वीरत्व, विजय-वल्लरी, रिपुनाष्टक, विजयति विजय वैजयंती आदि कृतियां भी इसी प्रकार की हैं।

(v) **इतिहास-** भारतेन्दुजी इतिहास के प्रेमी थे। उन्होंने सर्वप्रथम खोजपूर्ण इतिहास लिखने का प्रयत्न किया। आपके इतिहास संबंधी कितने ही लेख एशियाटिक सोसायटी के जर्नल में प्रकाशित हुए। भारत के गौरव पूर्ण अतीत को चित्रित करने के साथ-साथ आपने मुहम्मद साहब तथा फ्रांस, जर्मनी आदि के ऐतिहासिक पुरुषों का भी वर्णन किया है। काश्मीर कुसुम, बूंदी का राजवंश, अग्रवालों की उत्पत्ति, क्षत्रियों की उत्पत्ति तथा उदयपुरोदय आदि आपके खोजपूर्ण ऐतिहासिक ग्रंथ हैं।

(vi) **कथा साहित्य-** रामलीला, हमीर हठ, राजसिंह, एक कहानी, कुछ आप-बीती, जगनी सुलोचन आदि।

(vii) **निबंध-** भारतेन्दु हिन्दी के प्रथम निबंधकार कहे जा सकते हैं-उन्होंने धार्मिक साहित्यिक, राजनीतिक इत्यादि अनेक विषयों पर निबंध लिखे हैं। उन्होंने समाचार पत्र और पत्रिकाओं के माध्यम से देश सेवा की। उन्होंने कविवचन सुधा नामक मासिक पत्र निकाला। फिर हरिश्चंद्र मैगजीन या हरिश्चंद्र चंद्रिका, बालवोधिरी का प्रकाशन किया।

प्रश्न. प्रतापनारायण मिश्र का जीवन परिचय दीजिये।

उत्तर- प्रतापनारायण मिश्र का जन्म 1856 ई. में उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के बैजे गाँव में हुआ था। इन्होंने स्वाध्याय से ही हिन्दी, संस्कृत, फारसी तथा अंग्रेजी आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। इन्होंने कई वर्षों तक कालाकांकर से निकलने वाले **'हिन्दोस्तान'** नामक समाचारपत्र के सहकारी संपादक के रूप में कार्य किया। 1884 ई. में इन्होंने अपना साहित्यिक पत्र 'ब्राह्मण' निकाला। दस वर्ष तक वे इसका संपादन तथा प्रकाशन करते रहे।

प्रश्न. प्रतापनारायण मिश्र का साहित्यिक परिचय दीजिये।

उत्तर- मिश्र जी भारतेन्दु मंडल के प्रसिद्ध निबंधकार थे। इन्होंने दाँत, भौं, द, त, ट, धोखा जैसे साधारण विषयों पर भी रोचक निबंध लिखे हैं। इनके निबंधों में स्थान-स्थान पर हास्य-व्यंग्य का पुट मिलता है। ये मुहावरों का भी खूब प्रयोग करते हैं। इनकी भाषा में संस्कृत, फारसी तथा स्थानीय भाषा के शब्द प्राय: मिलते हैं। इनके निबंधों की अपनी विशिष्ट शैली है।

मिश्र जी ने निबंधों के अलावा कविता तथा नाटक भी लिखे हैं। इनके विषय ऐतिहासिक तथा सामाजिक हैं। कविताओं का वर्ण्य-विषय प्राय: समाज-सुधार है। इनकी रचनाओं से समाज-सुधार तथा राष्ट्रीयता की भावना स्पष्ट झलकती है।

रचनाएँ- मिश्र जी के निबंधों का संग्रह **'प्रताप नारायण मिश्र ग्रंथावली'** नाम से नागरी-प्रचारिणी सभा, वाराणसी द्वारा प्रकाशित हुआ है।

उनके प्रसिद्ध नाटक हैं- 1. हठी हमीर, 2. भारत दुर्दशा, 3. कलिकौतुक।

प्रश्न बाल मुकुंद का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर- गुप्तजी का जन्म संवत् 1922 एवं मृत्यु 1974 में हुई। बचपन में ही इनके पिता की मृत्यु हो गई। वे उर्दू तथा फारसी के अच्छे ज्ञाता थे। उन्हें मुंशी मुहम्मद खां का संरक्षण मिला। उन्होंने दिल्ली में 1943 में मीडिल परीक्षा पास की, वे विद्यार्थी जीवन में ही उर्दू में निबंध लिखने लगे जो पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होते थे। उन्होंने चुनारे अखबार का संपादन किया। उन्होंने बहुत कुशलतापूर्वक संपादन कार्य किया। फिर वे इलाहाबाद में कोहेनूर पत्र के संपादक बने। पद्य रचना भी की। इसमें उनका उपनाम शाद था। वे उर्दू, हिन्दी, फारसी मुड़िया भाषा के ज्ञाता थे। वे मिस्टर हिन्दी के नाम से लेख लिखते थे। उनकी पहली पद्य रचना का नाम भैंस का स्वर्ग था। वे अपने काल के प्रधान साहित्यकार थे। उन्होंने भारतेन्दु युग एवं द्विवेदी युग में रचनाएं लिखीं। उनके विचारों में धार्मिकता थी। वे उदार, विनोदप्रिय, कोमल, अध्ययनशील और परिश्रमी थे। उनके मौलिक ग्रंथ हैं-स्फुटकविता, शिवशंभु का चिट्ठा, हिन्दी भाषा, चिट्ठे और खत हैं। उनके समय में गद्य शैलियों का विकास हो रहा था। उन्होंने विभिन्न शैलियों को अपनाया।

प्रश्न बाल मुकुंद गुप्तजी की साहित्यिक प्रतिभा का परिचय दीजिए।

उत्तर- निबंधकार और आलोचक के अतिरिक्त गुप्तजी कवि भी थे। वह खड़ी बोली और ब्रज-भाषा दोनों में ही कविता करते थे तथा अच्छी कविता करते थे, पर ब्रज भाषा की ओर उनका विशेष झुकाव था। उनकी कविता में हास्य और व्यंग्य का पुट अधिक रहता था। स्फुट कविता में उनकी जो कविताएं संग्रहित हैं, उनसे उनकी कवित्व-शक्ति का पूरा परिचय मिल जाता है। फिर भी वह अपनी कविता को तुकबंदी ही कहते थे। जोगीड़ा, जातीय गीत, बसंतोत्सव, सरसैयद का बुढ़ापा उनकी प्रसिद्ध कविताएं हैं। उनके इन पद्यों में सौंदर्य की सृष्टि कम, समय के चित्रण का प्रयास अधिक है।

भाषा की दृष्टि से गुप्तजी भारतेन्दु काल के संभ्रात लेखकों में से थे। उनकी भाषा में अपनत्व था। आरंभ में वह उर्दू के लेखक थे। अत: हिन्दी साहित्य में प्रवेश करने पर उनकी भाषा में फारसी एवं अरबी भाषाओं के शब्दों को स्थान मिलना स्वाभाविक ही था। यही कारण है कि हम उनकी प्रारंभिक रचनाओं की भाषाओं में तबीयत, तूल, अरज, ख्याल, महफिल, खैर, ओफ आदि शब्दों का प्रयोग पाते हैं, लेकिन ऐसे शब्दों के प्रयोग में उन्होंने बड़े संयम से काम लिया है। उन्होंने इन शब्दों का प्रयोग इतने कलात्मक ढंग से किया है कि उनकी भाषा में सौंदर्य और निखार आ गया है। उन्होंने विदेशी शब्दों को अपनी रचनाओं में बहुत कम स्थान दिया है। अंग्रेजी भाषा के शब्दों का भी प्रयोग उन्होंने आवश्यकता के अनुसार ही किया है। छोटे लाट, गवर्नमेंट, डायरेक्टर आदि शब्द ही उनकी रचनाओं में मिलते हैं। संस्कृत के तत्सम शब्दों का उनकी रचनाओं में अवश्य बाहुल्य है, पर उनके प्रयोग से भाषा बोझिल नहीं है। वह शब्दाडंबर शून्य भाषा लिखते हैं। सीधे-सादे शब्दों में उतार-चढ़ाव से वह अपनी भाषा में इतनी रंगत और चमत्कार उत्पन्न कर देते थे कि उसे पढ़ने वाले मुग्ध हो जाते थे। कथन शैली मार्मिक थी।

उन्होंने तीन शैलियों का प्रयोग किया-

1. **परिचयात्मक शैली-** इसमें छोटे-छोटे वाक्य होते थे। भाषा मुहावरेदार एवं व्यंग्यात्मक होती थी।

2. **आलोचनात्मक शैली-** इसमें गंभीर विषयों की आलोचना करते थे। परिचयात्मक शैली से इस शैली की भाषा भिन्न होती थी। ऐसे लेखों में वह संस्कृत के तत्सम शब्दों का ही अधिकांश प्रयोग करते थे। भाषा की अनस्थिरता शीर्षक उनका लेख इसी शैली में है।

3. **व्यंग्यात्मक शैली-** इस शैली पर गुप्तजी का विशेष अधिकार था। वह अपने किसी भी विषय को इस शैली में सफलतापूर्वक ढाल सकते थे। इसलिए उनकी परिचयात्मक तथा आलोचनात्मक शैलियों में हम इस शैली का संयोग पाते हैं। इस शैली में उनके निबंध शिव शंभु

के चिट्ठे में संग्रहित हैं। इन व्यंग्यात्मक निबंधों के अध्ययन से गुप्तजी की प्रबंध-पटुता और विनोदप्रियता का यथेष्ट परिचय मिल जाता है। इनमें उनका व्यक्तित्व समा गया है तथा वह इतने स्पष्ट और खरे रूप में हमारे सामने आते हैं कि उन्हें पहचानने में देर नहीं लगती।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुप्तजी केवल निबंधकार ही नहीं, अपने समय के शैलीकार भी थे। वह छोटे-छोटे वाक्यों में गंभीर, लेकिन सरस शब्दों का प्रयोग करते थे। उर्दू की चुलबुलाहट और रंगीनी उनकी शैली की दूसरी विशेषता थी। मुहावरों के प्रयोग में वह अपने समय के सभी लेखकों से आगे थे। इन विशेषताओं के साथ हास्य और व्यंग्य का संयोग करने में उनकी कला निखर उठी थी।

प्रश्न अध्यापक पूर्णसिंह का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर- इनका जन्म 1881 ई. में तथा निधन 1931 में हुआ था। अध्यापक होने के कारण इन्हें अध्यापक पूर्णसिंह भी कहा जाता है। हिन्दी में इनके निबंधों की संख्या कुल मिलाकर छः के लगभग है। इनमें 'आचरण की सभ्यता', 'मजदूरी और प्रेम' एवं 'सच्ची वीरता' जैसे निबंध हिन्दी की उपलब्धि हैं। बाद में ये केवल अंग्रेजी में लिखने लगे थे। डॉ. देवीशंकर अवस्थी ने इनके निबंधों को 'निर्बन्ध निबंध' कहा है तथा कुछ लोगों ने भाव के उच्छलन के कारण इनके निबंधों को भावात्मक निबंधों की श्रेणी में रख दिया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इनकी गद्य शैली की लाक्षणिक भंगिमा की तरफ विशेष रूप से लक्ष्य किया है। किन्तु एक अच्छे निबंधकार की रचना में ये सारी विशेषताएं अपने आप प्रतिफलित होने लगती हैं। पूर्णसिंह की मानवीय दृष्टि तथा आध्यात्मिक दृष्टि बहुत व्यापक है।

प्रश्न पूर्णसिंह के निबंधों की विशेषताएं लिखिए।

उत्तर- पूर्णसिंह के निबंधों में भावावेग और कल्पना है। इसके चलते आत्म-व्यंजकता की भी झलक दिखाई पड़ती है। इनके निबंधों में द्विवेदी युग की नैतिकता तथा उपदेशात्मकता ही है, किन्तु स्वच्छंदता की प्रवृत्ति भी है। उन्होंने भौतिकता की अपेक्षा आध्यात्मिकता को महत्वपूर्ण माना है। उनमें तर्क के स्थान पर भावावेग है। एक क्षीण-सा विचार उनकी भावात्मक शैली में घुल-मिलकर स्वच्छंदतावादी काल्पनिकता तथा आध्यात्मिक मूल्यों के प्रवाह में दूर तक फैल जाता है। उनके निबंधों में भाषा की कसावट के स्थान पर लाक्षणिक भंगिमा है। मानते थे कि जगत् में जो कुछ भी हो रहा है, वह सिर्फ आचरण के विकास के लिए ही हो रहा है। सभी धर्म और सभी संप्रदाय आचरण वाले पुरुषों के लिए ही होते हैं। उनका अध्यात्म ईश्वर के झमेले में नहीं भटकता। वे आत्मा की पवित्रता और संस्कारित आचरण की बात करते हैं। टालस्टाय और रास्किन की तरह सरदार पूर्णसिंह भी मशीनी दबाव में पिसते हुए इंसान की आत्मा और उसके आचरण को बचाने हेतु दर्द से बेचैन थे। इस बेचैनी या छटपटाहट का ही परिणाम है कि भावावेग प्रत्येक निबंध में एक केन्द्रीय विचार है। आरंभिक पंक्तियों में यह विचार एक तरंग की तरह उठता है। फिर भाव के विस्तार में लहर-दर-लहर उठता हुआ, इस छोर से उस छोर तक चला जाता है। थोड़ा गहराई में प्रवेश करने पर सौंदर्य की हिलोर और कल्पना की उमड़ती हुई वही भावरें दिखाई पड़ेंगी जो स्वच्छंदतावादी काव्य का आकर्षण बनीं।

प्रश्न अज्ञेय के शिल्प-सौंदर्य पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर- अज्ञेय प्रयोगवादी कवि हैं। वह अपनी बात कहने के लिए सहज, सरल तथा देशज शब्दों के माध्यम से आम आदमी के जीवन से बिम्ब उठाते हैं। 'चाँदनी जी लो' कविता में कवि ने बहुत ही सरलता से शरद ऋतु का वर्णन किया है। अपने अनुभवों को प्रेयसी को भी अनुभव करने के लिए प्रेरित किया है। यहाँ देशज शब्दों का प्रयोग बाहुल्य दृष्टव्य है। वह नए-नए शब्द गढ़कर बिम्ब उभारने में सिद्धहस्त हैं।

अंजुरी, सिहरी, सरसी, ताकते, सीठी, ढिग आदि देशज शब्दों के माध्यम से कवि ने काव्य-सौंदर्य में वृद्धि की है। सहजता में चमत्कार उनकी अन्यतम विशेषता है।

तुकान्त तथा छन्दबद्ध रूप में प्रस्तुत कविता में प्रवाह तथा लयात्मकता सहज ही आ गई है।

'तुम कदाचित न भी जानो' कविता में वसन्त ऋतु के बीतने पर विभोर होते लोगों की मान्यता का सहज ढंग से खंडन करते हुए वर्तमान का स्वागत करने की बात की है। बीतने को विदा कह-कर प्रकृति बिम्बों के माध्यम से वैशिष्ट्य लाने का प्रयास किया है।

क्लान्त, गुंजार, मधुमास, प्रगल्भ, विभोर आदि शब्दों के माध्यम से कोमलता का प्रभाव पैदा किया है। इन पंक्तियों ने सहज ही लयात्मकता के वाक-सौन्दर्य में श्रीवृद्धि की है।

प्रश्न अज्ञेय प्रयोगवादी कवि क्यों कहलाये?

उत्तर- अज्ञेय ने अन्य छायावादी कवियों की भाँति अपनी कविता में प्रकृति का चित्रण किया है, पर यहाँ प्रकृति छायावादी कवियों से भिन्न है। इनकी कविताएं प्रयोगवादी हैं। वे प्रयोगवाद के जनक थे। प्रयोगवादी कविताओं के बारे में अज्ञेय का मानना था कि प्रयोग की मूल प्रवृत्ति परम्परागत काव्य शक्तियों से आगे बढ़कर नई राहों की तलाश करना है तथा व्यक्ति की अनुभूति को समष्टि तक पूर्ण रूप से पहुँचाना है। 'चांदनी की लौ' कविता में अज्ञेय की इस मान्यता की झलक स्पष्ट रूप से मिलती है। वे अपने अनुभवों को दूसरों के साथ बाँटने का प्रयास करते हैं। 'तुम कदाचित न जानो' कविता में भी वे परम्परागत ढंग से हटकर देखने तथा सोचने पर मजबूर करते हैं।

इस तरह अज्ञेय को प्रयोगवादी कवि कहा जाता है।

प्रश्न यशपाल की उपन्यास कला की विशेषताएं लिखिए।

उत्तर- यशपाल जी समाजवादी विचारधारा के प्रतिनिधि रचनाकार हैं। आपकी दृष्टि में 'कला' कला के लिए न होकर जीवन के लिए है। यशपाल जी का विश्वास है कि व्यक्ति के निर्माण में परिस्थितियों का विशेष योगदान रहता है। आप प्रगतिशील दृष्टिकोण के समर्थक हैं। यशपालजी ने समाज के नग्न यथार्थ को यथातथ्य रूप में चित्रित करने का प्रयास किया है। आपकी रचनाओं में असंयमित तथा अमर्यादित चित्रण प्राप्त होता है।

कथावस्तु- यशपाल के उपन्यासों का गठन अपूर्व है। कहानी के आरंभ, विकास तथा अंत में कलात्मकता रहती है। इनकी छोटी-छोटी कहानियों में रेखाचित्र का सा सौंदर्य होता है।

चरित्र-चित्रण- यशपाल जी के पात्र यथार्थवादी हैं। आज की सामाजिक समस्याओं को उनके माध्यम से यशपाल के सामने रखा है। सभी पात्रों की अपनी समस्याएं हैं। समस्याओं का संबंध पात्र के निजी व्यक्तित्व से इतना नहीं जितना सामाजिक परिस्थितियों से है। अत: आपके पात्र अपने से संघर्ष नहीं करते हैं, समाज से भी संघर्ष करते हैं।

कथोपकथन- यशपालजी के कथोपकथन बड़े स्वाभाविक तथा नाटकीय होते हैं। वे घटनाओं को आगे बढ़ाने के साथ ही पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी सहायक होते हैं।

भाषा-शैली- भाषा-शैली में निजत्व तथा व्यक्तित्व निहित है। यशपाल जी के कहने का ढंग अपना है। साधारणत: बोलचाल के शब्दों तथा बीच-बीच में अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। यत्र-तत्र उर्दू के शब्दों का भी प्रयोग मिल जाता है।

उद्देश्य- यशपाल की उपन्यासों का प्रमुख उद्देश्य आर्थिक स्थिति का विवेचन, वर्ग चेतना की अभिव्यक्ति तथा भौतिक मान्यताओं की व्याख्या करना रहा है।

प्रश्न यशपाल की कहानियों पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर- यशपाल ने लगभग तीन सौ कहानियां लिखी हैं। उनके डेढ़ दर्जन कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इनमें पिंजरे की उड़ान, वो दुनिया, ज्ञानदान, अभिषप्त, तर्क का तूफान, फूलों का कुर्ता, तुमने क्यों कहा कि मैं सुंदर हूं, भूख के तीन दिन आदि उल्लेखनीय हैं। इनकी कहानियों को चार शीर्षकों में विभक्त किया गया है-अर्थ विषयक, सैक्स विषयक, धार्मिक अंधविश्वास तथा रूढ़ मान्यताओं की व्यंजक तथा कला और साहित्य विषयक। अर्थ विषयक कहानियों में-दुख का भार, कर्मफल, संन्यासी, अभिशप्त, चार आने, परदा एवं पराया सुख उल्लेखनीय हैं। इनमें निम्न वर्ग की दयनीय स्थिति, आर्थिक दासता एवं शोषण विरोधी विचारधारा मुखर है। सैक्य या काम विषयक कहानियों में ज्ञानदान, तीसरी चिंता, दूसरी नाक, धर्मयुद्ध, धर्मरक्षा, ओ भैरवी, निर्वासिता आदि प्रमुख हैं। इनमें काम संबंधी व्यवहारों और विकृतियों को उभारने के साथ किसी न किसी सामाजिक या धार्मिक विसंगति पर चोट हुई है। इस वर्ग की कहानियों में यशपाल का आध्यात्मिक प्रेम के प्रति आक्रोश व्यक्त हुआ है। तीसरे वर्ग की कहानियों में पाप का कीचड़, मजहब, विश्वास की बात, तूफान का दैत्य, परलोक, भगवान किसके, स्थायी नशा आदि प्रमुख हैं। इनमें कथित धर्म की कटु आलोचना, अंधविश्वासों की भर्त्सना तथा पाखंड का विरोध करते हैं। इनकी प्राय: सभी कहानियां जनधर्मी कहानियां हैं। इनमें अधिसंख्य जनता का दु:ख-दर्द, यातना और संघर्ष चेतना विस्तार से व्यक्त हुई है।

प्रश्न फणीश्वरनाथ 'रेणु' का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर- जीवन परिचय- फणीश्वरनाथ 'रेणु' का जन्म बिहार के पूर्णिमा जिले के औराही हिंगना नामक गांव में सन् 1921 में हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा बिहार में ही हुई। 'रेणु' ने 1942 ई. के 'भारत छोड़ो' स्वाधीनता आन्दोलन में भी सक्रिय भूमिका निभाई। 1940 ई. में नेपाल के राजशाही विरोधी आन्दोलन में भी सक्रिय रूप से भाग लिया। वे प्रगतिशील विचारधारा के पक्षधर थे। 1953 ई. में वे साहित्य-सृजन के क्षेत्र में आए और उन्होंने कहानी, उपन्यास और निबंध आदि विविध साहित्यिक विधाओं में मौलिक रचनाएँ प्रस्तुत कीं। जीवन के अंतिम दिनों में वे पुन: सक्रिय राजनीति से जुड़े। 11 अप्रैल, 1977 ई. को उनका निधन हो गया।

साहित्यिक विशेषताएँ-'रेणु' हिन्दी के प्रथम आँचलिक कथाकार हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में ग्राम-अंचल विशेषताओं को प्रमुखता से स्थान दिया। सत्य तो यह है कि उनकी कहानियों की कथावस्तु अंचल विशेष से ली गई हैं तथा वातावरण-निर्माण के लिए स्थानीय दृश्यों, पात्रों की भाषा आदि को भी अंचल के अनुरूप रखा है। अपनी गहन मानवीय संवेदना के कारण वे अभावग्रस्त ग्रामीण जनता के दु:ख तथा अंधविश्वास कीपीड़ा को स्वयं भोगते से प्रतीत होते हैं। उनकी कहानियों में यह विश्वास और आस्था भी है। कहीं-कहीं उन्होंने कुछ घटना-संदर्भों को इस तरह प्रस्तुत किया है कि वे घटनाएँ हमें आँखों के सामने घटित हुई सी लगती हैं। वे ग्रामीण प्रदेश की बुराइयों में भी अच्छाई खोजने की चेष्ठा करते थे।

रचनाएँ- रेणु के कहानी संग्रहों में ठुमरी, अगिनखोर, आदिम रात्रि की महक प्रसिद्ध हैं। 'तीसरी कसम उर्फ मारे गए गुलफाम' कहानी पर फिल्म भी बन चुकी है। मैला आँचल और परती परिकथा उनके उल्लेखनीय उपन्यास हैं।

भाषा शैली-'रेणु' ने कहानियों में ठेठ ग्रामीण अंचल के शब्दों को अपनी भाषा में प्रयोग किया है। उनकी भाषा साधारण बोलचाल की घरेलू भाषा है। उन्होंने यथास्थान मुहावरे व लोकोक्तियों का भी अपनी भाषा में प्रयोग किया है।

प्रश्न भीष्म साहनी का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर- भीष्म साहनी का जन्म सन् 1931 में हुआ। उन्होंने अंग्रेजी में एम.ए. किया। वे दिल्ली में साहित्य गोष्ठियों में जाने लगे, वे कोमल मृदुभाषी तथा मितभाषी हैं। उन्होंने अनेक यात्राएं की

तथा अपने लेखन द्वारा अनेक पुरस्कार प्राप्त किये। कुछ इस प्रकार हैं-साहित्य अकादमी पुरस्कार, प्रेमचंद पुरस्कार, लोटस पुरस्कार, हिन्दी उर्दू साहित्य पुरस्कार इत्यादि उनके कई उपन्यास दूरदर्शन पर प्रसारित हुए। उनमें तमस तथा बसंती प्रमुख हैं। उन्होंने कई कहानियां एवं उपन्यास लिखे। उनके कहानी संग्रहों में भाग्य रेखा, पहला पाठ, भटकती राख, पटरियां इत्यादि प्रमुख हैं। उपन्यासों में तमस, बसंती, मायादास की माड़ी, कुंती आदि प्रमुख हैं। इनमें प्रथम तीन उपन्यास पुरस्कृत हुए हैं। उनमें नाटकों में हानूश, कबीरा खड़ा बाजार में इत्यादि प्रमुख हैं। उन्होंने संपादन का कार्य भी किया है। इसके अलावा जीवनी, निबंध, बाल साहित्य भी लिखा है।

प्रश्न भीष्म साहनी की साहित्यिक विशेषताएं लिखिए।

उत्तर- भीष्म साहनी उपन्यास तथा कहानी के क्षेत्र में प्रमुख स्थान रखते हैं। उनके उपन्यासों में तमस-बसंती इत्यादि प्रमुख हैं। उन्होंने कई कहानियों की रचना की है। विभाजन पर आधारित कई लेखकों ने उपन्यास तथा कहानियां लिखी हैं। तमस भीष्म साहनी का इसी पर आधारित उपन्यास है एवं अमृतसर आ गया है इसी क्रम की एक कड़ी है।

विषयवस्तु- उन्होंने समाज, सत्य घटनाओं पर आधारित कहानी लिखी है। विभाजन के आधार पर बसंती जैसे उपन्यास लिखे हैं। समाज की समस्याओं, वर्गों पर उपन्यास लिखे हैं।

पात्र एवं चरित्र चित्रण- उनके उपन्यासों में सामान्य जीवन के पात्र, शरणार्थी, व्यापारी, किसान, मजदूर, मिल मालिक, राजनीतिज्ञ इत्यादि सभी हैं। उनका चरित्र, अत्यंत व्यापक एवं उनकी स्थिति के अनुसार है। वे धूर्त, चालाक, पंडित व्यापारी सभी हैं तथा उनका चित्रण घटनानुसार होता रहता है।

भीष्म साहनी ने सशक्त भाषा का प्रयोग किया है-कहीं कहीं मुहावरों इत्यादि का प्रयोग भी एवं अमिधा, लक्षणा तथा व्यंजन तीनों शब्द शक्तियों का प्रयोग किया है। कहानी में निम्नलिखित शैलियों का प्रयोग किया है- (1) विवरणात्मक या वर्णनात्मक शैली, (2) भावात्मक शैली, (3) व्यंग्यात्मक शैली, (4) चित्रात्मक शैली।

उनकी भाषा सरल खड़ी बोली है जो पात्रों तथा वातावरण के अनुकूल है। उनमें तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी सभी तरह के शब्दों का प्रयोग है। अवसर के अनुकूल वह भावात्मक एवं व्यंग्यात्मक हो जाती है।

मनोरंजकता एवं समस्याएं- कहानी की भाषा, वर्णन विषय वस्तु, संवाद एवं पात्रों की प्रतिक्रिया के कारण बहुत रोचक बन गयी है। यथार्थ का चित्रण अत्यंत मार्मिक ढंग से किया गया-यात्रियों की हलचल, उनका भय, दो संप्रदाय के लोगों की मनोवृत्ति का परिचायक विभाजन से उत्पन्न समस्याओं को प्रकट किया गया है-अप्रत्यक्ष रूप से कई समस्याओं की हम कल्पना कर लेते हैं।

देशकाल वातावरण- उनके साहित्य में संयुक्त भारत एवं पाकिस्तान के क्षेत्र की कई कहानी हैं तथा वह विभाजन की घोषणा के बाद की कहानी है जिसका काल हम सन् 1946-47 का मान सकते हैं। कहानी में होने वाली कठिनाइयां, यात्रियों की समस्या एवं दंगे के कारण उत्पन्न स्थिति के वातावरण का निर्माण अत्यंत कुशलता पूर्वक किया गया है। लगता है हम स्वयं यात्रा कर रहे हैं तथा उसकी कठिनाइयों को भोग रहे हैं। उस समय के वातावरण का अत्यंत मार्मिक चित्रण है।

संवाद- कहानी में कई संवाद हैं जिनकी भाषा पात्रों के अनुकूल है। वे लंबे नहीं हैं, हाँ, उनके हास्य, व्यंग्य, भय-आक्रोश सभी को अत्यंत सहजता तथा सबलता से व्यक्त किया है। संवादों में मार्मिकता एवं गांभीर्य है। प्रसंग के अनुकूल ही संवाद है।

उद्देश्य- उनके उपन्यासों के उद्देश्य विभाजन के बाद ही विभीषिकाओं एवं रेल यात्रा में होने वाली घटनाओं का प्रकाशन है। लेखक लोगों के बदहवासीपन और वहशीपन को उजागर करना चाहता है।

प्रश्न अमरकांत का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर- आधुनिक कहानीकारों में अमरकांत का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। उनकी तकनीक कई नवीन एवं आकर्षक है। उनकी कहानी की विशेषताएं इस तरह हैं-

1. उन्होंने विषयवस्तु का प्रतिपादन अत्यंत सहजता से किया है। उनका विषय सामान्य जनमानस से संबंधित है। उनमें यथार्थता है, पर अति यथार्थता नहीं है। उन्होंने जीवन की कुरूपता को सहज रूप से स्पष्ट भाषा में व्यक्त किया है।

2. पात्र एवं चरित्र चित्रण की दृष्टि से उनके पात्र सामान्य जीवन पात्र हैं। वे दीन हीन, रईस, साधारण, उच्च श्रेणी सभी प्रकार के हैं तथा अपनी स्थिति के अनुसार उनका चित्रण है। घटनाक्रम के अनुसार उनका चरित्र चित्रण होता है।

संवाद- उनके संवाद सुस्त, पैने तथा परिस्थिति के अनुसार हैं। उनकी स्पष्टता, सरलता एवं मन को झकझोर देने वाली प्रवृत्ति है। वे छोटे-छोटे एवं मार्मिक हैं।

वातावरण- वातावरण की दृष्टि से भी वे पूर्ण सफल है। इसमें मध्यवर्गीय घर की दयनीय स्थिति का चित्रण किया गया है। इस चित्रण के अनुरूप ही उस घर का वातावरण है। वातावरण का चित्रण ही घर की स्थिति का निरूपण करने में पूर्ण समर्थ है एवं साथ ही इस तथ्य को भी द्योतित करने में समर्थ है कि अत्यंत विषम परिस्थितियों में भी मध्यवर्गीय व्यक्ति अपने अस्तित्व बनाये रखने की आकांक्षा से ओतप्रोत है।

अमरकांत की भाषा- भाषा सरल तथा सपाट है। सहजता उसका स्वाभाविक गुण है। भाषा कथानक के अनुकूल भी है। वह सरल, सरस तथा प्रवाहपूर्ण है। इनकी भाषा-शैली को एक बानगी लीजिए-'दो रोटियां', कटोरा भर दाल, चने की तली तरकारी।

उद्देश्य- मध्यमवर्गीय परिवार की आर्थिक स्थिति का उद्घाटन करना उनकी कहानी का प्रतिपाद्य प्रतीत होता है। मध्यमवर्गीय आज किना कष्टकाकीर्ण है। यह कहानी इसका ज्वलंत प्रमाण है। मुंशी चंद्रिका प्रसाद अधेड़ आयु में नौकरी से अलग कर दिये गये हैं, फलत: उनका परिवार भूख की ज्वाला में टूट रहा है। वे स्वयं भूख के थपेड़ों से आहत होकर टूट गये हैं।

प्रश्न अमृतराय द्वारा लिखित निबंध कलम का सिपाही का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उत्तर- प्रसिद्ध निबंधकार श्री अमृतराय द्वारा रचित निबंध 'कलम का सिपाही' एक प्रेरणादायक निबंध रचना है। इसमें निबंधकार ने मुंशी प्रेमचंद के महान् जीवन-चरित्र की प्रेरणादायक रूप में प्रस्तुत किया है।

कलम का सिपाही निबंध का सारांश- मुंशी प्रेमचंद की नौकरी की आवश्यकतानुसार गांव से बहुत दूर जाना पड़ता था, लेकिन गांव लौटने पर वे सबसे मिलते-जुलते थे। इस प्रकार के मिलने-जुलने वाले उनसे कोई न कोई संबंध अवश्य बनाए हुए थे। मुंशीजी के घर के सामने दो पत्थर की बेंचें थीं। जिन पर वे बैठते और उनके मिलने-जुलने वहाँ आ जाते थे। सबके हाल-चाल से वे अवगत हो जाते थे। इन मिलने-जुलने वालों में उनके अतिशय निकट किसान ही थे, क्योंकि उनमें इंसानियत थी, जिसके भूखे मुंशी थे। इसलिए उनकी अपने अदालती मित्रों से नहीं पटती थी।

मुंशी प्रेस से कोई लाभ न देखकर उसे इसलिए नहीं बंद कर पाते थे कि इसके कामगारों की रोटी छिन जाएगी और हंस बंद हो जाएगा। दस बजे सबके जाने के बाद मुंशीजी प्रेस से पैसे की बचत करते हुए सधे हुए देहाती रूप में घर पहुँचते थे। दूसरे दिन वे फिर प्रेस में आकर उसी

तल्लीनता से जुट जाते थे। सब कुछ वे एक-एक करके एक साथ ही निपटाने से नहीं थकते थे। एक दिन प्रेस में भूतपूर्व प्रिंसिपल कैलाशनाथजी अभिनंदन-पत्र छपवाने के लिए आये, क्योंकि उस समय सभी प्रेस बंद थे। उन्होंने मुंशी से बनारस के सभी प्रेसों के बंद होने से उत्पन्न हुई अपनी कठिनाई को बतलाने के साथ अपनी आवश्यकता को भी स्पष्ट किया। मुंशीजी ने उस कठिन परिस्थिति में भी उस आगंतुक का वह काम एक-दूसरे कंपोजिटर से पूरा करवा दिया।

शहर में रहने पर भी मुंशी गर्मियों की छुट्टियों के बाद बेनिया बाग में किराये के मकान में रहते थे। उनका बड़ा लड़का क्वींस कॉलेज के बारहवीं में और छोटा लड़का दयानंद स्कूल की सातवीं में था। मुंशीजी घर लौटते समय अकसर पैदल ही चौक से दालमंडी की नारियल गली होते हुए सुंघनी साहू की दुकान पर आते जहाँ प्रसादजी कुछ साहित्यिक मित्रों के साथ दिख पड़ते थे। वहाँ वे कभी कुछ समय बैठकर दो-चार पान के बीड़े और खुशबूदार जाफरानी तंबाकू को गले उतारते हुए दो-एक चुटकुले अवश्य सुनाते तब रास्ता लेते थे। इनके देहाती हुलिए पर जब कभी प्रसाद ने आपत्ति की तो उसके उत्तर में मुंशी ने जोर का ठहाका लगाया था।

बेनिया बाग में सुबह घूमने-टहलने के समय प्रसादजी, गहमरीजी और बेढबजी वहाँ आ जाते थे। दुनियाभर की बातें होतीं। बीच-बीच में मुंशीजी का ठहाका दूर तक सुनाई देता था। प्रसादजी की सांस्कृतिक परंपरा थी, तो मुंशीजी की फारसी। इसी तरह उन दोनों के सोच-विचार और क्रियाकलाप भी बिल्कुल भिन्न थे, फिर भी दोनों की खूब पटती थी। प्रसाद के मुंशी अनन्य प्रेमी मित्र थे। इसलिए 3 अक्टूबर 1932 को मुंशीजी ने प्रसाद के उपन्यास 'कंकाल' के अच्छा न लगने पर बनारसीदास की पत्र द्वारा शिकायत की थी। उन्होंने उन्हें फिर झुंझलाकर 14 नवंबर, 1932 को पत्र द्वारा कंकाल के ही विषय में अपनी पसंद का दावा करते हुए उन पर काशाघात किया था।

प्रश्न #. 'कलम का सिपाही' प्रतिपाद्य की विशेषता लिखिए।

उत्तर- श्री अमृतराय एक सिद्धहस्त, प्रतिष्ठित और उत्कृष्ट निबन्धकार हैं। उन्होंने अनेक व्यक्तिगत और विषयगत निबन्धों की संरचना की है। इस निबन्ध में निबन्धकार ने 'कलम का सिपाही' अर्थात् मुंशी प्रेमचन्द के जीवन-संघर्षों के सुन्दर, उत्कृष्ट और प्रेरणादायक अंशों को प्रस्तुत किया है। इस निबन्ध की कुछ विशेषताएं इस प्रकार हैं-

प्रतिपाद्य की विशेषता- प्रत्येक रचना का अवश्य प्रतिपाद्य होता है। प्रस्तुत निबन्ध 'कलम का सिपाही' का भी प्रतिपाद्य है। इसके द्वारा निबन्धकार ने मुंशी प्रेमचन्द के उन जीवन-अंशों को प्रस्तुत किया है, जो अत्यधिक संघर्षशील साहित्य-सेवी और साहित्यानेषी हैं। मुंशी प्रेमचन्द के विषय में निबन्धकार ने यह सुस्पष्ट कर दिया है कि उनका सम्पूर्ण जीवन संघर्षमय और जीवन्त था। वे न केवल आत्म-निर्माण की प्रक्रिया में सक्रिय और अटूट भाव से जुड़े हुए थे, बल्कि वे परोपकार, सहृदय, संवेदनशील और सहानुभूतिपरक भावों में भी मग्न और रचे बसे थे। मुंशी प्रेमचन्द जी किसी भी स्थिति परिस्थिति में अपना हंसमुख और विनोदी प्रकृति का परित्याग नहीं करते थे, इस तथ्य को भी निबन्धकार ने उजागर किया है। यही नहीं वे साहित्य की समीक्षा और उसके महत्त्व के बड़े ही कायल थे। इसलिए उन्होंने महा उपन्यासकार जयशंकर प्रसाद के उपन्यास 'कंकाल' की न केवल प्रशंसा ही की थी अपितु उसके कटु आलोचक बनारसीदास पर कशाघात भी किया था। इस प्रकार यह सम्पूर्ण निबन्ध प्रेरणादायक तथा प्रतिपाद्य में यथेष्ट और परिपूर्ण है।

प्रश्न #. प्रेमचन्द जी का जीवन किस प्रकार से अभावग्रस्त था?

उत्तर- मुंशी प्रेमचन्द के अद्भुत व्यक्तित्व का चित्रण- इस निबन्ध में मुंशी प्रेमचन्द के अद्भुत व्यक्तित्व का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इस निबन्ध के आरम्भ से अन्त तक मुंशी प्रेमचन्द के निरन्तर संघर्षमय जीवन की सुन्दर झाँकी प्रस्तुत की गई है, यह झाँकी न केवल साहित्य-संघर्षों की

है, बल्कि सामाजिक और राष्ट्रीय-संघर्षों तक भी है। उनके सामाजिक व्यक्तित्व का एक आकर्षक दृष्टव्य है-

"नौकरी के सिलसिले में मुंशी को काफी लम्बे-लम्बे अर्से के लिए बाहर रह जाना पड़ता था। गाँव आकर सबसे घुल-मिल जाने में उन्हें एक दिन का भी समय न लगता था। पिरथी, पदारथ, सुन्दर, गरीब, छांगुर-बाँगुर, रुप्पन, खेला-वन (जिसमें वे किसी के भैया थे, किसी के चच्चा, किसी के बब्बा। जैसे उनके लिए तड़पते रहे हों और देखते ही दौड़कर अंकबार में ले लेना चाहते हों)।"

निबन्धकार ने मुंशी प्रेमचन्द के अभावग्रस्त जीवन की भी अत्यन्त स्वाभाविक झाँकी प्रस्तुत की है, एक उदाहरण देखिए-

"दस बजता और वहाँ दूसरे लोग अपना-अपना बस्ता सम्भालकर कचहरी की राह लेते, वहाँ मुंशी जी भी किरमिच या चमड़े के बंददार जूतों पर अपनी घर की धुली धोती और देहाती बरेठे हाथ का धुला मटमैला-सा कुर्ता पहनकर छाता लेकर शहर चल पड़ते। दो फर्लांग बड़वा पर इक्का मिल जाता तो एक सवारी का चवन्नी लगता और जो कभी दो मील दूर पिसनं हरिया तक पैदल रास्ता नापना पड़ जाता तो दो ही आने में काम चल जाता।"

प्रश्न #. कलम का सिपाही में प्रेमचन्द के व्यक्तित्व के कौन-कौनसे रूप प्रकट हुए हैं?

उत्तर- निबन्धकार श्री अमृतराय ने मुंशी प्रेमचन्द के उस अद्‌भुत व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला है, जो उनके व्यस्त जीवन से सम्बद्ध घटनाएं हैं। उनकी व्यस्तता की एक झाँकी देखिए-

"प्रेस पहुँचकर दिन उसी सब शोरगुल में कट जाता। मशीन धड़धड़ा रही है। बड़े से हाल के कोने में मुंशी जी तमाम प्रूफों और कागजातों से घिरे हुए अपनी मेज पर बैठे हैं। ग्राहक भी आ रहे हैं, मिलने वाले भी आ रहे हैं, कंपोजीटर और मशीनमैन भी आ रहे हैं। मुंशी जी सर उठाकर उनसे बात कर लेते हैं और फिर उन्हीं प्रूफों में डूब जाते हैं।

लेखक ने मुंशी प्रेमचन्द के अद्‌भुत संवेदनशील और सहानुभूतिपूर्ण व्यक्तित्व को स्पष्ट करने के लिए एक-दो रोचक घटनाओं के भी उल्लेख किए हैं। इससे व्यक्तित्व का यह पक्ष बहुत उभरकर सामने आ जाता है। मुंशी प्रेमचन्द जी के निराले और मस्तमौले साहित्यिक व्यक्तित्व को लेखक ने कुशलता से एक अलग पहचान के रूप में प्रस्तुत किया है। एक उदाहरण देखिए-

"बेनिया बाग आकर मुंशी जी का एक पुराना नियम फिर शुरू हुआ, रोज सबेरे घूमना। लखनऊ में कुछ सध नहीं पाता था, यहाँ पार्क में ही घर था अब उम्र भी तेजी से ढल रही थी, सबेरे घूमे-घामे बगैर काम चलता नजर नहीं आता था। उधर से प्रसाद जी, गहमरी जी और कभी-कभी बेढब जी आ जाते और फिर चारों जन घण्टे भर बेनिया बाग के चक्कर लगाते। देश-विदेश, साहित्य-समाज की दुनियाभर की बातें होतीं, बीच-बीच में मुंशी जी का ठहाका सौ-दो सौ गज दूर से भी गूँजता हुआ सुनाई पड़ता।"

मुंशी प्रेमचन्द अत्यधिक स्पष्टवादी और पक्षपातहीन व्यक्ति थे। वे पूरे गुणग्राही और साहित्य के अद्‌भुत विशेषज्ञ मात्र थे। इस सम्बन्ध में एक उदाहरण उस समय का है जब उन्होंने 8 अक्टूबर, 1932 के अपने पत्र में बनारसीदास जी को अंग्रेजी में लिखा था-

"आपको 'कंकाल' अच्छा नहीं लगा। मुझे खेद है। मैं उदार साहित्यिक रुचि का आदमी हूँ। आलोचना-बुद्धि मुझ में कम है। 'कंकाल' में मुझे सच्चा आनन्द मिला और मैं किताब से भी ज्यादा उस आदमी का प्रशंसक हूँ। वह बहुत खुले हुए, साफगो आदमी हैं।"

उसी साल नवम्बर में उन्होंने पुनः कुछ उन्हें झुँझलाकर लिखा-

'कंकाल' आपको अच्छा नहीं लगा, मुझे लगता है, बात खत्म हुई। प्रसाद जी बड़े प्यारे आदमी है। अब मुझे उनको पास से देखने का मौका मिला है तो मैं पाता हूँ कि साल भर पहले मैं उनके बारे में जो कुछ सोचता था, वह उसके बिल्कुल उल्टे हैं। गलतफहमियाँ एक-दूसरे के करीब आने से ही दूर हो सकती हैं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि निबन्धकार श्री अमृत ने 'कलम का सिपाही' नामक विवेचनात्मक निबन्ध के माध्यम से महाकथाकार मुंशी प्रेमचन्द के वैविध्यपूर्ण और अद्‌भुत व्यक्तित्व का अधिक आकर्षक और रोचक चित्र प्रस्तुत किया है। यह चित्र निश्चय ही अपने आप में परिपूर्ण होने के परिणामस्वरूप प्रेरणादायक रूप में प्रस्तुत हुआ है।

प्रश्न #. भाषा की दृष्टि से 'कलम का सिपाही' पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर- भाषा- भाषा का महत्त्व तभी होता है जब वह सुस्पष्ट होने के साथ-साथ साभिप्राययुक्त हो। प्रस्तुत निबन्ध की भाषागत यही प्रमुख विशेषता दृष्टिगोचर होती है। इसका एक उदाहरण देखिए-

"गाँव से बाहर खेतों को जाने का रास्ता मुंशी जी के घर से बगल से गया है और अक्सर सुबह-शाम वहीं पत्थर की बैंच पर बैठे-बैठे मुंशी जी की मुलाकात सबसे हो जाती है। जो उधर से गुजरता वही थोड़ी देर के लिए बैठ जाता, कुछ अपनी कहता कुछ उनकी सुनता। किसकी कहाँ कितनी जोत है, किसके यहाँ कब कौन बीमार है, किसके यहाँ भाइयों से अनबन चल रही है, सब कुछ उनको पता रहता है और जो पता न रहता उसकी पूछताछ करके अपनी जानकारी अप-टू-डेट कर लेते हैं।

उपर्युक्त उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि लेखक को उर्दू शब्दावली न केवल प्रिय है अपितु उस पर उसका पूर्ण अधिकार भी है।

इस निबन्ध की भूमिगत दूसरी विशेषता है-तद्‌भव शब्दावली के सफल और सार्थक प्रयोग। इससे किसी प्रकार से भावाभिव्यंजना और सोद्देश्यता पर कोई आघात नहीं पहुँचता है। एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है-

"नौकरी के सिलसिले में मुंशी जी को काफी लम्बे-लम्बे अर्सों के लिए बाहर जाना पड़ता पर गाँव आकर सबसे घुल-मिल जाने में उन्हें एक दिन का भी समय न लगता। पिरथी-पदारथ, सुन्दर, गरीब, छांगुर, बाँगुर, रूप्पन-खेलावन (जिसमें वह किसी के भैया थे, किसी के बच्चा किसी के बब्बा) सब कुछ उनको पता रहता और जो पता न रहता उसकी पूछताछ करके अपनी जानकारी अप-टू-डेट कर लेते।"

निबन्धकार ने प्रस्तुत निबन्ध में भाषा-प्रयोग में विशेष सतर्कता का निर्वाह किया है। इसके लिए उसने न केवल भाव, अर्थ और प्रसंग का ध्यान रखा है, अपितु उपयुक्तता और सटीकता पर भी निरन्तर ध्यान दिया। एक उदाहरण इस अभिप्राय से दिया जा रहा है-

"यानी जिन-दिनों वह देहात में होते। शहर में रहने पर गर्मी की छुट्टियाँ खत्म होते ही मुंशी जी बेनियाबाग में मकान लेकर रहने लगते थे, बड़े लड़के ने क्वींस कॉलेज में साइंस लेकर इण्टर में नाम लिख लिया था और छोटे से दयानन्द स्कूल में सातवीं दर्जे में-सवेरे चाहे इक्का भ कर लें, मगर शाम को यह खर्च उन्हें बिल्कुल फिजूल मालूम होता और वह चौक से कुछ फल-फलेरी, पान-वान लेकर पोटली को छाते के एक सिरे पर लटकाकर और छाती लाठी की तरह कन्धे पर रखकर दालमण्डी से (जहाँ तक बने-ठने बाँके छैलों का आवागमन शुरू हो गया होता) राजा दरवाजा, कबूतर बाजार होते हुए घर पहुँच जाते।"

प्रश्न #. कलम का सिपाही में कौन-कौन सी शैलियों का प्रयोग हुआ है? उदाहरण देकर लिखिए।

उत्तर- शैली भाषा का दिग्दर्शन करती है। वह भाषा को गति प्रदान करती है। इसलिए यह कहना किसी प्रकार से अनुचित नहीं होगा कि भाषा की सफलता-असफलता अथवा उसका प्रभाव-निष्प्रभाव आदि शैली-प्रयोग पर ही निर्भर होता है। जब हम अमृतराय द्वारा लिखित निबन्ध 'कलम का सिपाही' निबन्ध को शैली-समीक्षा के प्रयास में लाते हैं तो हम देखते हैं कि इसमें अनेक प्रकार की शैलियों के प्रयोग हुए हैं। इन सब में प्रमुख रूप से वर्णनात्मक शैली है। इसमें विषय का सुन्दर और उपयुक्त विवेचन हुआ है। एक उदाहरण देखिए-

"किसान भोंदू नहीं होता, बहुत घाघ होता है (वर्ना जिये कैसे?) लेकिन उसके भीतर इंसानियत और हमदर्दी का जो एक स्तर है, वह भी उनमें छिपा न था। शायद यही वजह थी कि उनके मित्र कुर्मियों में थे, कायस्थों में वैसा मित्र एक न था। सभी मुख्तार अहलमद पटवारी थे। अदालती लोग जिनकी जेहनियत में अदालत घुस गई थी, उनसे मुंशी जी की चूल न बैठती, हाँ किस्सागो होने के नाते उनके पेशेवर दिलचस्पी और राह-रस्म उनमें भी थी लेकिन वह और चीज है।"

इस निबन्ध में शैली संवाद शैली भी है, इसके द्वारा लेखक ने मुंशी प्रेमचन्द की मानवीयता, सुहृदयता और सहजता जैसे उदार गुणों का समुचित उल्लेख किया है; जैस-"अन्दर झाँका, एक साधारण-सा व्यक्ति खादी का मैला-कुर्ता-धोती पहने बैठा था। मैंने पूछा-क्यों साहब, प्रेस बन्द है?

-जी, प्रेस तो बन्द है, पर कहिए, आपको क्या काम है?

नौजवान ने अपना काम और उसकी अहमियत बतलाई है तो वह आदमी ठठाकर हँस पड़ा और बोला-आपको बिल्कुल ऐन वक्त पर काम सूझा। पहले क्यों नहीं आए?

नौजवान ने अपनी सफाई दी-मुझे तो कल ही यह काम सौंपा गया है और तभी से दौड़-भाग कर रहा हूँ पर न तो कल ही किसी प्रेस ने इस काम को लेना मंजूर किया और न आज ही।

तो इसमें घबराने की ऐसी कौन-सी बात है। हाथ से ही लिखकर तैयार कर लीजिए।

पर जब इसमें नौजवान की दिल जमाई नहीं हुई तो उस आदमी ने कहा-अच्छा, घबराओ नहीं देखता हूँ पास ही में एक कम्पोजीटर रहता है, अगर वह आज काम के लिए तैयार हो जाए तो क्या कहना। तुम थोड़ी देर यहाँ बैठो।"

इस निबन्ध की शैलीगत तीसरी विशेषता यह है कि यह भावात्मक है। इसे लेखक ने मुंशी प्रेमचन्द के स्पष्टवादी स्वाभाविक व्यक्तित्व को प्रभावशाली रूप में दिग्दर्शित कराने के ही उद्देश्य से लिखा है। इसका एक उदाहरण इस तरह है-

"कंकाल आपको अच्छा नहीं लगा है, मुझे लगता है, बात खत्म हुई। प्रसाद जी बड़े प्यारे आदमी हैं अब मुझे उनको पास से देखने का मौका मिला है तो मैं पाता हूँ कि साल भर पहले मैं उनके बारे में जो कुछ सोचता था, वह उससे बिल्कुल उल्टे हैं।"

प्रश्न उत्तरयोगी अरविंद ने पांडिचेरी (दक्षिण) को ही अपनी साधना थमल का केन्द्र क्यों चुना?

उत्तर- श्री उत्तरयोगी अरविंद जी ने योग मार्ग में जाति धर्म, उत्तर दक्षिण रंग रूप, तथा पूर्व निर्मित सीमाओं को अपने योग में स्वीकार नहीं किया। वरन् पांडिचेरी को साधना केन्द्र बनाने का जिस मूल उद्देश्य का उन्होंने उल्लेख किया है-उनकी यह हार्दिक इच्छा थी कि उनकी साधना जो सामूहिक रूप से प्रथ्वी जागृति के साथ-साथ चेतना जगत को संकल्पित है। उसका क्षेत्र भी इसलिए ऐसा होना चाहिए जहाँ पृथ्वी ज्ञान मय प्रकाश उदीप्त होता रहे एवं तमस का कम से कम बाहुल्य हो।

तथा अरविंद जी के चुनाव में पांडिचेरी ही ऐसा परिक्षेत्र था। क्योंकि यह भूमि, तपस्वियों की पावन भूमि है यहाँ पर प्रसिद्ध कुंभज (अगस्त) ऋषिकी तप:स्थली ज्ञान स्थली है इसी का विचार कर अरविंद जी ने अपनी साधना स्थली का केन्द्र पांडिचेरी को चुना है।

प्रश्न #. क्या भूलूँ क्या याद करूँ में श्री बच्चन ने क्या विषय रखा है?

उत्तर- 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ नामक स्फुट ग्रन्थ में लेखक हरिवंशराय बच्चन ने अपनी आत्मकथा लिखकर यह स्मरण करने का प्रयास किया है कि दीर्घ जीवन में अनेक घटनाएं घट चुकी हैं, उनको स्मृति पटल पर किस प्रकार स्थायित्व प्रदान किया जा सकता है? उन्होंने उन स्मृतियों को सर्वप्रथम स्मरण किया जो उस समय बचपन से लेकर अब तक कायस्थ जाति के गुण-दोषों के सम्बन्ध में लोगों की सामान्य चर्चा का विषय थीं।

प्रश्न #. क्या भूलूँ क्या याद करूँ में श्री बच्चन ने 'मनसा' की क्या कहानी बताई है?

उत्तर- बच्चन ने अपने पूर्वजों से सुनी हुई अपनी पैतृक गाथाओं में मनसा नामक छठवें पूर्वज की एक गाथा निम्न प्रकार है-मनसा कायस्थ परिवार के व्यक्ति अमोढ़ा प्रतापगढ़ जिले में बाबू वही नामक ग्राम में ढाई सौ वर्ष पूर्व निवास करते थे। मनसा निर्धन, निसन्तान और बहुत दु:खी दम्पत्ति थे। किसी ने उनकी यह स्थिति देखकर तिलहट नामक ग्राम के रामानन्द सम्प्रदाय के सन्त से मिलने के लिए कहा। मनसा को सन्त ने एक बटलोई, एक थाली एवं गिलास के साथ तीन रुपया लेकर विदा किया कि जब तक ये वस्तुएं तुम्हारे पास रहेंगी तब तक तुम्हारे एवं तुम्हारे वंशजों की सदैव उन्नति होती रहेगी। उन सन्त की अनुकंपा से उन तीनों वस्तुओं की सुरक्षा से आज तक के इतिहास में हमारे परिवार में सम्पन्नता एवं समृद्धि का ह्रास नहीं हुआ। शनै:-शनै: सम्पत्ति बढ़ती चली गई। उपर्युक्त तीनों वस्तुएं तीन भाइयों में विभाजित कर दी गईं। मकान भी तीन भाग बड़ा घर, मंझला घर एवं छोटा घर के नाम से तीनों भाइयों में बाँट दिया गया। तिलहर के एक गुरु महाराज ने मनसा को तीन पुत्रों का वरदान दिया था जो सत्य सिद्ध हुआ था। मनसा की छठवीं पीढ़ी में लेखक के पिता और खानदानी चाचाओं की पीढ़ी आती है। लेखक के पिता छठवीं पीढ़ी के मंझले घर में निवास करते थे। आश्चर्य की बात यह है कि सातवीं पीढ़ी में उनके वंश में सात पुत्र थे-जगन्नाथ के पुत्र शिवप्रसाद और मेरे पिता प्रमापनारायण के दो पुत्र, मेरे छोटे भाई शालिग्राम और मेरा नाम आता है। लेखक का कथन है-"क्या कभी सुभीते में बैठकर, सुधियों की इस रील को इच्छानुसार, इच्छित गति से सीधा उल्टा चला कर, जिए हुए को फिर जीकर नहीं, जिए हुए को फिर जीना असम्भव भी है, जिए हुए को अधिक व्यापकता से, अधिक गम्भीरता से, अधिक सघनता से, अर्थात् कला में, सृजन में जीकर इन रूप रंगों, ध्वनियों, घटनाओं, भावनाओं में से कुछ को पकड़ा जा सकता है? वही प्रयास यह लेखन है।"

प्रश्न #. बच्चन जी का परिवार 'अमोड़ा के पाण्डेय' किस प्रकार कहलाया?

उत्तर- बच्चन जी अपनी स्मृति पटल में स्मरण करते हुए कहते हैं कि उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले के अल्मोड़ा नामक ग्राम में पाण्डे उपजाति में एक वयोनिष्ठ ब्राह्मण था। उसकी पुत्री अत्यन्त सुन्दर थी। ब्राह्मण परिवार अत्यन्त निर्धन था। तत्कालीन डोम जाति के राजा ने ब्राह्मण पुत्री को अपनी पत्नी बना कर रखने की इच्छा व्यक्त की किन्तु ब्राह्मण ने उसकी इच्छा की उपेक्षा कर दी। डोम राजा ने ब्राह्मण के सम्पूर्ण परिवार को पकड़वा कर जेल में बन्द कर दिया। ब्राह्मण पुत्री ने जेल के कष्टों से परिवार को दु:खी देखकर राजा से कहलवाया कि मैं विवाह के लिए तैयार हूँ किन्तु शादी से पूर्व श्री राम के दर्शन को जाना चाहती हूँ। राजा ने उसकी इस इच्छा पूर्ति के लिए मुक्त कर दिया। अयोध्या में पुत्री ने जगतसिंह नामक कायस्थ को अपनी करुण कथा सुनाई। जगतसिंह ने व्यवस्था करके डोम राजा के दुर्ग पर आक्रमण कर दिया और डोम राजा के सम्पूर्ण परिवार को समाप्त करके पुत्री के परिवार को जेल से मुक्त कराया। ब्राह्मण ने जगतसिंह कायस्थ से प्रसन्न होकर कृतज्ञतावश, निर्धन स्थिति में अपना यज्ञोपवीत (जनेऊ) पहना कर उसी पुत्री को पत्नी के रूप में

स्वीकार कर लिया। उसी समय से हमारा वंश जगतसिंह के वंशज 'अमोढ़ा के पाण्डेय' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

प्रश्न #. गन्नू चाचा के विषय में लेखक ने क्या वर्णन किया है?

उत्तर- गन्नू चाचा अधिक महत्त्वाकांक्षी थे। पढ़ाई के सम्बन्ध में उन दिनों वे प्रसिद्ध थे। बलिया के डॉ. गनेश प्रसाद की ख्याति सुनकर बी.ए. में गणित विषय ले रखा था, जिसमें उन्होंने जीवन के अनेक वर्ष अनुत्तीर्ण होने में व्यतीत किए। जब भी उनके परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने का अखबार घर में आता था, पूरे घर में रोना पीटना मचता तथा चूल्हा नहीं जलता था। दिन में ट्यूशन से परिवार का पालन-पोषण तथा रात में गणित के अध्ययन ने उनका स्वास्थ्य चौपट कर दिया था। अन्ततः एक वर्ष उन्होंने बी.ए. पास कर ही लिया। इस उपलक्ष्य में गरीबी में भी एक बड़ी दावत का आयोजन किया गया। गरीबी के कारण उन्हें शराब पीने की आदत पड़ गई, जिस कारण वे स्वर्ग सिधार गए।

प्रश्न #. राष्ट्रगीत चयन पर लिखे पत्र में बच्चन जी को क्या व्यंग्य सहना पड़ा?

उत्तर- सन् 1948 की बात है कि स्वतन्त्रता के उपरान्त विधान सभा में राष्ट्रगीत चुनने की बहस चल रही थी। पण्डित द्वारिका प्रसाद मिश्र ने शायद श्री रविशंकर शुक्ल की प्रेरणा से एक नया गीत प्रस्तुत किया उसमें कुछ परिवर्तन को दृष्टिगत रखते हुए एक लेख मैंने 'संगम' पत्रिका में लिखा। उसकी कटिंग मैंने विधान सभा अध्यक्ष श्री सच्चिदानन्द सिन्हा को प्रेषित की। उसका बड़ा मनोरंजक उत्तर प्राप्त हुआ। 'जन गण मन' को मैं कैसे राष्ट्रगीत मानूँ। उसमें मेरे प्रान्त का नाम तो है। मेरा बस चले तो मैं अपने प्रान्त के गिरिधर राय की इन कुण्डलियों को राष्ट्रगीत बनाऊँ-"लाठी में गुण बहुत हैं सदा रखिए संग।" शायद उनका यह व्यंग्य था किन्तु मुझे आज भी स्मरण है।

प्रश्न #. 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर- 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' बच्चन के जीवन की विविध स्मृतियाँ हैं, जिन्हें उन्होंने अपनी कृति 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' में दुहराया है। प्रसिद्ध लोकप्रिय कवि एवं लेखक हरिवंश राय बच्चन की बहु प्रशंसित आत्मकथा हिन्दी साहित्य की एक कालजयी कृति है। यह चार खण्डों में विभक्त है। 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ', 'नीड़ का निर्माण फिर', 'बसेरे से दूर' और 'दस द्वार से सोपान तक'। यह एक सशक्त महागाथा है जो उनके जीवन एवं कविता की अन्तर धारा का वृत्तान्त ही नहीं कहती है अपितु छायावादी युग के बाद के साहित्यिक परिदृश्य का विवेचन भी प्रस्तुत करती है। निःसंदेह, यह आत्मकथा हिन्दी साहित्य के सर्वोच्च पुरस्कार 'सरस्वती सम्मान' एवं नकद तीन लाख रुपये से प्रतिष्ठित किए जा चुके हैं।

आपके विषय में डॉ. धर्मवीर भारती ने इस कृति को हिन्दी के हजार वर्षों के इतिहास में ऐसी प्रथम पुस्तक बताया, जिसमें अपने विषय में सब कुछ इतनी बेबाकी, साहसी एवं सद्भावना से कह दिया गया है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार इसमें केवल बच्चन जी का परिवार तथा उनका व्यक्तित्व ही नहीं, अपितु उनके साथ सम्पूर्ण काल और क्षेत्र भी अधिक गहरे रंगों में उभरा है। रामधारी सिंह दिनकर का कथन है-"हिन्दी प्रकाशनों में इस आत्मकथा का अत्यन्त उच्च स्थान है। डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन के मतानुसार ऐसी अभिव्यक्तियाँ नवीन पीढ़ी के लिए पाथेय बन सकेंगी, इसी में उनकी सार्थकता भी है। शिक्षा, म्युनिसिपल स्कूल, कायस्थ पाठशाला, गवर्नमेंट कॉलेज, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी और काशी विश्वविद्यालय में सम्पन्न हुई, सन् 1914 से 1952 तक वह इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के लेक्चरार भी रहे। 1952 में सम्पन्न हुई, सन् 1914 से 1952 तक वह इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के लेक्चरार भी रहे। 1952 से 1954 ई. तक इंग्लैंड में रहकर उन्होंने कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी से पी.एच.डी. की डिग्री प्राप्त की। विदेश से लौटकर एक वर्ष अपने पूर्व पद पर तथा कुछ महीने आकाशवाणी इलाहाबाद में कार्य किया। फिर सोलह वर्ष दिल्ली रहे। दस वर्ष विदेश मन्त्रालय में हिन्दी विशेषज्ञ के पद और छह वर्ष राज्य सभा के

मनोनीत सदस्य के रूप में रहे। 18 जनवरी सन् 2003 को आप इस लौकिक संसार को त्याग कर ब्रह्मलीन हो गए।"

इस आत्मकथा के लिए आपको सरस्वती सम्मान के अतिरिक्त साहित्य अकादमी पुरस्कार, सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार तथा एफ्रो-एशियन राइटर्स कान्फेंस पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है। राष्ट्रपति ने भी आपको 'पद्मभूषण' की उपाधि से अलंकृत किया तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन से साहित्य वाचस्पति की उपाधि प्रदान की। श्री सुमित्रानन्दन पंत ने उनके कवित्त व्यक्तित्व को इन पंक्तियों में प्रस्तुत किया है-

घुमड़ रहा था ऊपर गरज जगत-संघर्षण।
घुमड़ रहा था नीचे जीवन वारिधि क्रंदन।
अमृत हृदय में, गरल कंठ में, मधु अधरों में।
आए तुम वीणा घर-घर में जनमन-मादन॥

प्रश्न राहुल सांकृत्यायन का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर- जीवन-परिचय- घुमक्कड़ी प्रवृत्ति के साधक राहुल सांकृत्यायन का जन्म सन् 1893 ई. में पदहा ग्राम में हुआ था जो जिला आजमगढ़ (उ.प्र.) में है। आपने अधिकांश ज्ञान स्वाध्याय से ही प्राप्त किया है। आप कई भाषाओं के विद्वान अधिकारी थे। आपका शरीरान्त 1963 ई. में हुआ था।

रचनाएँ-आपने लगभग 150 ग्रन्थों की रचना की है। आपने कहानी, उपन्यास, इतिहास, दर्शन, लोक साहित्य तथा धर्म-शास्त्र आदि विभिन्न क्षेत्रों में अपनी लेखनी चलायी है। आपकी प्रमुख रचनाएँ निम्नांकित हैं-

1. वोल्गा से गंगा, 2. किन्नर देश में, 3. जय यौधेय, 4. सिंह सेनापति, 5. मेरी जीवन-यात्रा आदि प्रसिद्ध मौलिक कृतियाँ हैं।

साहित्य में स्थान- आप विभिन्न भारतीय भाषाओं के प्रकाण्ड पंडित हैं। आप हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक, निबन्धकार तथा आलोचक हैं। आपने यात्रा-संस्मरण तथा जीवनी-साहित्य की रचना करके इस क्षेत्र को समृद्ध किया है।

प्रश्न घुमक्कड़ शास्त्र का परिचय दीजिए।

उत्तर- जैसा कि सर्वविदित है राहुल सांकृत्यायन ने कई यात्राएं की हैं। उनकी प्रमुख यात्रा में लद्दाख, लंका, तिब्बत, यूरोप, जापान, ईरान, रूस, एशिया के दुर्गम खंड इत्यादि हैं। उन्होंने अपने अनुभव को एक पुस्तक का रूप दिया तथा उनका नाम रखा घुमक्कड़ शास्त्र। यह ग्रंथ सन् 1949 ई. में प्रकाशित हुआ। इससे धूम मच गई। इस पुस्तक में इन्होंने घुमक्कड़ धर्म यात्रा की तैयारी, यात्रा हेतु प्रमुख मुद्दे एवं तत्वों का विवेचन किया। उन्होंने दर्शाया कि यात्रा करने वाले देश की सांस्कृतिक, भौगोलिक, राजनीतिक, साहित्यिक एवं सामाजिक अवस्थाओं का आँकलन करना चाहिए। इस पुस्तक की भाषा अत्यंत सहज सरल है तथा उसकी शैली अत्यंत रोचक है। उन्होंने यात्रा संबंधी लगभग सभी पहलुओं पर विचार किया है। यह पुस्तक विचारोत्तेजक एवं ज्ञानवर्धक है।

प्रश्न माखनलाल चतुर्वेदी का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर- माखनलाल चतुर्वेदी का जन्म सन् 1889 में मध्यप्रदेश में हुआ। वे बचपन में रुग्ण रहते थे। इनका परिवार राधावल्लभी सम्प्रदाय का था। इन्हें बचपन में ही अनेक वैष्णव पद याद हो गए थे। पंद्रह वर्ष की आयु में विवाह हुआ। फिर एक विद्यालय में अध्यापक हुए। 1913 में प्रभा पत्रिका का सम्पादन किया। सन् 1918 में कृष्णार्जुन युद्ध नाटक की रचना की तथा जबलपुर से कर्मवीर प्रकाशित किया। 1921 में राजद्रोह में गिरफ्तार हुए। गणेश शंकर की गिरफ्तारी के बात

प्रताप का सम्पादन किया। 1943 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष हुए। उनके ज्वालामुखी की तरह धधकते हुए मन एवं विराट पौरुष की हुंकार उनके साहित्य में फूट पड़ी। हिमतरंगिनी को साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। इन्होंने कहानी, निबन्ध तथा कई काव्य संग्रह प्रकाशित किए। गद्य रचनाओं में कृष्णार्जुन युद्ध एवं साहित्य देवता बहुत प्रसिद्ध हुए।

प्रश्न साहित्य देवता नामक ग्रंथ पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर- साहित्य देवता माखनलाल जी के भावात्मक निबंधों का संग्रह है। यह सन् 1943 में प्रकाशित हुआ। इसमें दो तरह के निबंध हैं-1. काव्योन्मुखी या गद्यकाव्य, 2. विचार प्रधान या विवेचनात्मक।

अभिव्यक्ति में कलात्मक एवं काव्य तत्वों में साहित्यिक देवता, असहाय, आशिक, तुम आने वाले हो, श्यामधन, मुक्ति भरत जहं पानी, जनता आदि निबंध हैं तथा वैचारिक कोटि में अंगुलियों की गिनती की पीढ़ी, बैठे-बैठे का पागलपन, संवाददाता आदि निबंध हैं। इन निबंधों की भाषा अत्यंत चित्ताकर्षक, साहित्यिक एवं उच्च कोटि की है। ये निबंध हिन्दी साहित्य के अत्यंत महत्वपूर्ण दस्तावेज हैं। इनकी शैली काफी प्रौढ़, अभिव्यंजनात्मक तथा चित्रात्मक एवं बिम्बात्मक है। उनकी गद्य शैली अंतरनुकांत की है। उन्होंने नए फैशन के प्रति आक्रोश व्यक्त किया तब उनकी भाषा अत्यंत पैनी हो गई है। उन्होंने कई देशी शब्दों एवं कहावतों का प्रयोग किया। समग्र रूप से यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ है।

अति लघुउत्तरीय प्रश्न

प्रश्न चन्द्रधर शर्मा गुलेरी किन विधाओं के लिए प्रसिद्ध हैं।

उत्तर- गुलेरीजी निबन्ध एवं कहानियों के लिए प्रसिद्ध हैं।

प्रश्न गुलेरीजी की तीन कहानियों के नाम लिखिए।

उत्तर- उसने कहा था, बुद्धू का काँटा, सुखमय जीवन।

प्रश्न घुमक्कड़ शास्त्र के लेखक का नाम लिखिए।

उत्तर- घुमक्कड़ शास्त्र के लेखक का नाम राहुल सांकृत्यायन है।

प्रश्न राहुलजी किसलिए प्रसिद्ध हैं।

उत्तर- राहुलजी यात्राओं के लिए प्रसिद्ध हैं।

प्रश्न साहित्य देवता ग्रंथ के लेखक कौन हैं।

उत्तर- साहित्य देवता ग्रंथ माखनलाल चतुर्वेदी हैं।

प्रश्न साहित्य देवता में किस प्रकार की रचनाएँ हैं।

उत्तर- साहित्य देवता में निबन्ध संकलन हैं।

प्रश्न बसेरे से दूर किस विधा का रूप है।

उत्तर- बसेरे से दूर आत्मकथा है।

प्रश्न तिब्बत की सीमा पर लेखक कौन हैं।

उत्तर- तिब्बत की सीमा पर राहुल सांकृत्यायन है।

प्रश्न तिब्बत की सीमा पर कौन सी विधा है।

उत्तर- तिब्बत की सीमा पर यात्रावृत्त है।

प्रश्न सिक्का बदल गया की लेखिका कौन हैं।

उत्तर- सिक्का बदल गया की लेखिका कृष्णा सोबती हैं।

प्रश्न यशपाल का जन्म कब और कहाँ हुआ?

उत्तर- यशपाल का जन्म सन् 1903 में फिरोजपुरी छावनी में हुआ।

प्रश्न यशपाल के चार उपन्यासों के नाम लिखिए।

उत्तर- दादा कामरेड, देशद्रोही, दिव्या, झूठा सच।

प्रश्न यशपाल के तीन कहानी संग्रह बताइए।

उत्तर- ज्ञानदान, तर्क का तूफान, धर्मयुद्ध।

प्रश्न भीष्म साहनी का जन्म कब एवं कहाँ हुआ?

उत्तर- भीष्म साहनी का जन्म 1931 में रावलपिंडी में हुआ।

प्रश्न भीष्म साहनी के तीन प्रसिद्ध उपन्यासों के नाम लिखिए।

उत्तर- तमस, बसंती, मायादास की माड़ी।

प्रश्न अमरकांत किस विधा के लिए प्रसिद्ध हैं?

उत्तर- अमरकांत कहानी विधा के लिए प्रसिद्ध हैं।

प्रश्न अमरकांत की प्रसिद्ध कहानी का नाम लिखिए।

उत्तर- अमरकांत की प्रसिद्ध कहानी का नाम है महान चेहरा।

प्रश्न भारतेन्दु का जन्म कब एवं कहाँ हुआ?

उत्तर- भारतेन्दु का जन्म सन् 1907 में काशी के शिवाला मोहल्ले में हुआ।

प्रश्न भारतेन्दु का वास्तविक नाम क्या है?

उत्तर- भारतेन्दु का वास्तविक नाम हरिश्चंद्र है।

प्रश्न उनका नाम भारतेन्दु क्यों पड़ा?

उत्तर- जब अंग्रेजों ने राजा शिवप्रसाद को सितारे हिन्द की उपाधि प्रदान की तो भारतीय साहित्यकारों ने हरिश्चंद्र को भारतेन्दु की उपाधि दी।

प्रश्न भारतेन्दु ने किस प्रकार की रचना की?

उत्तर- भारतेन्दु ने निबंध, नाटक, एकांकी, काव्य, धर्मग्रंथ, कथा साहित्य इत्यादि सभी काव्य विधाओं की रचना की।

प्रश्न प्रेमचंद युग के प्रमुख कहानीकारों के नाम लिखिए।

उत्तर- चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी', जयशंकर प्रसाद, प्रेमचंद, चतुरसेन शास्त्री, सुदर्शन आदि प्रेमचंद युग के प्रमुख कहानीकार हैं।

प्रश्न हिन्दी के किन्हीं दो कहानीकारों के नाम लिखिए तथा उनकी एक-एक कहानी का नाम लिखिए।

उत्तर- हिन्दी में प्रेमचंद की 'मंत्र' एवं जयशंकर प्रसाद की 'ममता' कहानी प्रसिद्ध हैं।

प्रश्न द्विवेदी युग के दो कहानीकारों के नाम लिखिए।

उत्तर- माधव प्रसाद मिश्र तथा किशोरीलाल गोस्वामी द्विवेदी युग के प्रमुख कहानीकार हैं।

प्रश्न आधुनिक साहित्य की सबसे लोकप्रिय विधा क्या है? उसके एक लेखक का नाम लिखिए।

उत्तर- आधुनिक साहित्य की सबसे लोकप्रिय विधा कहानी है। उसके प्रसिद्ध लेखक प्रेमचंद हैं।

प्रश्न द्विवेदी युग के दो सामाजिक कहानीकारों के नाम लिखिए।

उत्तर- चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' तथा विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक', द्विवेदी युग के दो सामाजिक कहानीकार हैं।

प्रश्न हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानी एवं उसके लेखक का नाम बताइए।

उत्तर- हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानी 'उसने कहा था' है। इसकी रचना सन् 1915 ई. में चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' ने की थी।

प्रश्न हिन्दी कहानी का प्रथम विकास-काल कब से कम तक माना जाता है? उसके प्रमुख कहानीकारों के नाम लिखिए।

उत्तर- हिन्दी कहानी का प्रथम विकास काल सन् 1900 ई. से सन् 1995 ई. तक माना जाता है। इस युग के प्रमुख कहानीकार हैं-ज्वालादत्त शर्मा, सुदर्शन, विश्वंभरनाथ जिज्जा, चतुरसेन शास्त्री, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचंद और जी.पी. श्रीवास्तव।

प्रश्न हिन्दी कहानी का प्रेमचंद युग कब से कब तक माना जाता है? इस युग के प्रमुख कहानीकारों के नाम लिखिए।

उत्तर- कहानी का प्रेमचंद युग सन् 1911 ई. से सन् 1936 ई. तक माना जाता है। इस युग के प्रमुख कहानीकार निम्नलिखित हैं- 1. यशपाल, 2. अमृतलाल नागर, 3. राहुल सांकृत्यायन, 4. उपेन्द्रनाथ अश्क, 5. रांगेय राघव, 6. भगवतीचरण वर्मा, 7. चंद्रगुप्त विद्यालंकार, 8. राधाकृष्ण, 9. अमृतराय।

प्रश्न नया कहानी लेखन कब से प्रारंभ होता है? कुछ नए कहानी लेखकों के नाम लिखिए।

उत्तर- नया कहानी लेखन सन् 1950 ई. से प्रारंभ होता है। प्रमुख कहानीकार निम्नलिखित हैं- (1) भीष्म साहनी, (2) हरिशंकर परसाई, (3) गजानन माधव 'मुक्तिबोध', (4) मोहन राकेश, (5) राजेन्द्र यादव, (6) कमलेश्वर, (7) अमरकांत, (8) मार्कण्डेय, (9) फणीश्वरनाथ 'रेणु', (10) मन्नू भंडारी, (11) शेखर जोशी, (12) शिवप्रसाद, (13) शैलेश मटियानी, (14) शानी, (15) कृष्णा सोबती, (16) धर्मवीर भारती, (17) निर्मल वर्मा, (18) रामकुमार, (19) रघुवीर सहाय, (20) सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, (21) श्रीकांत वर्मा, (22) उषा प्रियंवदा आदि।

प्रश्न शुक्लजी के प्रमुख निबंध संकलन का नाम लिखें।

उत्तर- शुक्लजी के प्रमुख निबंध संकलन का नाम चिंतामणि है।

प्रश्न आचार्य रामचंद्र शुक्ल किस रूप में प्रसिद्ध हैं?

उत्तर- आचार्य रामचंद्र शुक्ल आलोचक, इतिहास लेखक एवं निबंधकार के रूप में प्रसिद्ध हैं।

प्रश्न द्विवेदीजी किन विधाओं के लिए प्रसिद्ध हैं?

उत्तर- द्विवेदीजी आलोचना, निबंध एवं उपन्यासों के लिए प्रसिद्ध हैं।

प्रश्न निराला भाई के रचनाकार का नाम लिखें।

उत्तर- निराला भाई की रचनाकार महादेवी वर्मा हैं।

प्रश्न रवीन्द्रनाथ ठाकुर के जन्म और मृत्यु के सन् लिखिए।

उत्तर- रवीन्द्रनाथ ठाकुर का जन्म सन् 1881 ई. में और मृत्यु सन् 1941 में हुई।

प्रश्न मैथिलीशरण गुप्त का जन्म एवं मृत्यु कब हुई?

उत्तर- जन्म सन् 1886 ई. में और मृत्यु सन् 1964 ई.।

प्रश्न सुभद्राकुमारी चौहान का जन्म-मृत्यु का समय लिखिए।

उत्तर- जन्म 1904 ई. मृत्यु सन् 1948 ई.

प्रश्न सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के जन्म-मृत्यु काल लिखिए।

उत्तर- जन्म सन् 1898 ई., मृत्यु सन् 1961 ई.।

प्रश्न जयशंकर प्रसाद का जन्म एवं मृत्यु का काल लिखिए।

उत्तर- जन्म सन् 1889 ई. मृत्यु सन् 1937 ई.।

प्रश्न सुमित्रानंदन पंत के जन्म-मृत्यु काल लिखिए।

उत्तर- जन्म सन् 1901 ई., मृत्यु सन् 1977 ई.।

प्रश्न सियारामशरण गुप्त के जन्म-मृत्यु काल लिखिए।

उत्तर- सन् 1895 ई., मृत्यु सन. 1963 ई.।

प्रश्न रवीन्द्र की किस पुस्तक पर नोबल पुरस्कार मिला?

उत्तर- रवीन्द्रनाथ की पुस्तक 'गीतांजलि' नोबल पुरस्कार से पुरस्कृत हुई।

प्रश्न रवीन्द्रनाथ किस भाषा के कवि थे?

उत्तर- रवीन्द्रनाथ बंगला भाषा के कवि थे।

प्रश्न मैथिलीशरण गुप्त के सबसे श्रेष्ठ ग्रंथ का नाम लिखिए।

उत्तर- मैथिलीशरण गुप्त के सबसे श्रेष्ठ ग्रंथ का नाम साकेत है।

प्रश्न मैथिलीशरण गुप्त किस नाम से प्रसिद्ध हुए?

उत्तर- मैथिलीशरण गुप्त दद्दा नाम से प्रसिद्ध हुए।

प्रश्न सुभद्राकुमारी की सबसे प्रसिद्ध रचना कौनसी है?

उत्तर- सुभद्राकुमारी की सबसे प्रसिद्ध रचना झांसी की रानी है।

प्रश्न निराला का नाम निराला क्यों पड़ा?

उत्तर- निराला का नाम निराला उनके संपादन पत्र 'मतवाला' की तुक पर पड़ा।

प्रश्न निराला का पूरा नाम क्या है?

उत्तर- निराला का पूरा नाम सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' है।

प्रश्न जयशंकर प्रसाद के प्रसिद्ध महाकाव्य का नाम लिखिए।

उत्तर- जयशंकर प्रसाद के प्रसिद्ध महाकाव्य का नाम कामायनी है।

प्रश्न सुंघनी साहू के नाम से कौन प्रसिद्ध हैं?

उत्तर- सुंघनी साहू के नाम से जयशंकर प्रसाद प्रसिद्ध थे।

प्रश्न पंत का पूरा नाम लिखिए।

उत्तर- पंत का नाम सुमित्रानंदन पंत है।

प्रश्न पंत के प्रसिद्ध ग्रंथ का नाम लिखिए।

उत्तर- पंत के प्रसिद्ध ग्रंथ का नाम लोकायतन है।

प्रश्न सियारामशरण गुप्त किस प्रसिद्ध कवि के भाई हैं?

उत्तर- सियारामशरण गुप्त मैथिलीशरण गुप्त के भाई हैं।

प्रश्न सियारामशरण गुप्त कहाँ के रहने वाले थे?

उत्तर- सियारामशरण गुप्त चिरगांव जिला झांसी के रहने वाले थे।

प्रश्न बालमुकुंद गुप्त के तीन मौलिक ग्रंथों के नाम लिखिए।

उत्तर- स्फूट कविता, शिवशंभु का चिट्ठा, हिन्दी भाषा

प्रश्न सरदार पूर्णसिंह किस विधा के लिए प्रसिद्ध हैं?

उत्तर- सरदार पूर्णसिंह निबंध विधा के लिए प्रसिद्ध हैं।

प्रश्न सरदार पूर्णसिंह के तीन प्रसिद्ध निबंधों के नाम लिखिए।

उत्तर- आचरण की सभ्यता, मजदूरी और प्रेम, सच्ची वीरता।

प्रश्न प्रतापनारायण मिश्र का जन्म कब और कहाँ हुआ?

उत्तर- मिश्र का जन्म सन् 1856 ई. में वेजेगाँव जिला उन्नाव (उ.प्र.) में हुआ था।

प्रश्न प्रतापनारायण मिश्र का उपन्यास क्या था?

उत्तर- मिश्र जी का उपन्यास 'प्रताप' एवं 'प्रतापहरि' था।

प्रश्न प्रतापनारायण मिश्र कितनी भाषाओं के विशिष्ट ज्ञाता थे?

उत्तर- मिश्र जी हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी; संस्कृत और फारसी के विशिष्ट ज्ञाता थे।

प्रश्न प्रतापनारायण मिश्र के बालकवि हृदय पर किसका प्रभाव पड़ा था?

उत्तर- मिश्र जी के बालकवि हृदय पर भारतेन्दु जी की पत्रिका 'कवि वचन सुधा' का प्रभाव पड़ा था।

प्रश्न प्रतापनारायण मिश्र की विशिष्ट विशेषता क्या थी?

उत्तर- मिश्र जी बहुत अधिक विनोदी स्वभाव के व्यक्ति थे।

प्रश्न प्रतापनारायण मिश्र को बचपन में किसके प्रति रुचि थी?

उत्तर- मिश्र जी को बचपन में 'लावनियों' पर विशेष रुचि थी।

प्रश्न दक्षिण के प्रसिद्ध योगी कौन थे?

उत्तर- दक्षिण के प्रसिद्ध योगी नगाई जप्ता थे।

प्रश्न उत्तर योगी कौन हैं जिन्होंने दक्षिण को अपनी साधना स्थली बनाया?

उत्तर- उत्तर योगी श्री अरविंद हैं जिन्होंने दक्षिण को अपनी साधना स्थली बनाया।

प्रश्न कालिदास ने किसके साथ विवाह कर लिया था?

उत्तर- कालिदास ने विदुषी राजपुत्री प्रियंगु मंजरी से विवाह कर लिया था।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्रश्न हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी है-

(अ) बंग महिला की 'दुलाई वाली'

(ब) रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय'

(स) मास्टर भगवानदीन की 'प्लेग की चुड़ैल'

(द) गिरिजादत्त वाजपेयी की 'पंडित पंडितानी'

उत्तर- *(अ)*

प्रश्न दुलाई वाली कहानी प्रकाशित हुई-

(अ) सन् 1907 ई. में *(ब) सन् 1903 ई. में*

(स) सन् 1902 ई. में *(द) सन् 1900 ई. में*

उत्तर- *(अ)*

प्रश्न प्रसाद जी की पहली कहानी का प्रकाशन हुआ-

(अ) सन् 1911 में *(ब) सन् 1910 में*

(स) सन् 1909 में *(द) सन् 1908 में* **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न गुलेरी की कालजयी कहानी उसने कहा था लिखी गई-

(अ) सन् 1915 में *(ब) सन् 1917 में*

(स) सन् 1919 में *(द) सन् 1921 में* **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न हिन्दी कहानी का मौलिक विकास हुआ-

(अ) सन् 1900 से 1915 तक *(ब) सन् 1907 से 1920 तक*

(स) सन् 1902 से 1914 तक *(द) सन् 1903 से 1912 तक* **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न हिन्दी कहानी के प्रथम उत्थान की निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ बतलाई गई हैं। सही चयन कर लिखिए-

(अ) आदर्शवादी कहानियाँ *(ब) मनोविनोद की परीक्षण मूलक कहानियाँ*

(स) साधारण जीवन के रोजमर्रा के तथ्य की कहानियाँ

(द) मनोवैज्ञानिक कहानियाँ **उत्तर-** *(अ, ब, स)*

प्रश्न हिन्दी कहानी का प्रेमचन्द युग है-

(अ) सन् 1911 से 1936 तक *(ब) सन् 1915 से 1930 तक*

(स) सन् 1910 से 1935 तक *(द) सन् 1920 से 1936 तक* **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न स्वतन्त्रता के पश्चात् प्रमुख हास्य कहानी लेखक हैं-

(अ) हरिशंकर परसाई *(ब) मोहन राकेश*

(स) राजेन्द्र यादव *(द) मन्नू भण्डारी* **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न 'गुण्डा' कहानी के आरम्भ में नन्हकू सिंह की क्या अवस्था बताई गई है?

(अ) तीस वर्ष (ब) चालीस वर्ष (स) पचास वर्ष (द) साठ वर्ष **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न 'गुण्डा' कहानी में प्रसाद ने गुण्डा गर्दी सम्प्रदाय का धर्म किसे माना है?

(अ) वीरता (ब) आतंक (स) शस्त्र प्रयोग (द) मूर्ति पूजा **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न 'गुण्डा' कहानी में नन्हकू सिंह जुए में लगने वाले अपने दाँव पर किस बाबा के वरदान होने की बात कहता है?

(अ) बाबा हजारा सिंह *(ब) बाबा कीनाराम*

(स) बाबा भोलाराम *(द) बाबा हरिराम* **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न 'गुण्डा' कहानी में नन्हकू सिंह ने अपने किस विरोधी के बेटे की बरात आगे ले जाने के लिए चुनौती दी?

(अ) सोमी सिंह *(ब) मंगल सिंह*

(स) बोधी सिंह *(द) बलवन्त सिंह* **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न 'गुण्डा' कहानी में नन्हकू किस वेश्या का गाना सुना करता था?

(अ) दुलारी (ब) गेंदा (स) पन्ना (द) जोहरा **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न 'गुण्डा' कहानी में किस वायसराय के काशी आगमन का वर्णन हुआ है?

(अ) हेस्टिंग्स (ब) कर्जन (स) डलहौजी (द) मार्क हेम **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न 'गुण्डा' कहानी में वर्णित अंतिम घटना जिसमें नन्हकू सिंह मारा जाता है, किस दिन घटित हुई थी?

(अ) 16 *अगस्त* 1881 *(ब)* 16 *अगस्त* 1981

(स) 26 *जनवरी* 1850 *(द)* 15 *अगस्त* 1857 **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न 'गुण्डा' कहानी में 16 अगस्त 1881 को राजा चेतसिंह को किसने अपने पहरे में ले लिया था?

(अ) लेफ्टिनेण्ट इस्टाकर (ब) दारोगा हिम्मत सिंह

(स) कुबरा मौलवी (द) बलवन्त सिंह **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न 'गुण्डा' कहानी में राजमाता पन्ना व राजा चेतसिंह को किस जगह बन्दी बनाये जाने का प्रयास किया गया?

(अ) रामनगर (ब) राजमहल

(स) राजमंदिर शिवालय (द) नन्हकू सिंह के घर **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न 'पूस की रात' कहानी कितने भागों अथवा खण्डों में विभक्त है?

(अ) दो *(ब)* तीन *(स)* चार *(द)* पाँच **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न 'पूस की रात' कहानी में हल्कू के कुत्ते का क्या नाम था?

(अ) कुबरा *(ब)* लबड़ा *(स)* मोती *(द)* जबरा **उत्तर-** *(द)*

प्रश्न 'पूस की रात' कहानी के आधार पर निम्न में से कौनसा कथन सत्य नहीं है?

(अ) हल्कू ने जबरा को अपनी गोद में ले लिया

(ब) हल्कू की गोदी में जबरा को स्वर्ग-सुख की अनुभूति हो रही थी

(स) हल्कू को जबरा से तनिक भी घृणा न हुई

(द) सर्दी से बचने के लिए जबरा को गोदी में लेते समय हल्कू के मन में अपनी निर्धनता के कारण दुख हुआ **उत्तर-** *(द)*

प्रश्न 'पूस की रात' कहानी में फसल के चौपट हो जाने पर हल्कू ने मुन्नी के समक्ष क्या बहाना बनाया?

(अ) उसके पेट में दर्द था (ब) वह ठंड से बेहोश था

(स) उसके आने से पहले ही फसल चौपट हो चुकी थी

(द) इनमें से कोई नहीं **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न 'पूस की रात' किस प्रकार की कहानी मानी जाती है?

(अ) यथार्थपरक (ब) आदर्शात्मक

(स) आदर्शात्मक यथार्थवादी (द) ऐतिहासिक **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' शीर्षक निबन्ध किस रचनाकार का है?

(अ) प्रसाद (ब) शुक्ल

(स) नगेन्द्र (द) विद्यानिवास मिश्र **उत्तर-** *(द)*

प्रश्न आचार्य शुक्ल के निबन्ध किस प्रकार के हैं?

(अ) विचारोत्तेजक (ब) हास-परिहास

(स) व्यंग्य (द) हृदय और बुद्धि उत्तर- (द)

प्रश्न आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का निबन्ध 'अशोक के फूल' किस शैली में लिखा गया है?

(अ) स्वगतकथन (ब) इतिहास पुराण

(स) व्यक्तिव्यंजक (द) आत्मकथात्मक उत्तर- (स)

प्रश्न 'अशोक के फूल' निबन्ध किस प्रकार का है?

(अ) ऐतिहासिक (ब) साहित्यिक (स) शोधपरक (द) सांस्कृतिक उत्तर- (द)

प्रश्न 'अशोक के फूल' निबन्ध में किस प्रकार का बोध है?

(अ) सांस्कृतिक (ब) वर्तमान (स) राजनीतिक (द) संघर्ष उत्तर- (अ)

प्रश्न बालकृष्ण भट्ट के अधिकतर निबन्ध किस पत्रिका में प्रकाशित हुए हैं?

(अ) हंस (ब) हिन्दी प्रदीप (स) समालोचना (द) आजकल उत्तर- (स)

प्रश्न आचार्य रामचन्द्र शुक्ल किस युग के कीर्ति स्तम्भ है?

(अ) भारतेन्दु युग (ब) छायावाद युग

(स) द्विवेदी युग (द) प्रगतिवाद युग उत्तर- (स)

प्रश्न 'अशोक के फूल' नामक निबन्ध संग्रह के रचनाकार हैं-

(अ) रामचन्द्र शुक्ल (ब) गुलाब राय

(स) कुबेरनाथ राय (द) हजारी प्रसाद द्विवेदी उत्तर- (द)

प्रश्न प्रसाद का 'गुण्डा' कहानी में भारत के इतिहास के किस युग का चित्रण है?

(अ) सल्तनत युग (ब) मुगल शासकों का युग

(स) ईस्ट इंडिया कम्पनी का समय (द) विक्टोरिया का शासन उत्तर- (स)

प्रश्न 'निबन्ध गद्य की कसौटी है' यह किसका विचार है?

(अ) हजारी प्रसाद द्विवेदी (ब) रामचन्द्र शुक्ल

(स) विद्यानिवास मिश्र (द) कुबेरनाथ राय उत्तर- (ब)

प्रश्न 'मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है' यह किस आलोचक की उक्ति है?

(अ) रामविलास शर्मा (ब) गजानन माधव मुक्तिबोध

(स) हजारी प्रसाद द्विवेदी (द) नामवर सिंह उत्तर- (स)

प्रश्न पण्डित बालकृष्ण भट्ट किस युग के निबन्धकार हैं?

(अ) भारतेन्दु युग (ब) द्विवेदी युग

(स) शुक्ल युग (द) शुक्लोत्तर युग उत्तर- (अ)

प्रश्न हरिशंकर परसाई किस वर्ग के निबन्धकार हैं?

(अ) हास्य-व्यंग्य निबन्धकार (ब) प्रगतिवादी निबन्धकार

(स) ललित निबन्धकार (द) भावात्मक निबन्धकार उत्तर- (अ)

प्रश्न 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादक थे-

(अ) बालकृष्ण भट्ट (ब) महावीर प्रसाद द्विवेदी

(स) प्रतापनारायण मिश्र (द) रामचन्द्र शुक्ल उत्तर- (ब)

प्रश्न इनमें से कौन द्विवेदी युगीन निबन्धकार है?

(अ) अध्यापक पूर्णसिंह (ब) हरिशंकर परसाई

(स) बालकृष्ण भट्ट (द) बाबू गुलाबराय उत्तर- (अ)

प्रश्न किस निबन्धकार के निबन्धों को हिन्दी के आदर्श निबन्ध माना जाता है?

(अ) डॉ. नगेन्द्र (ब) महावीरप्रसाद द्विवेदी

(स) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (द) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी उत्तर- (स)

प्रश्न डॉ. विद्यानिवास मिश्र किस युग के निबन्धकार हैं?

(अ) भारतेन्दु युग (ब) द्विवेदी युग

(स) शुक्ल युग (द) शुक्लोत्तर युग उत्तर- (द)

प्रश्न कौनसा निबन्धकार भारतेन्दु युग का नहीं है?

(अ) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (ब) बाबू श्यामसुन्दरदास

(स) बालकृष्ण भट्ट (द) प्रतापनारायण मिश्र उत्तर- (ब)

प्रश्न 'ब्राह्मण' पत्रिका के संपादक थे-

(अ) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (ब) महावीर प्रसाद द्विवेदी

(स) बालकृष्ण भट्ट (द) प्रतापनारायण मिश्र उत्तर- (द)

प्रश्न 'हिन्दी प्रदीप' के सम्पादक थे-

(अ) बालकृष्ण भट्ट (ब) गणेशशंकर विद्यार्थी

(स) प्रतापनारायण मिश्र (द) चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' उत्तर- (अ)

प्रश्न ललित निबन्ध की विशेषता क्या है?

(अ) पाण्डित्य प्रदर्शन (ब) निस्संग वैज्ञानिकता

(स) भाषा लालित्य (द) उपर्युक्त सभी उत्तर- (द)

प्रश्न 'उसने कहा था' कहानी में पृष्ठभूमि कहाँ की है?

(अ) जालंधर (ब) अमृतसर (स) हैदराबाद (द) मुलतान उत्तर- (ब)

प्रश्न लड़की क्या लेने बाजार आयी थी?

(अ) बड़ियाँ (ब) मक्खन (स) दाल (द) दही उत्तर- (अ)

प्रश्न लड़की ने अपना घर कहाँ बताया था?

(अ) माँझे में (ब) मगरे में (स) खाले में (द) चौक में उत्तर- (ब)

प्रश्न लहना की पलटन किससे लड़ रही थी?

(अ) जर्मन (ब) फ्रांसीसी (स) अंग्रेज (द) कोई नहीं उत्तर- (अ)

प्रश्न पलटन का विदूषक कौन था?

(अ) बजीरासिंह (ब) बोधासिंह (स) महीसिंह (द) लाखनसिंह उत्तर- (अ)

प्रश्न लपटन साहब कितने वर्ष से लहनासिंह की रेजीमेण्ट में थे?

(अ) चार वर्ष से (ब) पाँच वर्ष से (स) दस वर्ष से (द) दो वर्ष से उत्तर- (अ)

प्रश्न **लफ्टन साहब का खानसामा कौन था?**

(अ) अब्दुल्ला (ब) सुलेमान (स) हलीम (द) करीम **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न **लहना को गोली कहाँ लगी थी?**

(अ) जाँघ में (ब) कनपटी पर (स) पेट में (द) छाती में **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न **खाई पर कितने जर्मनों ने धाव किया था?**

(अ) 70 *(ब)* 60 *(स)* 75 *(द)* 65 **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न **कितने सिक्ख मारे गये थे?**

(अ) 10 *(ब)* 15 *(स)* 8 *(द)* 12 **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न **शाहनी कितने वर्षों से नदी में नहाती आ रही थी?**

(अ) चालीस (ब) अड़तालीस (स) पचास (द) बयालीस **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न **शाहनी ने किस नदी में स्नान किया?**

(अ) चिनाब (ब) रावी (स) ताप्ती (द) व्यास **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न **शाहनी किन खेतों से होती हुई हवेली गई?**

(अ) धान के (ब) बाजरे के (स) गन्नों के (द) गेहूँ के **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न **शेरा कितने कत्ल कर चुका था?**

(अ) तीस-चालीस (ब) पैंतीस-चालीस

(स) चालीस-पचास (द) बीस-तीस **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न **शाहनी किसे देखकर अपनत्व के मोह में भीग गई?**

(अ) मीलों फैले खेत (ब) जमीनों में कुएं

(स) दूर-दूर तक फैली जमीनें (द) भरी-भराई नई फसल **उत्तर-** *(द)*

प्रश्न **शाहनी की सन्तान थी-**

(अ) लड़की (ब) लड़का

(स) लड़की एवं लड़का (द) कोई नहीं **उत्तर-** *(ब)*

प्रश्न **शेरा की माँ का नाम क्या था?**

(अ) हुसैना (ब) रसूली (स) जैना (द) शाहनी **उत्तर-** *(स)*

प्रश्न **आग कहाँ लगाई गई?**

(अ) जलालपुर (ब) जमालपुर (स) कमालपुर (द) रसूलपुर **उत्तर-** *(अ)*

प्रश्न **दाऊद ने शाहनी को अपने साथ क्या रखने को कहा?**

(अ) नकदी (ब) कपड़े (स) सोना (द) सोना-चाँदी **उत्तर-** *(द)*

प्रश्न **चलते समय शाहनी ने शेरे को क्या कहकर सम्बोधित किया?**

(अ) चन्ना (ब) बच्चा (स) शेरे (द) मुन्ना **उत्तर-** *(अ)*